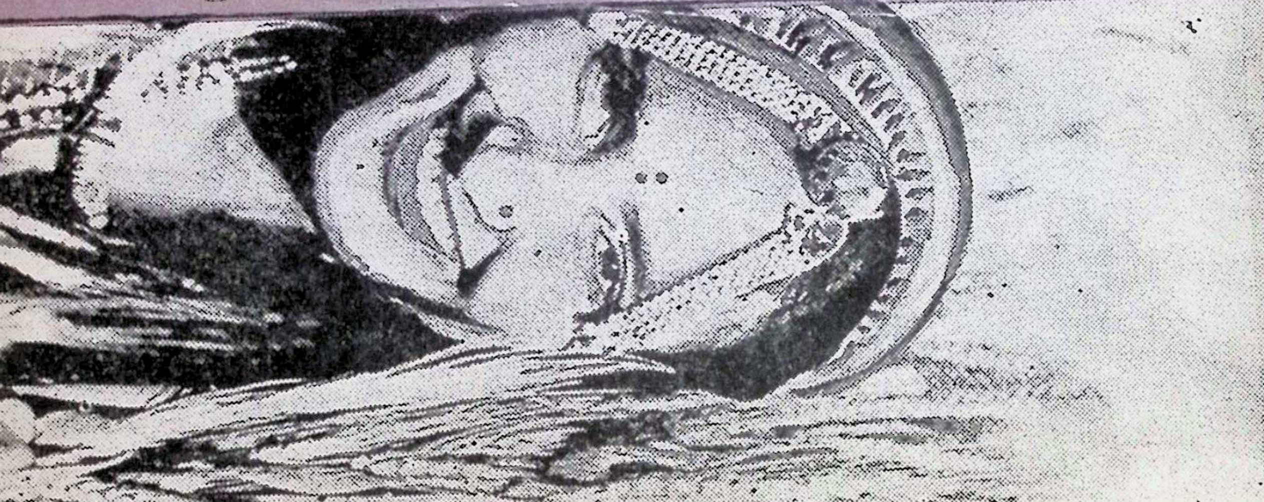
# मधु के छींटे

• शिवकुमार ओझा



# मधु के छींटे



शिवकुमार ओझा

## शिवकुमार ओझा

काशी क्षेत्र की भृगु-भूमि में जन्मे शिवकुमार ओझा की शिक्षा-दीक्षा काशो तथा लखनऊ में हुई। मुख्य टेक्निकल शिक्षा आपको लंदन में मिलो। सोहागदान, देवदर्शन, जब बहार आई, मीठो लगन और प्यासा पंछो इनको प्रसिद्ध औपन्यासिक कृतियां हैं। मधु के छोंटे में वयसन्धि की बेला में एक किशोर-किशोरी के मन में उठने वाली मासूम जिज्ञासा, मिठास, तड़पन और तूफान की यह एक कहानी है। इसकी हर घटना गांव की मिट्टी से उगी है। भाषा सरल एवं शैली रोचक है। लेखक की कल्पना प्रवणता तथा संवेदनशीलता रचना को आकर्षक बनातो है।

संपर्क सूत्र—
१४ बी, बालीगंज प्लेसईस्ट
कलकत्ता-७०००१९

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो॰बा॰१०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१

# मधु के छींटे



भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो.बा. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१०१० के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
विष्णु शंकर प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९८३

मूल्य रु० १४-००

Shiva Kumar Ojha
MADHU KE CHHINTE
Novel

## १

साँझ होते ही सूरज, सध्यारानी की लाल चुनरी ओढ़ कर सो गया और चुनरी देर तक लहराती रही। उधर पूरब से पहाड़ की दो नुकीली गोल-गोल चोटियों के बीच से चुपके-चुपके मुस्कराता हुआ पूनम का चाँद झाँका।

मेरा मन व्यथा से भर उठा। कार में बैठ, मैं चल पड़ा। पचास मील पूरब रास्ते में दो-दो नदी और दो-दो फेरी। और सामने निरन्तर मुस्कराता चाँद।

क्या मेरी खीझ पर ?

रात होकर भी दिन-सा उजाला, नदी पार करते समय जाने कितनी भूली यादें ताज़ी हो आईं। उनकी कुरेदन जारी हो गई।

क्लब में एक नई लड़की दिखाई दी। किसी सम्भ्रान्त बंगाली परिवार की है। 'शान्ति-निकेतन' में शिक्षा पाई है, नृत्य व संगीत की। एक सांस्कृतिक शिष्टमण्डल के साथ देश-विदेश घूम आई है जहाँ उसके सफल प्रोग्राम हो चुके हैं। भाग्य का फेर। उसकी शक्ल रेशमी से मिलती-जुलती है। केवल कद में जरा छोटी है, रंग हलका सांवला। रेशमी का सोने का रंग उसे नहीं मिला।

पर उसमें शालीनता के साथ चुहुल इतनी है कि सब दंग रह जाते हैं। एक साथ दो-तीन आदमी से बात कर लेना, किसी को हँसा देना, किसी को छेड़ देना फिर भी दूर-दूर रहना जैसे उसकी एक कला है।

अब मुझसे परिचय हो गया, तो वह मेरे साथ 'डांस' करने आई। 'राक एण्ड रोल' की धमा-चौकड़ी में हमने एक-दूसरे को कहाँ नहीं छेड़ा। पर उसके पाँव, कमर व छाती की लवक पर सभी हैरान हैं, इतनी सरलता के साथ इतनी चुस्ती, फुर्ती उसमें कहाँ से आई ? लगता वह फर्श पर नाचती नहीं, बर्फ पर फिसलती है। जहाँ से जो अंग चाहे मोड़ देती है।

मैं स्वयं हैरान हूँ 'ड्रिंक' के साथ शान्ति-निकेतन तथा उसकी योरूप यात्रा की दो-चार बातें करके हम फिर जुट गए। नाचते रहे, नाचते रहे, बातें करते रहे, मुस्कराते रहे, खिल-खिलाते रहे, गोल-गोल,........। इसी में रात के दो बज गए।

जब बत्तियाँ सारी बुझा दी गईं। केवल 'बार' में मोमबत्ती टिमटिमा रही थी। शान्त मीठे स्वर में बैण्ड बजने लगा। अंधेरे में सर्पाकार सभी जोड़े फिसलने लगे। अब पहले-सी बातें, खिलखिलाहट व धमा-चौकड़ी न थी। शान्ति से सभी अपने जोड़े को बगल में, आधी छाती में चिपकाए 'फुसफुस' बातें करते, अंधेरे में एक-दूसरे को चूम लेते, चिपक जाते बस यही क्रम जारी था और बैण्ड पिछली रात के मौन में मधुर सुरीला संगीत भर रहा था।

प्यार लेने-देने की बेला थी यह।

उस लड़की ने भी यही किया। मैं विह्वल हो गया। एकदम रम्मी-सी शक्ल, चाल-ढाल, बोली, शालीनता, वही छेड़-छाड़, वही मुस्कान।

नृत्य का अन्त होते ही हम दोनों लाबी के अंधेरे में चले गए।

पर मेरे नयन से आँसू की एक बूंद उसके कपोल पर गिर गई। वह अवाक् रह गई!

मैं उसे वहीं छोड़ बिना कुछ कहे-सुने बाहर आ गया व कार में बैठकर लौट पड़ा।

मेरे दिल को ठेस लग गई सो भी बुरी, बहुत बुरी। कितनी दर्दीली यह खौंच थी।

भोर हो रही थी, मैं पच्छिम की ओर कार अन्धाधुन्ध ड्राइव करता जा रहा था और यह चाँद था जो फिर सामने मुस्करा रहा था।

क्या इसे और कोई काम नहीं?

देखने लगा उसमें पड़े काले दाग को।

ऐसी ही चाँदनी रात में रम्मी ने मुझसे पूछा था........।

'वह काला धब्बा-सा क्या है रज्जू?'

'कोई प्यासा झुक कर अँजुली भर छक कर जल पी रहा है।'

रम्मी मुस्कराई। बोली।

नहीं रज्जू, प्यासा झुक कर अँजुली भरता है पर चखकर निराश हो वैसे ही झुका रह जाता है।'

'क्यों ?'

'क्योंकि यह तो सागर का पानी है, खारा।

'बेचारा'

'वह युग-युग तक यूँ ही झुका रहेगा अँजुली पसारे सागर के सामने पर उसकी प्यास कभी न बुझेगी, कभी नहीं।

मैं सुनकर दंग रह गया था :

और लौटते हुए मैं सोच रहा हूँ उस प्यासे मानव की वात। उसकी निराशा, उसकी प्यास।

कार बरावर सन-सन भागती जाती है, पिच्ड रोड पर, पच्छिम की ओर और चाँद न तो मुस्कराना छोड़ता है और न साथ। कभी-कभी किसी बांसवारी के पीछे से पत्तों की ओट से झाँकता है, फिर ओझल, फिर खिल-खिलाकर सामने आ जाता है। कैसी आँख-मिचौनी है यह।

ऐसी ही-ठीक ऐसी ही तो बेला थी वह जब चाँद रम्मी तथा मुझ पर मुस्करा उठा था और हम दोनों 'डलिया लेकर महुआ के फूल चुनने निकल पड़े थे, प्रभात बेला में।

महुआ के हमारे दस पेड़ फूलों से लदे पड़े थे? उनकी मीठी-मीठी मादक सुगन्ध हवा में तैर रही थी, सूखी पत्तियाँ इधर-उधर गिरकर बिखरी पड़ी थीं और फूल थे, जो 'टप-टप-टप' झर रहे थे।'

गर्मियों में ऊषा-काल की हवा में एक निराली गुदगुदी भरी सिहरन होती है जो हम दोनों पर छा रही थी। हम फुस-फुस बातें करते जाते व महुआ चुनते जाते। डलिया एक स्थान पर रख दी थी।

रम्मी महुए की फुलियाँ, अपने आँचल में समेट ली और मैं हाथ में बटोर उसी के आंचल में डाल देता।

रम्मी बोली, 'देख रज्जू तू अपनी फुलियाँ अलग रख, नहीं तो बाद में लड़ेगा।'

'अलग कहाँ रखूँ ?'

'मैं क्या जानूँ ?' वह तेज हुई :

'डलिया में रखूँ ?'

'नहीं, वह तो मेरी है'

'तेरे आँचल में रखूँ ?'

'नहीं, वह भी मेरा है ?'

'तो मेरा क्या है ?'

'तेरा सिर ?' रम्मी तन गई ।

'मेरा नहीं, तेरा सिर रम्मी' मैं कड़का ।

पर यह क्या ? वह तो गुस्सा होने के बदले आत्म-विभोर हो रही है । रुक कर बोली ।

'अरे हाँ रे रज्जू, तू अगर मेरा सिर (केश) पकड़ कर कुण्ड में से घसीट न लेता, तो मैं तो डूब ही गई थी ।'

बात यूँ थी कि इस घटना से एक साल पहले हम लोग कुण्ड में गर्मियों में नहाने गये थे जनाने-घाट । पानी कम था । निरापद समझकर हम दोनों खूब उछल-कूद मचा रहे थे तब तक रेशमा के पांव खिसक कर गहरे में चले गये । उन दिनों रेशमा तैरना बिल्कुल नहीं जानती थी व मैं अभी 'नवसिखिया' था फिर भी उसे डूबते देख मैं एक दम से घबरा गया । एक बार वह गोता खाकर ऊपर आई, तो उसका भयभीत चेहरा देख मैं चिल्ला पड़ा ।

'रम्मी डूबी, रम्मी डूबी ।'

पर आस-पास कोई था नहीं जो आए । वह फिर नीचे गई, केवल उसके केश पानी पर तैरते दिखाई दिए ।

अब मैंने तन-मन का सारा साहस बटोर लिया व पानी में हाथ-दो-हाथ तैरकर (जो उस समय मेरे लिए बहुत था, बहुत ।) उसका तैरता हुआ झोंटा पकड़ लिया, पर वह तो यूँ पकड़ कर ।चिपट गई कि लगा मैं भी डूबा और वह भी । मेरे नाक-मुँह में भी पानी भर गया पर जोर मारने से हम दोनों 'थाह' पानी में आ गए । वह भी मुझसे लिपटी रही ।

रम्मी इतना डर गई थी कि थाह पानी में आने पर भी मुझसे लिपटी रही ।

रोते-धोते हम दोनों घर पहुँचे । बुआ ने तो देखते ही हमें छाती पीट लिया ।

दौड़ी-दौड़ी गई कुम्हार के यहाँ । वहाँ कोई था नहीं । सोनिया आई तो बोली ।

'बाबा नहीं है, इनको मेरे घर ले चलो, तो मैं चाक डोला दूँगी।'

फिर बुआ रम्मी को लेकर सोनिया के घर गई। रम्मी को चाक पर रखा गया। बुआ पकड़े रहीं। मैं खड़ा देखता रहा। सोनिया ने 'चाक' की सूराख में डण्डा डाला पर उसे इतना जोर कहाँ जो चांक उससे हिले ? फिर मैं भी शामिल हो गया व हम दोनों ने मिलकर चाक को 'डोला' दिया और वह एक बार जो डोलने लगी, तो डोलती गई, डोलती गई।

रम्मी को 'घुमरी' चढ़ गई घूमते-घूमते गोल-गोल। उसने कय करना आरम्भ किया, पेट का पानी बाहर आया।

दो तीन बार ऐसा करने के बाद हम दोनों बुआ के साथ घर आए। रम्मी दो-तीन दिन तक घर से बाहर न हुई। उसे भय छा गया था।

जब भी उसे इस घटना की याद आ जाती, मौके-बेमौके, तो वह यूँ ही आत्म-विभोर हो जाया करती।

बोली —'तू ठीक कहता है, मेरा सिर तेरा, मेरी डलिया तेरी, मेरा आंचल तेरा।'

'और तू ?' मैं चहका।

वह मुस्कराई व बोली।

'मैं भी तेरी'

और बस अब क्या था उसने दोनों बाहें फैलाई। मैंने महुआ छोड़ उसके दोनों हाथ की अंगुलियां पकड़ी व लगे दोनों नाचने गोल-गोल, गोल-गोल।

इस उछल-कूद में उसके आंचल की फुलियां उछल-उछल कर धरती पर लोटने लगीं। पेड़ों से महुआ निरंतर झरता रहा। मुस्कराते चांद की ऊमीदी आंखें मारे नींद के लाल हो चली और हम नाचते रहे महुए के फूल पर।

नाचते-नाचते हम बातें भी करते जाते। रम्मी बोली—

'महुआ तुझे अच्छा लगता है रज्जू ?'

'फूल तो अच्छा लगता है।

'मगर खाने में ?

'मुझे नहीं भाता'

'फिर जब मजूरों के लिए घर में चने के साथ छंयोकते है, तो तू मुट्ठी भर लेकर क्यों भागता है ?'

'यूँ ही चखने के लिए।'

'सोनिया कहती थी, महुआ बड़ी अच्छी चीज है।'

'तभी तो अपने बैलों को देते हैं कातिक में महुआ।'

मैंने मुँह बनाकर कहा।

रम्मी एक हाथ छोड़कर व एक पकड़े हुए गोल चक्कर काटने लगी, मैंने एक हाथ कमर पर दिया।

रम्मी हँसी, बोली 'नहीं।'

मैंने पूछा, 'फिर ?'

'सोनिया कहती थी, उसका बाबा महुए की दारू 'चुआ' कर पीता है।' अच्छा। 'और जब पीता है, तो उसे गोद में लेकर खूब चूमता है, दुलारता है।'

वह मुस्कराई—यूँ मुस्कराई जैसे कोई बात अभी भी मन में अटकी हो।

मैंने कहा और ?'

'और उसके सामने ही उसकी माँ को प्यार करता है।'

हम दोनों हँसे। मैंने कहा 'कैसे ?'

'यूँ।'

और हम दोनों ने एक दूसरे का मुँह अंजुलि में भर कर हल्का सा चूम लिया जैसे बच्चों को चूमते हैं।

अब दूसरा नाच रम्मी ने अकेले किया। आँचल को कमर में खोंस कर, जैसा नाच उसने गाँव में देखा था, ब्याह-शादियों में लड़कियाँ जैसे नाचती हैं।

मैं खड़ा होकर ताली बजाता रहा व हम दोनों गाते रहे—

रेशम की धानी चुनरिया रे
फर - फर फहराय
पहिरन वारी रसीली रे
महुआ बीने जाय
महुआ मदन रस टपकै रे,
रस चुइ-चुइ जाय।

नृत्य समाप्त हुआ, चाँद सोने जाने की तैयारी करने लगा, हम दोनों जल्दी-जल्दी महुए के फूल बटोरने लगे। दोनों पास-पास, साथ-साथ चुनते, मैं

भी उसके आँचल में डालता जाता। जब आँचल भर जाता, तो वह डलिया में डाल आती।

फूल चुनते-चुनते हम नन्हें से गड्ढे में उतरे जो सूखी व कुछ सड़ी पत्तियों से भरा था। उसमें भी फूल बिखरे पड़े थे, रस से भरे रसीले।

और यह क्या ?

'दैय्या रे।'

चिल्ला कर रेशमी गड्ढे में लौट गई। दोनों हांथ से उसने दाहिने पाँव को पकड़ कर एड़ी उठा ली। मैं घबरा कर उसे पकड़ कर उठाने लगा। वह जोर-जोर से रोने लगी। उसके पाँव की एड़ी में 'दशन' का निशान था। मैंने बहुत मनाकर पूछा, तो रोती-रोती बोली—'बिच्छू'

हाय राम, अब क्या हो ? इतनी देर में तो जहर चढ़ते-चढ़ते जाने कहाँ पहुँचा होगा ? मैंने झट से अपनी कमीज उतार उसकी पिण्डली में बाँध दिया, फिर उसका आँचल लेकर घुटने से ऊपर कस-कस के बांधा। बाँधने से बिच्छू का जहर ऊपर नहीं चढ़ने पाता।

गाँवों में गर्मी के दिनों में बिच्छू का काटना एक साधारण सी बात है फिर भी सबेरे-सबेरे हमारे घर में कुहराम मच गया।

महुए का फूल—गाँव का अंगूर। रस से भरपूर—सारा-का-सारा रम्मी के आँचल से बिखर कर धरती पर लौट गया। मैं उसे उठाकर ले नहीं जा सकता था इसलिए मैं भी रोने लगा। किसी-किसी तरह बड़ी मुश्किल से एक पाँव पर चलने को तैयार हुई। हम दोनों वैसे ही चले जैसे तीन टाँग की दौड़ दौड़ा करते थे। रम्मी ने मेरे गले में बाँह डाल दी मैंने उसकी कमर में और तब हिचकते-हिचकते सहारा लेते-देते दोनों धीरे-धीरे घर पहुँचे।

रम्मी के गाल आँसुओं की धार से धुल रहे थे। उसे रोते देखकर मुझे रूलाई आती।

घर में सबसे पहले शोर मचाती बुआ मिलीं,

'क्या हुआ रे ?' बोलीं। रम्मी और जोर से रो पड़ी। मैंने कहा—'बिच्छू।'

'कहाँ ?'

'महुआ के पेड़ तले—गड्ढे में ?'

'हाय राम, मेरी बच्ची की जान ही ले ली।'

बुआ बिच्छू झाड़ने का मंत्र जानती थीं, तुरंत रम्मी को आसन पर बिठा कर लगीं मंत्र पढ़ने।

अक्कर-चक्कर, जय शिवशंकर।
बिछुअ मारो, जहर उतारो॥
बिष चढ़ि आवै, सन-सन छावै।
प्रान बचाओ, बिषा हरो॥
बिषा हरो, विषा हरो।
जय शिवशंकर, बिषा हरो॥

बुआ मंत्र पढ़ती रहीं पर मेरी समझ में कोई असर न हुआ। रम्मी वैसे ही रोती रही। मैं क्या करूं? कुछ सूझता न था। थोड़ी ही देर पहले तो उसने कहा था—

मेरा सिर तेरा, मेरी डलिया तेरी।
मेरा आँचल तेरा, मैं भी तेरी॥

मैं क्या करूँ? क्या करूँ?

इतने में माँ आ गई, स्नान करके। वह बड़े तड़के नहाने जाती है। आते ही बोली—

'क्या हुआ रे?'

'बिच्छू ने काट लिया, महुआ तले' मैंने झट से कहा।

तुलसी के चबूतरे पर जल चढ़ा, लोटा रखती हुई बोली—'जा रज्जू घर में से कड़ुआ तेल ला।'

और वह रम्मी के पांव से मेरी कमीज व उसका आंचल खोलने लगी। मैं दौड़ कर प्याली में तेल लाया। माँ ने गरम कर लाने को कहा, चुल्हा बुआ ने जला लिया था सबेरे-सबेरे दूध गरम करने के लिए, सो मैंने झट से गरम किया व मां मालिश करने लगी, ऊपर से नीचे, बराबर।

धूप निकल आई थी इसलिए अब रम्मी को घर में ले जाया गया। मां ने जरा देर बाद पूछा,

क्यों री? कुछ कम लगता है!

रम्मी ने मुस्करा कर सिर हिलाया।

उसकी यह पहली मुस्कान थी बिच्छू काटने पर से। मैं खुशी में नहा गया। माँ ने तेल मलना छोड़ बुआ को दे दिया व उठ गई।

बुआ को तेल मालिश में विश्वास नहीं। उनको अपने मंत्र में विश्वास है। इसलिए वेमन का मालिश करती थी। माँ ने कहा,—'कहीं से रेल का टिकट मिल जाता, तो घिस कर चढ़ाने से जहर उतर जाता।"

फिर तो क्या था ? मैं उछल कर भागा दुलरिया के घर। भाभी ने एक टिकट कहीं से ढूंढ़कर दे ही दिया। लाया, घिसा व बिच्छू काटने की जगह पर लगा दिया।

बुआ अब उकता कर छोड़ने वाली थीं, बोलीं।

"अब बहुत मालिश हो चुकी, रहने दे, पाव सूज जायगा।"

'नहीं, नहीं रम्मी रो उठी।

'बुआ मैं मालिश करूँ ? 'सहमते-सहमते मैंने पूछा—'लेकर कह के बुआ उठ गई उनको छुट्टी मिली और मुझे मुंह मांगा बरदान।

मैंने बड़े चाव से तेल मालिश शुरु किया। छन भर में रम्मी मुस्करा पड़ी

मैंने पूछा क्या है री ?'

'तू मेरा नौकर हो गया, तेल मालिश करता है, पांव में'

'हट।'

मैंने सोचा इसे मजा चखा दूं। मैंने जोर-जोर से उसकी रानों से लेकर पिण्डली होते हुए एड़ी तक दोनों हाथों में भर के दबाते हुए तेल मालिश शुरु किया। छन भर में उकता कर रम्मी बोली।

'तू रहने दे राजू, मेरी टांग तोड़ डालेगा।

'नौकर जो हूँ, मिहनत से काम करता हूं।

वह मुस्कराई। बोली 'गलत ढंग से काम करेगा, तो सजा मिलेगी।

'तो दे-दे न सजा। यहां डरता कौन है ? मैंने कहा,

'दूं ? वह फिर मुस्कराई।

'दे-दे !

'सोच ले रज्जू, अच्छी तरह से

'सोच लिया है।

'फिर ले।

और उसने अपना पांव खींच लिया मेरा हाथ थाम कर। मैं ताज्जुब में आ गया।

'गलती हुई भल्कए मअज्जमा, गुलाम
मुआफी की दरख्वास्त करता है।
खिदमत की इजाजत बख्शी जाय।

और मैंने उसका पांव पकड़ लिया। वह मुस्कराते हुए हंस पड़ी व पांव बढ़ा दी। बोली–

'इजाजत है।

नौटंकी में किए जाने वाले नाटकों के ये अल्पाज हमने रट रखे थे जो काम आ गए। फिर मैंने धीरे-धीरे बड़े प्यार से दबाना शुरु किया।

'मैं तेरी खिदमत से खुश हुई। बोल तुझे क्या इनाम दिया जाय।

'गुलाम को और खिदमत करने की इजाजत हो।

हम फिर हंस पड़ें। वह फिर न जाने किस लोक में खो गई? तन कर वोली, 'रज्जू, तू थकता नहीं?

'नहीं रे, तेरा पाँव दबाने को मिले तो–जनम भर मैं दबाता रहूँ।

'फिर तो रोज बिच्छू काटे तब ना?'

हम दोनों ठहाका मार कर हँस पड़े। अब मैंने पूछा, बड़ी अदा से सिर घुमाकर वोली।

'तो मैं तेरे पाँव मलूंगी।

'जाने कब मुझे बिच्छू काटेगा?"

छिः-छिः, कैसी अशुभ बात बोलता है।

हम दोनों हंस पड़े।

वह दिन भी धीरे-धीरे कट ही गया। शाम तक उसका दर्द काफी घट चुका था। मैंने कहा–

बुआ कहती थी, उसके मन्त्र से दर्द घट गया।

वह हँसी। मैं भी हँसा, वह बोली,

और माँ कहती थी टिकट घिसकर लगाने से घटा।

अच्छा। मैंने आश्चर्य से कहा,

और तू?

रम्मी बड़ी ही मधुर मुस्कान के साथ बोली तेरी मालिश से. नेगे हाथ में जादू है, छूते ही जहर छू-मन्तर हो गया।

कितनी ? मीठी बोली बोलती थी रम्मी। काश ! उन दिनों मेरे पास टेप रेकार्डर होता, तो मैं उसकी बोली भर लेता उसमें। और जब जी में आता सुना करता। कल, डिक, अपनी, फ़ायन्सी, की बोली टेप रेकार्डर से सुन रहा था, जो विलायत में ७००० मील दूर जाने इस समय क्या करती होगी ?

अब तो रेशमी भी न मिलेगी, उसकी बोली भी नहीं। और मिले भी, तो क्या वह वही बोली बोलेगी ? वैसे ही ?

मेरी कार निरन्तर चलती रही। नदी पार करते समय जी भारी हो गया। फिर चली, तो लगा चाँद लाल चूनरी ओढ़कर सो गया, कितनी मीठी नींद आयेगी उसे।

और मैं ?

रात भर का जागा, हर बांसवारी के पीछे महुए के पेड़ दिखाई देते। क्या पता ? रेशमा वहाँ डलिया में महुआ बीनने आई हो।

महुए का फूल, रस से भरपूर, गांव का अंगूर, रेशमी के आंचल में।

कहीं रम्मी की रंगीन चुनरी मिल जाती ओढ़ने को। उसके आंचल की रंगीन छाया।

मैं युग-युग के लिए मीठी नींद में सो जाता।

पर इतने ऊँचे मेरे भाग्य कहां ?

# २

एक बरस बाद।

वह भींगना !

फिर बुखार।

और प्यार !

आज से बीस बरस पहले।

सबेरे-सबेरे जाने कहाँ से आँधी टपक पड़ी ? और घर की 'खिड़की' ( पिछले दरवाजे ) से भागकर मैं व रम्मी, दोनों आम के बाग पहुँच गए आम बीनने।

अभी तो आँधी जोर पर थी। पेड़ गरज रहे थे। डालियाँ टकरा रही थीं, धूल इतनी उड़ती कि आँख खोलना दुशवार था। सूखी पत्तियाँ उड़-उड़ कर हाथ पर, पाँव पर, मुँह पर थप्पड़ मारती थीं।

कुछ दिखाई नहीं देता, कुछ सुझाई नहीं पड़ता, हमारे पाँव धरती से उखड़-उखड़ जाते। लगता कोई हमें बरजोरी ढकेले लिए जा रहा है। एकाएक आम की एक डाल चरमरा कर 'अर र र–अर र र धम्म' करके टूट पड़ी। मैं डर गया। था तो अभी बारह-तेरह साल का छोकरा, रम्मी तो चौदह की होगी। मैं चिल्ला पड़ा मारे डर के। रम्मी ने दौड़कर मेरा हाथ पकड़ लिया व एक तरफ से गिरती-पड़ती–घसीटती हुई मुझे एक खूब मोटे तने वाले बड़े पेड़ के पास ले जाकर खड़ी हो गई। हमारी पीठ हवा की ओर थी, इस प्रकार हवा के तेज झोकों से तो हम थोड़े बहुत बचे, पर मन में बराबर भय लगा रहा। कहीं, कोई डाल टूट कर हमारे ही ऊपर गिर पड़े, तो !

कहीं पेड़ ही उखड़कर हमारे ऊपर आ पड़े, तो।

पहले तो रम्मी मुझको अपने बगल में चापे रही मेरे गले में बाँह डाल

कर मगर जब मेरी सिसकियाँ किसी भी प्रकार बन्द होने को न आईं, तो उसने मुझे अपने सामने करके, दोनों हथेलियों के बीच मेरे मुंह को पकड़ कर मारे चुम्बनों के ढेर कर दिया जैसे मैं कोई छोटा बच्चा होऊँ, फिर बार-बार उड़ते आँचल से उसने मेरे आँसू पोंछे और मेरे सिर को अपनी छाती में दुबका ली फिर आँचल से ढक कर चुपचाप खड़ी हो गई। एक बार मैंने कनखियों से देखा, तो उसकी आँखें भर रही थीं।

उधर आसमान भी झरने लगा। पानी जोर का आ गया। आँधी कुछ धीमी पड़ी, फिर भी काफी जोर पर थी। आकाश गरजता रहा, बिजली कौंधती रही, पानी के थपेड़े पड़ते रहे, डालियाँ टकराती रहीं व हमारी आँखें थीं जो झरती रहीं, सिसकियाँ उठती-गिरती रहीं।

मारे डर के हमारे प्राण नहों में समा गए। जाने वह तूफान कितनी देर चला ? जब थोड़ा-थोड़ा थमने को आया, तो बाग में आमों की पथार पड़ी थी, हरे-हरे पत्तों के ढेर में, पर यहाँ आम बीनने का उल्लास ही मर चुका था।

हम दोनों काफी भींग चुके थे रम्मी के आँचल से पानी टपकता था। खद्दर की हमारी मोटी कमीज व मोटी नीकर पानी से मानों भारी हो गयी थी। देह में कँपकपी छाई थी। रम्मी का भी यही हाल था उसकी नन्हीं-सी देहाती चोली व गीली साड़ी तन से चिपकी पड़ी थी, कभी-कभी हवा के झोंकों से साड़ी फड़फड़ा उठती, तो आँचल उड़ जाता। टाँगें उघड़ जातीं व पानी के छीटों से मैं नये सिरे से नहा जाता।

मेरे जो पहले बोल फूटे वे आज भी मुझे ज्यों-के-त्यों याद हैं, मैंने काँपते-काँपते कहा :

'मुझे तो कँप-कँपी लग रही है, रम्मी'

'और पास आ जा न !'

उसने धीरे से काँपते होंठों से कहा व मेरे पाँवों को अपने पाँवों के बीच जकड़कर मेरे धड़ व सिर को अपनी छाती में गाड़कर दोनों बाहों के बीच मुझे पूरी तरह जकड़ कर आँचल से ढक, खड़ी हो गई।

मैंने फिर कहा, 'तेरा आँचल गीला है, रम्मी ठंडा लगता है।'

'तो गरमी कहाँ से लाऊँ और पास चिपक जा।'

'उससे क्या होगा ?'

'होगा क्यों नहीं ? माँ कहती है देह में बराबर गरमी रहती है।'

'देह में ही तो ठंढक भी लगती है, रम्मी। जाड़ा लगता है'

'नहीं रज्जू, तू क्या जाने ? देखता नहीं देह पर गीले कपड़े सूख जाते हैं, देह की ही गरमी से तो।'

'हाँ रे, जाड़ों में मुंह से भाप निकलती है—गरमी से ही तो' मैंने चहक कर कहा।

'ठीक, फिर और, और पास आ जा, चिपक जा एक दम से' और मैं और भी सिकुड़-पिकुड़ कर उसके सारे तन से चिपक गया।

कहाँ गया वह प्यार ! और वह गरमी ! आँधी, तूफान के बीच प्यार का वह आँचल—

और आज ?

हवा थमी. पानी थमा, बूंदा-बाँदी रह गई। हम दोनों मोटे पेड़ के तने को छोड़ बाग में निकल पड़े। दोनों के पाँव घर की ओर थे। रेशमी के लम्बे केश से बूंदे टपकती थीं व एक सामने लटकती लट से, टप-टप, गालों पर, नाक पर, छाती पर आकर गिरती थी। रेशमी का रंग सोने का था घर हम सभी उसे रम्मी या रम्मो कहते थे, गाँव में कौन पुकारे इतना वड़ा नाम 'रेशमी'। मैं खुद राजेश से 'रज्जू' मात्र रह गया था।

रम्मी हमारी बुआ की जेठानी की लड़की थी वह बुआ के ही साथ आई थी। जब भी बुआ ससुराल से गाँव आती वह उनके साथ आती थी और हम दोनों खूब खेलते थे खूब।

रम्मी की देह इकहरी थी जो कभी-कभी धर-पकड़ में बेंत सी लचक जाती। वह थी बड़ी मजबूत व 'चीम्मड़' उसकी मुट्ठी से कुछ निकाल लेना आसान काम न था। इस साल दुलरिया के दूल्हे को उसने 'कोहबर' में छका मारा। हथेली पर अंगूठी रखकर बोली 'ले लो' जब दूल्हा लेने को हुआ, तो उसने मुट्ठी बन्द कर दी। उसकी मुट्ठी पकड़ दूल्हे ने वहुत जोर किया, बहुत जोर लगाया, पर वह मुट्ठी थी जो वज्र हो गई, न खुली, न खुली।

दूल्हे का चेहरा मारे शरम के लाल हो गया, दुलरिया की सभी सहेलियाँ हंसकर निहाल हो गईं। इस जोरा-जोरी से रम्मी भी हाँफ रही थी मुँह लाल

हो गया था, पर मुस्कराती थी, क्यों न मुस्कराए, उसकी मुट्ठी जो खुली न थी।

अंत में रम्मी ने दूल्हे से कहा था, 'पाँव पड़ो तो अंगूठी मिलेगी'

दूल्हा झेंपता हुआ उसके पाँव छूने चला। रम्मी ने पाँव हटा लिया, बोली झट से :

'मेरे नहीं, दुलहिन के।'

सभी ठठाकर फिर हंस पड़ीं। बेचारा दूल्हा मारे शरम के लाल होकर रह गया, तब रम्मी ने बड़े प्यार से अपने हाथों उसे अंगूठी पहना दी।

इस पर दूल्हे के बोल फूटे,

'तब तो मेरी दुलहिन आप हो गई, क्योंकि अंगूठी आपने पहनाई है।'

सभी फिर हंस पड़े, पर रम्मी के झेंप का अंत न था। वह लजाती हुई वहाँ से उठ भागी। अंगूठी देने वह गई थी बुआ की ओर से, दुलरिया के दूल्हे को। वहाँ 'दुलहिन' बनने की नौबत आ गई।

ओह, मैं बहक गया। बाग से लौटते समय मैंने ललचाई आँखों से पथार पड़े आमों को देखा। रम्मी अभी भी मेरे कन्धे पर हाथ रखकर चल रही थी, हमसे लम्बी जो थी।

मैंने धीरे पूछा, 'रम्मी, दो चार आम लेते चलें?'

'नहीं, जल्दी घर चल, चाची घबरा रही होंगी,

क्या पता, कहीं मार पड़े तो।'

'पड़ने दे, तेरा क्या? माँ मुझे तो मारेगी नहीं, सारी कसर मुझ पर निकालेगी, फिर आम क्यों न ले लें? मार खानी ही है, तो आम भी खायेंगे।'

रम्मी मुस्करा पड़ी। वह हँसती थी, तो उसके चमकीले सजीले दाँत अनार के दानों से चमक उठते थे। खैर मैंने लपक कर चार-छः आम उसके आँचल में भरा। दो-दो दोनों ओर अपनी नीकर की जेबों में, व एक ऊपर, छाती पर, कमीज की पाकेट में।

बूंदें अभी भी थोड़ी बहुत पड़ रही थीं। मैं ठण्ढ से अभी भी काँप रहा था व रम्मी के बगल में जल्दी-जल्दी पाँव बढ़ाता घर की ओर जा रहा था। राह चलते-चलते रम्मी ने बाएँ हाथ से मेरे पाकेट के आम को धीरे से दबाया। मैंने पूछा, 'क्या देखती है?'

'देखती हूँ, पका है या कच्चा ही उठा लाया'

'कैसा लगा ?'

'एक बार और देखकर बताऊ'

और उसने मुट्ठी में भर के आम को धीरे-धीरे दबाया, फिर जोर से। एकाएक उसकी नुकीली घुंडी खुल गई। आम के पतले रस का फौव्वारा ऐसा छूटा कि जाकर सीधे मेरे मुँह पर पड़ा। मेरा मुँह व आँखें रस से नहा गईं। मैंने दोनों हाथों से मुँह ढक लिया।

और रम्मी थी कि हँसे जा रही थी। उसने मेरा हाथ छुड़ाकर आँचल से मेरा मुँह पोंछा, आँखें पोंछी। फिर मेरी आँखों को होंठों से चूमकर हँसने लगी। मैं भी हँस पड़ा। बोली, 'घर में तो नहीं कहेगा ?'

'नहीं, रम्मी। मैंने कभी कहा है ?'

'कभी नहीं'

'फिर हम दोनों चलने लगे। मैंने चलते-चलते पूछा।

'मैं भी तेरे आम देखूं ?'

'धत'

'क्यों ? तेरे आम कच्चे हैं ?'

'धत।'

'रम्मी की अमिया कच्ची।'

कहकर मैं भागा हाथ छुड़ाकर। उसने पीछा किया मगर पकड़े-पकड़े तब तक मैं दरवाजे भीतर था अपने घर के।

और मैं देख रहा हूँ आज भी
रम्मी का वह आँचल।
और वे कच्चे मीठे आम।

# ३

वह बुखार ! और प्यार !

बुरी तरह भींगने से मुझे बुखार बहुत तेज चढ़ आया ! देह जलते तवा जैसी तपने लगी, जलने लगी। किसी से हाथ न दिया जाता ! दो रजाइयों के बीच मैं अंवा की तरह तप रहा था, बेचैन। जो कोई देखने आता अपना ठण्ढा हाथ रजाई में घुसाकर मेरी छाती का तापक्रम नापता। मैं उस ठण्ढक से निहाल हो जाता। वह फट से जलता हाथ खींच लेता व कहता,बाप रे बाप, इसे कितना तेज बुखार है ?

सबसे पहले बुआ ने इस बुखार को भांपा व मुझे लिहाफों में गुमेट-समेटकर दौड़ी-दौड़ी महादेव पण्डित के पास गई उनको बुलाने ! इसी बीच रेशमा का बुरा हाल था। लगता, जैसे बुखार मुझे चढ़ा है व कँपकँपी, बेचैनी, तो उसे हो रही है। कोई भी उसके चेहरे को देखकर समझ सकता था कि वह मछली की तरह तड़प रही है, मछली, पानी के बाहर।

बेचैन, बेताब, पर बेबस।

सारी धरती व आकाश का दर्द उसकी आंखों में नाच उठा, कांप उठा।

इस बीच मां लगातार मेरे पास रही। उसने भी अपना ठण्ढा हाथ मेरे सिर पर रख दिया। मुझे लगा बर्फ की डली पड़ गई हो ! कभी-कभी आकाश से ओले गिरने पर मैं व रम्मी, दोनों ढेर से ओले बटोरते थे व मुँह में उसे डाल कर उस ठंढक से निहाल हो जाते थे, जब कि बड़े बुजुर्ग मुँह लटकाए फिरते थे फसल नष्ट होने के भय से।

एक बार मैंने ओले की एक बड़ी डली उठाकर चुपके से रेशमा की चोली में डाल दिया। मारे ठण्ढ के वह तड़प उठी, छटपटाने लगी जैसे बिच्छू ने डंस लिया हो। फिर तो मैं खूब हंसा, खूब हंसा। बाद को वह भी तड़प कर, ऐंठकर, ओले को निकाल फेंक, हंसने लगी।

दिन का तीसरा पहर आ गया, मगर रम्मी अभी तक मेरे पास से हिली नहीं। बुखार, बैद दवा की बातें सोचते-सोचते मुझे पुष्प की बात याद आ गई और तब ध्यान आया कि रम्मी ने सबेरे से कुछ खाया-पिया नहीं।

मैंने पूछा, 'क्यों, रम्मी, तू आज खाना न खायगी ?

नहीं, रे,

'क्यों ?

'मनौती की है,

'कैसी मनौती ?

'यही कि जब तेरा बुखार उतर जाएगा तुझे पंथ मिलेगा, तभी मैं भी खाना खाऊँगी।

'यह ठीक नहीं, रम्मी

'ठीक क्यों नहीं ? तू क्या जाने ?

मनौती करने से, हठ पकड़ने से देवता लोग प्रसन्न हो जाते हैं व बीमारी खींच लेते हैं।

'तुझे किसने बताया यह सब ?

माँ, कहती थी। मां ने भी यही मनौती की है, इसीलिए मैंने भी कर ली।

'धत् पगली, माँ की बात और है'

'क्यों ?

माँ बडी जो है।

और मैं तुझसे बड़ी नहीं। डेढ़ साल 'रहने भी दे।' सिर्फ साल-डेढ़ साल बड़ी है, तो बात-बात में शान बघारती है।

'अच्छा, अब चुप भी हो जा! नहीं तो बुखार बढ़ेगा। तेरे सिर में तेल मालिश कर दूं ?

कर दे ना।

मैं सच कहूँ, मेरे भइया ? मुझे कुछ भी नहीं सूझता मैं क्या करूँ ?

बड़ी कातर होकर उसने कहा व ताखे पर से आँवलें के तेल की बोतल उठाने लगी। मैंने कहा, 'बतला तो दिया तुझको तरकीब मगर चाची अब मना जो करती हैं।

'क्यों ?

कहती है, तू अब बड़ी हो गई, रज्जू से लिपट कर न सोया कर,
फिर मेरे सिर में तेल डालती हुई बोली,
जाने मैं कैसे बड़ी हो गई ?
तू बड़ी नहीं हुई ।
फिर ?
वह, मेरे सिर में अपनी पतली-पतली उँगुलियां धीरे-धीरे फेरने लगी ।
मैं सोचता रहा, सोचता रहा फिर बड़े मंथन के बाद बोला—
मैं बताऊँ ?
'बता ना !
'तू चिढ़ जायगी'
'मैं नहीं चिढ़ूँगी'
'नहीं, तू चिढ़ जायगी'
'नहीं मेरे राजा भइया, तू बोल । मैं तुझसे कभी नहीं चिढूंगी'
इतना कहते-कहते झुककर उसने मुझे चूम लिया ।
मैंने कहा, यह सब तेरी अमिया की करामात है ।
'धत !'

और देखिए उसका जरा सा शरमाना, गाल पर बनते कटोरे, बड़ी-बड़ी दमकती आंखें । ओह, रेशमी कितनी सुन्दर है ? मैंने सोचा । वह झट से झुकी व मारे शरारत के उँगुलियां जल्दी-जल्दी फेरनें लगी । उकता कर मैंने कहा,

'अब बस कर रम्मी'
तो सीधी बैठती हुई बोली,
'बर्फ की डली ?'
'एक से दो ।'

हम दोनों मारे हँसी के लोट-पोट हो गए । अब उसने कहा, 'अच्छा रज्जू, हम बहुत हँस लिए ।

अब तू सो जा । आँखें बन्द कर ले'

और अपनी उंगुलियों-हथेलियों से उसने धीरे-धीरे मेरी आँखें बन्द कर दीं ।

तब हमें क्या पता था कि बुखार में सोना नहीं चाहिए । सोने से वह और

बढ़ता है। रेशमी पूरी कोशिश कर रही थी कि मुझे नींद आ जाय। अगर उसको कहीं मालूम हो जाता कि उसकी सारी कोशिश ने बीमारी को घटाने के बदले बढ़ा दिया तब तो, बस, वह जान ही दे देती।

उसने मेरे सिर में उंगलियाँ फेरना जारी रखा। उसकी हँसी व प्यार के मिठास से कमरा भर गया और उसकी बात मानकर मैंने पलकें मूंद लीं।

उसकी आँखें भी अब नींद से बोझिल हो रही थीं। मेरे सिरहाने जमीन पर बैठे-बैठे पाटी पर सिर टेक वह सो गई।

मुझे भी जाने कब नींद आ गई?

नींद आ गई और मैं सपने देखने लगा। सपने में मैं गाँव का गँवार 'रज्जू' थोड़े ही था। मैं तो 'राजकुमार राज राजेश्वर.... .........' जाने क्या क्या....यानी एक स्टेट का राजकुमार हो गया। बन्द गले का लम्बा कोट, पांव में ब्रीचेज, सिर पर पगड़ी, जिस पर कलंगी हुई – यानी 'अभिमन्यु-उत्तरा' संवाद में देखी हुई रवि वर्मा कृत अभिमन्यु की छवि जैसी। सच पूछिए तो वह छवि मुझे बहुत पसन्द थी। शूरता, शान, सौंदर्य में मैं मन-ही-मन अभिमन्यु में आने का देखता था। मैं श्याम वर्ण अश्व पर सवार होकर राज महल से गंगा तट गया। वहाँ गंगा का नील स्वच्छ जल कल-कल बह रहा था। उस पार धान के हरे-भरे सुनहरे खेत हवा के मंद-मंद झोंकों में लहरा रहे थे जैसे फागुन में ढोलक मंजीरे पर गाँव के नवयुवक। सहस्र घुड़सवार सलामी देने के लिए मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे।

हमारे सेनापति ने आगे बढ़कर मेरे घोड़े की रास पकड़ी। मैंने कपिध्वज फहराया व सैनिकों की सलामी ली। घोड़े की कतारें मेरे सामने से गुजरने लगीं। इसी बीच क्या देखता हूँ कि गंगा के उत्तर तट पर दूर बहुत दूर, हिमालय की उठती हुई चोटियाँ नजर आ रही हैं। उन पर जमी हुई श्वेत धवल हिम राशि देखकर मैं तो निहाल हो गया। आँखें तृप्त हो गईं।

अश्वारोहियों की कतार सामने से गुजरती रही। सुहावनी धूप गंगा के जल पर; उस पार के धान के खेतों पर, मुस्कराती रही और मैं एक टक उस हिम किरीट को देखता रहा।

ध्यान से देखने पर थोड़ी ही दूरी पर अलग-अलग दो हिम चोटियाँ उठी

हुई नजर आईं, गोलाकार तिकोनी जैसे हिमलिनी ने छाती उठाकर आकाश को चुनौती दी हो।

मैं स्वप्न में भी इस दृश्य को देखकर मुस्कराया व होंठों के बीच बुदबुदाया, 'हिम की डली, एक से दो।'

मैं ध्यान-मग्न हो उस दृश्य को देखता-देखता रहा। और वे दृश्य थे जो निरंतर हिलते-डोलते, काँपते, बदलते रहे। लगा जैसे श्वेत कुहासा दोनों हिम-चोटियों को धीरे-धीरे अपनी बाँहों में समेट रहा है। धवल धुनी हुई रूई के विशाल ढेर वहाँ उड़ते नजर आए।

फिर उन्हीं श्वेत कुहरों के बीच, लगा जैसे किसी ने हिम को गरी सा महीन कुतर कर चोटियों पर बिखेर दिया हो—जैसे कपूर की महीन पाउडर हवा में तैर रही हो—जैसे वसन्त में अबरख हवा में उड़ती हो, तैरती हो, चमकती हो·····जैसे·····जैसे·····।

फिर उसी श्वेत हिमंतिनी की विशाल छाती को चीर कर चम-चम-चमकता एक श्वेत रथ निकलता दिखाई दिया। श्वेत कुहरे को चीर कर, बाहर आता हुआ। उसमें चार घोड़े जुते हुए थे जो एकदम से श्वेत थे, श्वेत पीठ, श्वेत पूंछ, श्वेत मुंह, चमकती आँखें श्वेत लहराते अयाल। मैं तो एकदम से मुग्ध हो इस अनुपम दृश्य की अवर्णनीय छवि को ध्यान करने लगा व मारे उत्सुकता के गर्दन उठाकर एक टक देखने लगा, आखिर आगे होता क्या है?

ज्यों-ज्यों रथ पास आने लगा वह स्पष्ट होने लगा। घोड़े और स्पष्ट दिखाई देने लगे। रथ के छत्र व ध्वज चमक उठे पर वे सब इतना चमकते थे कि मेरी आँखें न ठहर पाती थीं। और उसमें बैठा कौन था?

इन्दिरा? इन्द्राणी? सरस्वती? रति?

अब तो रथ इतना पास आ गया कि मारे चकाचौंध के आँखें न ठहरतीं। कुछ भी स्पष्ट दिखाई न देता। पर यह क्या?

उस रथ में से कौन निकल कर आ रहा है?

साक्षात् सरस्वती? क्या पता कौन है? वह सुन्दर लम्बा गठा हुआ तन, सुनहरे सौंदर्य से चमकता हुआ, दमकता हुआ। बड़ी-बड़ी आँखें, पतले रसीले होंठ, लम्बी भुजाएँ, पतली-पतली उँगुलियाँ, थोड़ी-थोड़ी उठती हुई जवानी उभरे हुए उरोज, श्वेत चमकीले रेशम की कंचुकी में छटपटाते से—लम्बा

धवल घाघरा, धारियों व लहरों से भरा हुआ, पर काँपता, सिर पर चम-चम-चमकता हिम किरीट गले में फूलों की माला—शायद बेले की या जूही की····

एक श्वेत स्वच्छ रेशम का झीना-झीना उत्तरीय जो, खुली हुई छाती, कंघा व त्रिवली सबको छिपाने के प्रयत्न में कुछ भी छिपा न पाता था, हाँ झिलमिल - झिलमिल उनको सैकड़ों रूपों में प्रदर्शित कर अनन्त सौंदर्य का सृजन करता था।

पास आने पर देखा, भुजवन्द, कंकण, नेकलेस, इयरिंग सभी श्वेत फूलों के बने थे, लहराती केश-राशि का भी पुष्प शृङ्गार किया गया था। मेरे मुँह से निकला 'हिम देवी।'

और यह क्या ? ये तो मेरी ही ओर आ रही हैं मैंने आगे बढ़कर अगवानी करने की बात सोची। उनके पीछे-पीछे उनका सारथी भी आ रहा था जो योद्धा रूप में देवता सा लगता था।

मैंने आगे बढ़कर और पास से उस देवांगना को देखा। वे तो बिल्कुल मेरी रेशमी जैसी लगीं। मैं क्या कहूँ ? बोल मेरे गले में ही अटक कर रह गए। साहस न पड़ा, उस चमकती दमकती देव-प्रतिमा को 'रेशमी' कह कर पुकारने का।

मैंने हाथ जोड़ते हुए कहा, 'देवी, आपका स्वागत, हार्दिक स्वागत। इस राज्य का राजकुमार आपके आगमन को अपना व अपनी प्रजा का सौभाग्य मानता है।'

देवी केवल मुस्कराई वह और मेरे पास आ गईं मैंने फिर पूछा—

'क्या देवी अपने परिचय से कृतार्थ करेंगी ?

इस पर उनका सारथी आगे बढ़ हाथ जोड़ बोला—'देवी हिमराज की पुत्री राजकुमारी शैलजा हैं व आपका आतिथ्य स्वीकार करने आई हैं कुछ देर के लिए।'

'अहो भाग्य।' मैंने कहा व परिचय की स्वीकृति में घूमकर उनका हाथ अपने हाथ में लेकर हल्का सा चूम लिया। वे खिल उठीं, मुस्करा पड़ीं। मैंने धीरे से कहा, मेरा नाम········'

'राजेश है' उन्होंने झट से कहा।

'और आप इस राज्य के राजकुमार हैं, यही ना ?'

और खिल-खिलाकर हँस पड़ी। उनकी हँसी कितनी दूधिया थी मन-लुभावनी-रेशमी की हँसी जैसी।

मेरे सकेत पर मेरे सेनापति ने सैनिकों को आज्ञा दी, अतिथि को सलामी देने के लिए। हम दोनों ने फिर से सलामी ली और तब धीरे-धीरे राजमहल के पथ पर चल दिए।

स्वप्न में परेड-ग्राउण्ड से लेकर मेरे राजमहल तक उद्यान हो गया—उद्यान, नंदन-कानन कहूँ? चौड़ा, राज-पथ जिसके दोनों किनारों पर रंग-बिरंगे फूलो से लदे हुए वृक्ष फिर घास के हरे भरे लम्बे चौड़े 'लान' उनके दूसरे छोर पर फिर सिरिस व पाइन के पेड़ों की पंक्तियां। लान के बीच-बीच में गोल-गोल फूलों की क्यारियाँ।

हम दोनों बातें करते-करते साथ-साथ चलने लगे। पीछे-पीछे हमारे सेनापति तथा देवी के सारथी आ रहे थे। रथ के पास आकर देवी ने कहा, 'रथ में चलें तो कैसा?

और मेरा हाथ अपने हाथ में लेते हुए उन्होंने ऐसी अदा के साथ गर्दन मोड़कर देखा कि इन्कार करने का मेरा साहस जाता रहा। मैंने आहिस्ते से कहा।

'देवी-देवता के रथ में मैं? मानव!'

'मैं जो कहती हूँ।'

और वे मेरा हाथ पकड़े रथ की ओर बढ़ गईं। चलते-चलते उन्होंने कहा।

'जानते हो कुमार, देवी के स्पर्श मात्र से मानव देवता हो जाता है।'

'तब तो मैं आज से देव कुमार, क्यों?

हम मुस्करा पड़े देवी की धवल खिलखिलाहट जाड़ों की धूप जैसी विखर गई।

मेरे कंधे का हल्का सा सहारा ले उचक कर देवी रथ पर बैठ गई। चढ़ते समय उनकी कमर मेरे कन्धे को स्पर्श कर गई। मैंने इतने पास होने पर जरा मुड़कर देखा तो.......?

उन श्वेत झीने वस्त्रों में देवी का सोने सा दमकता गौर, गठीला तन झल-झल झलकता था। सुडौल रानें, गोल-गोल भरे हुए नितम्ब, पतली बेंत सी लचकती कमर, ढालू चिकनी त्रिवली श्वेत वक्ष पर श्वेत कपोत का जोड़ा हिम की डली।

मैं तो हैरान रह गया।

मुझे कुछ खोया-खोया सा देखकर राजकुमारी बोलीं,

'क्या देख रहे हो राजकुमार ?'

'देवी और मानवी के बीच का अन्तर।'

'तन में या वसन में ?'

'दोनों में।'

मैंने झेंपते हुए कहा व रथ पर उछल कर चढ़ गया तथा देवी के अनुरोध से उनकी बगल में बैठ गया। या यूँ कहिए देवी ने मेरा हाथ पकड़ कर बिठा लिया।

घोड़ों की रास मैंने अपने हाथ में ली व संकेत मात्र से घोड़े चल पड़े। रथ के चलते ही, मन्द पवन के झोंकों से घोड़ों के अयाल लहरा उठे और लहरा उठे देवी के उत्तरीय व अधरवस्त्र। उत्तरीय ने लहरा कर मेरा मुख ढक लिया व बार-बार मेरे कपोल सहलाने लगा। भीनी-भीनी सुगंध से मेरा तन-मन भरने लगा। मैंने जो देवी की ओर देखा, तो वे बड़ी-बड़ी कमल के फूल सी आँखें खोल, निर्निमेष दृष्टि से मुझे निहार रही थीं।

मुझे तो लगा जैसे अब रथ धरती पर नहीं चलता बल्कि आकाश में उड़ रहा है। हवा के झोंकों से देवी के सुनहरे केश लहरा उठे। केश का एक फूल बिखर कर मेरे सिर पर आ गिरा।

हम दोनों ने एक दूसरे को देखा व मुस्करा उठे। इतने में क्या देखते हैं कि राजपथ के दोनों ओर लगे वृक्षों से पुष्पों की वर्षा हो रही है, रंग-बिरंगे फूल, लाल, पीले, नीले, बैंगनी, श्वेत और न जाने क्या-क्या ?

देवी ने पहले तो खूब आनन्द लिया मारे खुशी के नाच उठी पर जरा ध्यान से वृक्षों पर देखकर तो फिर मानो आपे में न रहीं।

बोली 'ओह, ये नन्हें-नन्हें बालक—बालिकाएँ मेरा स्वागत कर रही हैं ? अहो भाग्य !'

मैं मुस्करा कर रह गया। बात यूँ थी कि वृक्षों की डालियों पर छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ रंग-बिरंगे वस्त्रों में बैठी थीं। बहुधा उनके वस्त्र उसी रंग के थे जिस रग का फूल उस वृक्ष में था। इसलिए दिखाई दे जाना कोई आसान काम न था।

जब हमारा रथ उनके वृक्ष के नीचे से गुजरता था, तो वे डालियों को झकझोर देते थे व पुष्प वर्षा होने लगती थी राजकुमारी तथा मैं, दोनों फूलों से नहा उठते। रथ तथा राजपथ दोनों रंग-बिरंगे पुष्पों के सौन्दर्य व सुगंध से भर जाते थे।

अब हम सिंह द्वार के निकट आते जा रहे थे इसलिए शहनाई की मीठी ध्वनि कानों में गूँजने लगी, ध्यान से सुनने पर लगा, बच्चे भी डालियों पर से गुनगुना रहे हैं–

पंछी ! स्वागत तेरा नई डाल पर !

पंछी, पंछी, पंछी !

उस सुन्दर तन में, लगा, अब सौन्दर्य व आनन्द की बाढ़ आ गई, अब वे उसमें समा न सके, इसलिए छलक पड़े। देवी ने मेरी ओर बड़े प्यार व उत्साह से मुड़कर देखा व बोली,'राजकुमार ! तुम बहुत सुन्दर हो !'

'अहो भाग्य !' मैंने सिर झुका कर कहा।

'और तुम्हारी कल्पना तो और भी सुन्दर है।'

'कैसी कल्पना देवी !'

'कल्पना इस स्वागत की। डाल के पंछी—

डाल से फूलों की वर्षा—

'और नये पंछी का स्वागत।'

मैंने जोड़ा व हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े। इस पर देवी बोलीं,

'नहीं कुमार पंछी के जोड़े का– –'

हम फिर हँसे। मैंने कहा, 'धन्यवाद'

अब हम सिंह द्वार पर पहुँच गए। देवी ने संकेत किया रथ छोड़ देने के लिए। हम दोनों उतर पड़े रथ से। सिंह द्वार की विशालता तथा उस पर बनी कलात्मक मूर्तियों को देखकर देवी चकित हो गई। ये मूर्तियाँ युवा नर-नारी की थी जो विविध प्रकार के नृत्य तथा प्रणय मुद्राओं में अंकित की गई थीं।

देवी के आनन्द व आश्चर्य का पार न रहा। उन्होंने मेरे कन्धे पर अपना सिर टेक दिया व कुछ देर तक मुग्ध मन देखती रही नग्न मूर्तियों की रूप सुधा पान करती रहीं। फिर बोलीं, 'तुम्हारा राज्य तो रूप की खान है कुमार।'

'आपके आगमन से सब कुछ सुन्दर हो गया है देवी।'

चलते-चलते देवी ने कहा, 'सौन्दर्य का विकास कहाँ है ? कुमार !'

'आपके तन में, मन में, नयन में'

'ओह, मारे हँसी के देवी लोट-पोट हो गईं, मैं भी हँस पड़ा। हँसते-हँसते देवी का लचीला तन बेंत सा काँप जाता उरोजों में विश्व-मोहन कम्पन छा जाती, आँखें मन्द मिठास से भर उठतीं।

'फिर से उत्तर दो कुमार।'

'आपके तन में, मन में, नयन में।'

फिर हँसी व बोली, 'नहीं।'

'सच।'

'सच।' रुककर 'ठीक उत्तर दो'

'सौन्दर्य का विकास नयनों में होता है देवी।

आपकी आँखों का सौन्दर्य छलक कर इस राज पथ, राज महल, सिंह द्वार सभी पर जा पड़ा है सबको सुन्दर बना दिया है'

'तुम तो कलाकार लगते हो कुमार !'

'नहीं देवी, मात्र कला का पारखी'

'राजपथ के दोनों ओर अब लम्बे-लम्बे झील सोए पड़े थे जिनको मन्द बयार हल्के-हल्के झोंकों से गुदागुदाकर, सहलाकर जगाने का प्रयत्न कर रही थी। और जल में हल्की सी लहरें उठ रही थीं।

देवी बोली 'देखते हो, कुमार, लहरों में कितनी विह्वलता है तट से मिलने की।'

'हाँ देवी, वे निरंतर आगे बढ़ रही हैं तट के गले में माल्य-दान करने के लिए'

'या बाहु-पाश में कसने के लिए।'

'और लय हो जाने के लिए।'

हम मुस्कराए।

वे बोलीं, 'हम लौटकर इनमें स्नान करेंगे'

'मैंने हामी भरी। पेड़ों से पुष्प वर्षा जारी रही। हम राजमहल में पहुँच गए। वहाँ देवी ने राजमाता के चरण छुए। और राजमाता थीं कौन ? मेरी माँ, अनन्त गरिमा व स्नेह से पूत।

फिर राजमहल व झाल के बीच एक विशाल प्रांगण में डालियों पर से उड़कर आए हुए बाल पछियों का सामूहिक नृत्य हुआ। देवी इतना प्रसन्न व विभोर हो गई कि कुछ बालक-बालिकाओं के हाथ पकड़ वे भी नाचने लगीं। जब नृत्य समाप्त हुआ, तो वे चलने को तैयार हुई।

बच्चों को उन्होंने जाते अपने रथ से मँगवा कर हिमराज की भेंट, अमृतफल एक-एक वितरण किया जो सेवनुमा लगता था, देवी की भेंट लेकर बाल-पंछी रंग-बिरंगे पंख फैलाकर उड़ चले व फूलों-वृक्षों के झुरमुट में अंतर्ध्यान हो गए। फिर देवी ने माँ से विदा ली। मां ने उनको आशीष दिया, 'बेटी, अक्षय सोहाग की भागी बनो, अक्षय सौंदर्य व सम्पदा तेरी दासी बने।

देवी हाथ-में-हाथ पकड़े लौटने लगीं। झील के किनारे आकर वे ठिठकीं। फिर रुकीं। अब सपने में रात हो गई थी। पूनो का भरा पूरा चांद झील के जल में अमृत वर्षा कर रहा था व आस-पास के वृक्षों, महल और राजद्वार पर अनन्त सौंदर्य व मोहकता का जाल फैल चुका था।

प्रणय-आह्वान में कांपते अधरों की तरह जल में नन्हीं-नन्हीं लहरियाँ कांप रही थीं।

देवी ने कहा, 'आज स्वर्ग धरती पर उतर आया है कुमार।'

'आपके चरणों में लिपटता हुआ देवी।'

'अच्छा अब वस्त्र उतार दो।'

'मैं अवाक् रह गया। मेरी हिचक भाँप कर वे बोलीं।'

'जानते हो कुमार मानसरोवर में सभी नग्न स्नान करते हैं--देव-देवी साथ-साथ!'

'पर यह तो.......'

'देव लोक नहीं, यही न?

हम हँस पड़े। वे बोली', 'पर तुम्हीं तो कहते हो, स्वर्ग मेरे चरणों में लिपटा उतर आया है'

'सत्य है, देवी!

हम हँसे। वे फिर बोली, 'तुम जल्दी करो यहां कोई नहीं। लो मैं मुँह फेर लेती हूँ।

देवी मुंह फेर, पूर्व आकाश में उठते चांद को टकटकी लगाकर देखने लगी,

मानों उसका सारा अमृत अपने रसीले होठों से पी जायंगी। मैंने जल्दी-जल्दी, सारे वस्त्र उतार कर अलग कर दिए। रह गया मात्र, कक्ष ( अण्डरवीयर )।

अब देवी ने मेरी ओर मुड़ कर देखा व पल भर चकित नेत्रों से देखती रहीं। मैंने कहा, 'आपके सम्मुख यूं खड़े होते मुझे शरम आती है देवी।

मैं देखती हूँ तुम्हारा तन तो तुम्हारे मन से भी सुन्दर है राजेश। आह, तुम कितने सुन्दर हो ? कितने ?....

यह कहते-कहते देवी आगे बढ़ी और अपनी मृणाली सी लम्बी बाहें मेरे गले में डाल दी। मैंने आँखें मूंद ली व एकाएक चिल्ला पड़ा, बड़े जोर से नहीं-ही।

मैं चौंक कर उठ बैठा। मेरे मधुर स्वप्न का अन्त हो गया ! देखा तो रेशमा हक्की-बक्की मेरा मुंह जोह रही है।

'मैंने पूछा, क्या बात है रम्मी ?

वह बोली, तुम इतने जोर से चिल्ला क्यों पड़े ?

मैं चिल्ला पड़ा !

'नहीं। बात यूं हुई कि जब मैं सोकर उठी, तो तुम्हारे सिर पर हाथ रखी देखा वह पहले से भी अधिक जल रहा था फिर तुम्हारी छाती पर हाथ रखी वह भी बुरी तरह जल रहा था तुम्हारा बुखार और भी बढ़ गया जान में बेचैन हो उठी। कुछ भी न सूझा ,क्या करूँ ? तो तुम्हारे गले में दोनों बाहें डालकर मारे प्यार के .. और तुम चिल्ला पड़े, नहीं।

और उसकी आँखें फिर से आंसुओं से भर आईं। उसने स्वप्न पूछा, तो मैंने कह दिया फिर बताऊँगा।

और आज !

आज इस बंगले में पलंग पर पड़ा-पड़ा देख रहा हूं दूर तक फैले हुए चाय के हरे-भरे खेत, उनमें पंक्ति बद्ध खड़े सिरिस के वृक्ष, ब्रह्मपुत्र का विशाल चमकीला तट, उसके पार हिमराज की चोटियाँ जिन पर पड़ी हिमराशि सूरज की किरणों से अभी भी चमचम चमक रही है। पास में पसेटिया की टेसू सी लाल फूलनुमा पत्तियाँ नन्हीं-नन्हीं लड़कियों के सिर के बाल में लाल फीते सा-सामने के पाइन के वृक्ष में ऊपर से नीचे तक लिपटी हुई आलमैण्डा की लताएं और दूरी पर क्षितिज के छोर पर हिम की वे उठी हुई गोलाकार, तिकोनी, नुकीली दो चोटियाँ-हिमंतिनी की हिम की डली।

और वह खोया हुआ स्वप्न।

और खोई हुई रेशमा।

साँझ हुई। दीप जले। रेशमा ने जलते-बलते काँपते दीप का हर घर में दिखाया। तुलसी, शिव को दिखा फिर मेरे कमरे में आई! धीरे से बोली।

'रज्जू ?

'ऊ'

'रज्जू ?'

'ऊ'

'आ तेरी आरती उतार दूँ।

'रहने दे'

'नहीं रे, इससे भैंरो बाबा खुश होकर तेरा बुखार उतार देंगे।

'मुझे बेकार तंग न कर रम्मी'

'नहीं रज्जू। भइया मेरे, राजा भइया।

मैंने करवट फेरी और जो दृश्य देखा वह आज भी हृदय-पट पर अंकित है! वह शायद कभी न भूलेगा। कभी नहीं।

रेशमी मेरे पलंग के बगल में खड़ी थी उसने आँचल का एक छोर कमर में खोंस लिया था, दूसरा छूटा हुआ था! बाएँ हाथ की कोहनी को तनाव देकर आँचल को यूँ खींच लिये थी जैसे नन्हीं सी नैया में श्वेत पाल तना हो।

उसके दाहिने हाथ में जलता हुआ दीप था जिसकी लौ इतनी सुरक्षा के बावजूद भी, कभी-कभी काँप जाती थी।

दीपक की लौ में दिए का भरा तेल चमकता था वाती स्पष्ट दिखाई देती थी। रेशमी का सारा आँचल उजाले में चम-चम चमकता था। उसका मुँह तो मानों उस प्रकाश की ज्योति में चांद सा खिल पड़ा था! उस नन्हें से दीप के मन्द प्रकाश में रेशमी का सौंदर्य मन्द-मन्द मुस्करा रहा था और उसे कुछ भी पता न था।

कमरे में हर स्थान पर अँधेरा। मात्र उसके मुख व उसके वृक्ष पर दीपक का पूर्ण प्रकाश। दीपक की लौ अत्यन्त ही पास होने से उसकी आंखें मारे चमक के जगमगा उठी थी और सिर के बाल एक अजीव धूप-छाया का सृजन करते थे

मैंने देखा व मुझे याद आ गई अपने सपने की हिम देवी! मन में सोचा,

क्या पता ? शैलजा, गौरा पार्वती हो ? स्वप्न में मुझे दिखाई दी, यह कहने के लिए कि मैं तेरे घर में रेशमा बन कर रहती हूँ, तू इसे न भूल !

मुझे यूँ खोया-खोया-सा देख रेशमी बोली'

'क्या बात है रज्जू ?

कुछ नहीं रे, मैं अपने सपने की बात सोच रहा हूँ।

'मगर तूने बताया नहीं, क्या देखा सपने में....

अभी अच्छा तो होने दे, तेरे पेट में....

और वह, खिलखिलाकर हँस पड़ी दीपक हिल गया, लौ काँप उठी, उसके दाँत चमक उठे-अनार के दानों से सजीले श्वेत दाँत। उसकी काया डोल उठी ! डाली के हिलने से....

और उसने आँचल के तनाव को बाएँ से छोड़ अब दोनों हाथ से दीप पकड़ लिया व बोली, तू भैरो बाबा की याद कर, मैं तेरी आरती उतार लूँ।

मैंने कहा, अच्छा।

और दोनों हाथ से वह दीपक ले मेरे मुख-मण्डल के चारों ओर बाएँ से दाहिने गोल वृत्ताकार दीपक घुमाने लगी। साथ-साथ बोलती जाती थी,

आलो माई<br>
चालो माई<br>
दीप जरै<br>
मन भरै<br>
रज्जू के<br>
भैरो बाबा<br>
रक्षा करै।

ऐसा उसने तीन बार किया। मैं भैरो बाबा का तो क्या ध्यान करता रेशमी के पीछे की दीवाल पर उसकी बड़ी सी छाया को गोल-गोल घूमते देखा, दीपक के मन्द प्रकाश को गोल-गोल उसके मुँह पर छाती पर चक्कर काटते देखा व लगा कि इस आलोक-मण्डल के मध्य में जो रूप की खान चमकती है वही तो हिमादेवी है। देवी ने क्या कहा था अपना नाम ? 'शैलजा।'

शैलजा यानी पार्वती। भैरो बाबा, भैरो बाबा कौन ? शिवशंकर के कोतवाल। यही न ? रेशमा-शैलजा-अपने कोतवाल को इस संध्या बेला में आदेश दे रही है कि वह रात में बुखार उतार ले।

मैं यही सब सोच रहा था व दीप के प्रकाश में चमकते रेशमा के सौंदर्य को छक कर पी रहा था कि उसकी आरती समाप्त हो गई।

मैंने चकित होकर पूछा, 'बस ?'

'और क्या ?'

'नहीं, रम्मी थोड़ी सी आरती और उतार ले।'

'नहीं रे भैरो बाबा की आरती तीन बार से अधिक नहीं उतारते।'

'तो अब भोले बाबा की उतार' और हम दोनों खिल-खिलाकर हँस पड़े। उसने कहा, 'अच्छा ले।'

और दो बार उसने और दीप घुमाया। वही गोल-गोल घूमती दीवार पर देवी की छाया, उसका चमकता-दमकता मुख-मण्डल, धूप छाया में चमकते उसके नन्हें नन्हें वक्ष।

उसने फिर बन्द कर दिया। मैंने फिर हठ किया।

'नहीं, रम्मी सात तो पूरा कर दे।'

'देख रज्जू यह खिलवाड़ नहीं देवता की बात है।'

'तभी तो मैं 'देवी' से कह रहा हूँ।'

और हम दोनों फिर हँस पड़े। वही बोली, 'रज्जू अब, बस कर, तू लेट जा।

उसका बायाँ हाथ अपने हाथ में ले आग्रह से मैंने कहा, 'नहीं रम्मी, दो बार और देख सात तो हो जाने दे, देवी की सात पिण्डा, देवी पर चढ़ाते हैं सात रोटियाँ, देवी की.......

'सात आरती।'

वह बोल पड़ी व हम जोर से खिल-खिलाकर हँस पड़े। वह बोली, पहले तो तू इतनी आना-कानी करता था ?'

'पर अब अच्छी जो लगती है।'

'आरती ?'

'नहीं, तू।'

'धत्'

'तू नहीं तेरी छाया रे, दीवार पर गोल-गोल घूमती सी।'

'अच्छा ! मैंने भी पहली बार तो आँख जरा मूँदकर भैरो बाबा को याद

'अच्छा ! मैंने भी पहली बार तो आँख जरा मूँदकर भैरो बाबा को याद
किया पर दूसरी बार तेरा छाया दीवार पर घूमते देखी........और........

'और क्या रे ?

'कुछ भी नहीं'

'नहीं रम्मी ! बोल दे ।'

'दिए की लौ में तेरा मुँह कितना चमकता है ? राजकुमार सा ।'

'और तेरा ! राजकुमारी सा'

'अच्छा अब केवल दो बार आरती उतारेंगे देवी की सात परिक्रमा पूरी हो जायगी, तू आगे हठ न करना । अच्छा ।'

'अच्छा ! मगर इस बार मैं भी बोलूंगा ।'

वह फिर आरती उतारने लगी व बुदबुदाने लगी । इस बार मैंने उसके साथ-साथ मंत्र दोहराया—

'आलो माई
चालो माई
दीप जरैं
मन भरैं

रज्जू ( रम्मी ) के,
भैरो बाबा
रक्षा करैं ।

मंत्र में 'रम्मी' कहा । वह मारे खुशी के निहाल हो गई व दीप आले पर रखकर हाथ में एक लाल फूल ले उसने मेरे चारों ओर घुमाया व 'ऐंछ, कर ताखे पर रख दी । 'ऐंछते' समय बोल रही थी,

'रज्जू के रोग – व्याधि सब हरो भैरो बाबा ।'

आरती समाप्त हुई । मैं फिर आराम से लेट गया । वह मेरे पास मेरे ही पलंग पर बैठ गई । उसने मेरा एक हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया व बोली,

'रज्जू, जानता है, आरती उतारते समय मेरे मन में क्या बात थी ?'

'क्या ?'

'यही कि रात भर मैं तेरी आरती उतारती रहूँ, व तेरा मुँह देखती रहूँ ।'

'मुँह तो तू रात-दिन देखती है ।'

'पर आरती के समय की बात और है !'

'तू जानती है, मैं क्या सोचता था ?'

'नहीं'

'कि जनम भर मेरा बुखार बना रहे व तू आरती उतारती रहे।'

'ऐसी अशुभ बातें मुँह से नहीं निकालते राजू।

'मैंने उसकी बात अनसुनी करते हुए कहा, 'तू आरती उतारती रहे........ मैं, तेरा मुँह देखता रहूँ। सोने की देह में चाँद सा मुखड़ा।'

रम्मी का सारा तन-मन उल्लास की गुद्गुदी से सिहर उठा। मेरा हाथ अपने हाथ में सहलाते हुए बोली—

'और ?'

अब उसके मुख पर चुहुल नाट्य कर रही थी। मैंने कहा,

'हिम की डली ?'

'एक से दो।'

इस घटना के पन्द्रह बरस बाद कलकत्ता के यूनिवर्सिटी स्इन्ट्रीच्यूट हाल में, एक कवि-सम्मेलन में एक सुशील नवयुवक कवि ने बड़े ही मधुर एक सुरीले कण्ठ में गाया—

'एक अकेला दीपक मेरा।
आँचल की छाया कर देना,
बुझ ना जाए दीपक मेरा !
एक अकेला दीपक मेरा !'

और मेरी आँखें भरी सभा में नम हो गईं। मन की लाज छिपाने के लिए, मैं मंच पर से उठ गया।

आज रात को 'विविध-भारती' में पंचरंगी प्रोग्राम में कोई दर्द-भरे स्वर में गा उठा 'प्रसादजी' की अमर पंक्तियाँ'—

'शशि मुख पर घूंघट डाले,
आँचल में दीप छिपाए,
जीवन की गोधूली में,
कौतूहल से तुम आए।'

और इस आधी रात की बेला में, सुनसान व एकाकीपन में आँखों के मोती कागज पर ढुलक पड़े।

जाने कहाँ गई वह आँचल की छाया !
कहाँ गए वे दीप ?
और कहाँ गई ?
वह आरती !

## ५

थोड़ा अच्छा होते ही मैं दोपहरी में लगनेवाली बाग की रस-चर्चा में शामिल होने चल पड़ा। षट-रस चर्चा यहाँ होती है जो षटरस भोजन से भी स्वादिष्ट लगती है और वह भी मुफ्त। किसी के घर की लाज का लहंगा पेड़ पर टाँगना हो, किसी पर कीचड़ उछालना हो, किसी का भेद जानना हो, बाग से बढ़कर कोई स्थान नहीं गाँव में। यहाँ पर घर-घर की, गाँव नगर की, जवार-पथार की, देश-विदेश की खबरों की चर्चा होती है, टीका-टिप्पणी होती है।

यह तो ठहरा बाग। सबेरे से दोपहर तक चिलचिलाती धूप में खेत से दूब की जड़ व 'राड़ी' खोद-खोद कर खेत की अच्छी तरह से गोड़ाई कर नव-जवान व अधेड़ किसान आते हैं, भर थाली 'सत्तू' और एक घड़ा (कभी-कभी पीतल का) जल साफ कर बाग में पधारते हैं, कोई तो अंगोछा बिछाकर लेट जाता है, कोई घुटनों को मोड़कर पीठ व घुटने एक साथ अंगोछे से बाँध कर यूँ बैठता है जैसे राकिंग चेयर में बैठा हो। कोई-कोई समभाव से यूँ ही बैठ जाता है। जमीन पर बैठने में क़िसी को संकोच नहीं, एतराज नहीं। न देह मैली होती है न कपड़े। भगवान की धरती व माटी का तन, फिर भेद कैसा?

लीजिए, ये आए दासा पांड़े। इनका पूरा नाम दशरथ पांड़े हैं, पर गाँव में इतना बड़ा नाम थोड़े चलेगा। लोग 'दासा-दासा' कहते हैं। इनकी उमर पैंतालीस की हो गई मगर ये शोभा के लिए 'लिलारी' कढ़वाते हैं, यानी सिर पर सामने के बाल गोलाकार कटवा कर दोनों साइड में बंगाल की खाड़ी बनवाते हैं, मुँह तो मिट्टी के घरों में लगने वाले 'घोड़मूँहे' का है मगर खत आधे गाल तक पहुँचती है, 'होशियार' कहलाने का शौक़ इन्हें बहुत है, इसलिए प्रतिष्ठा बनाने के भ्रम में ये 'मिरजई' पहनते हैं और अंगोछे के खूंट में माल-मसाला बाँधकर चले आ रहे हैं।

'रमनथवा' बाग में पहले से बैठा है। वह भी एक पूरा मौजी जीव है, मिडिल तो क्या पास कर लिया दुनिया भर की विद्या हासिल कर ली। अब पाँच बरस से गाँव में मटर गस्ती करता है। न काम न धाम। बाप पुलिस में जमादार है ५०) महीना भेजता है। खेत सब बटाई पर उठा दिया है। घर में माँ को छोड़ और कोई नहीं। अब भला रामनाथ को किसकी फिक्र है?

मलमल का महीन सफेद कुर्ता व चमचम चमकती सेनगुप्ता की धोती बराबर पहनता है। थोड़ी बहुत 'धूल' भी चढ़ाता है और गइया का पाँच सेर दूध कुछ फाड़कर कुछ यूँ ही हजम कर जाता है रोज। मन में मस्ती छाती है, तो एक तान छेड़ देता है। अभी-अभी इसने छेड़ा था,

'उठलि जवनिया
बैरिन भइली देहिया.........'

अपने आगे रमनथवा किसी को कुछ लगाता नहीं और छेड़ देता है किसी भी लड़की को। कितनी ही बार झगड़ा होते-होते बचा। कभी जो पूछो, 'तू क्यों ऐसा करता है? 'तो बोलता है,

'तो छेड़ देने से क्या घट गया? न मैंने कुछ लिया न उसने कुछ दिया! जरा मन में रस घुल गया, जीभ पर पानी आ गया।'

'फिर मेरी शादी थोड़े हुई है जो मैं खूँटे में बँधा हूँ। अरे मैं तो छूटा साँढ़ हूँ चाहे जिस खेत में चरूँ'—हा–हा–हा'

सभी हँस पड़ते। एकाध बार इसने सीटी बजाई खुलरिया को देखकर। पर वह कौन कम है? उसने हाथ से बनाकर 'चोंच' दिखा दी।

दासा पांड़े के आते ही उसने छेड़ा।

'काका मसाला लाए हो तो जरा बाँटो न!'

'नहीं रे, इससे पेट में 'रोग' पड़ता है'

'अरे काका, आज तो जीभ का जायका ले लेने दो। जब 'रोग' पकड़ेगा तो देखी जायगी। आज का मजा आज, कल का रोग कल।'

दासा पाण्डे ने अंगोछे के खूंट को खोला तो उसमें से क्या निकला? ताजे सोंधे खपरैल के टुकड़े। सूखे हुए खपरैला में एक विचित्र स्वाद होता है। दासा पाण्डे को यह आदत बहुत दिन से है। खपरैल पसन्द आने पर वे किसी की छत पर से उतार लेने में भी नहीं हिचकते। इस चोरी को वे चोरी मानते भी नहीं। ताजी सोंधी 'आवें' से निकली खपरैल की तलाश में वे संचिया व

कुम्हारिन के घर का, आवें का चक्कर काटते रहते हैं। पर वह भी चुड़ैल कम नहीं है, जवानी में दासा पाण्डे के रसिया मन की थाह उसे खूब लगी थी खेत में, खलिहान में, 'मटीखाने' में इसलिए अब चौकन्नी रहती है कि कहीं पांडे सोंधी खपरैल खोजते-खोजते उसकी जवान दोनों बेटियों पर हाथ न फेर दें। पाण्डे जब उसके घर के इर्द-गिर्द जाते तो वह भी चक्कर लगाती रहती। इन बातों की खबर दुलरिया खूब रखती है। उसी से मुझे गाँव के बहुत से लोगों इतिहास-भूगोल मालूम होता रहता है।

पांडे ने रमनथवा को एक टुकड़ा दिया। दो तीन और आदमी बैठे थे उन्होंने हाथ फैलाया तो बोले,

'यह गँवारों के लिए नहीं है!'

सभी ठठाकर हँस पड़े। रामनाथ जरा सा टुकड़ा मुँह में डालते हुए बोला,

'यह किसकी खपरैल नोच लाए काका?'

'किसी की नहीं रे, यह तो आँवे का है'

'किसके 'आवें' का? सचिया ब के?'

सभी थोड़ा सा मुस्कराए। काका बोले,

'हाँ, रे उसी के आँवे का है'

'रमनथवा' मुँह बनाकर बोला,

अब उसके आँवें में गरमी नहीं, काका,

आजकल उसकी बेटी सोनिया के आँवें में गरमी है। सोंधा माल उसी के पास मिलेगा'

सभी ठठाकर हँस पड़े। पांडे बात बदलते हुए बोले,

'सुना है सरकार' 'डोमिनिया' देने के लिए 'जवाहिर लाल' की 'नकदरिया' करती है मगर वे कहते हैं कि 'पूरन सुराज' से कम नहीं लेंगे।' रामनाथ-अरे काका तो वे ब्राह्मण ठहरे, भला 'डोमिनिया' को क्या करेंगे? पांड़े—वह तो खड़ानन से जाके पूंछ।

सभी ठहाका मारकर हँस पड़े। सब हँसते हों तब हँस पड़ना, पाण्डे गँवारपन की निशानी मानते हैं, इसलिए वे नहीं हँसे। वे कभी-कभी तब हँसते हैं जब कोई न हँसता हो, ऐसी रहस्यपूर्ण हँसी हँसते हैं कि किसी की समझ में नहीं आता वे क्यों हँसे? उनका चेहरा भी यही जाहिर करता है—

तुम सब गाँव के 'गँवार-गुद्दड़े' यह भेद क्या जानों मैं क्यों हँसा ? तुम जाओ घास छीलो। ये सब महीन बातें हैं।

'तुम्हारे लिए नहीं !'

पांड़े मुँह में खपरैल का एक नन्हा सा टुकड़ा इस अन्दाज व जतन के साथ डाले जैसे बनारसी रईस मुह को उठाकर पान की गिलौरी डालते हैं। फिर जरा देर मौन रहकर बोले, जैसे बड़े गम्भीर मंथन के बाद बात निकली हो।

'गान्हीजी' ने 'परतिज्ञा' की है कि हम 'सुराज' लेंगे नहीं तो हमारी लहास समुन्दर में तैरेगी।

रमनथवा भला कब चुप रहता ? बोला,

'काका, सुराज तो मिलने से रहा। उनकी लहासे तैरेंगी समुद्र में !'

'छिः-छिः कैसे 'अशुभ' बात मुह से निकालता है।'

'अशुभ नहीं काका, तुम्हीं बताओ कहीं चुपचाप लात खाने से सुराज मिलेगा। अब यही ले लो, डोम-चमार, दुसाध वगैरह छोटी जातियाँ हैं अछूत। ये जुग-जुग से लात खाते आ रहे हैं, तो क्या इससे वे बड़े आदमी हो गए ? या लात खाना उनका बन्द हो गया ?'

'हूँ', पांडे बोले। रमनथवा की बात सबको जँची। वह फिर बोला,

'भेड़-बकरी की ही बात देखो काका। ये सब जाने किस जुग से कटती आ रही हैं। इन्सान इसको काटता आया है और काटता रहेगा। न तो ये घटेंगे न इन्सान काटना छोड़ेगा। मगर इससे इनका काटना तो बन्द न होगा चाहे कटते समय ये 'मेमियाएँ' या न 'मेमियाएँ'।'

सभी हँस पड़े। रमनथवा बोला,

'नेता लोगों का यह लेक्चर क्या है ? मिमियाना है। चार लात खाते हैं तो गरजने लगते हैं, मेमियाते हैं, नतीजा ? सरकार चार जूते लगाकर जेल में ठूंस देती है।

रमनथवा बाजी मारे जा रहा है, यह बात पांडे को कुछ जँची नहीं ! वे बोले,

'अरे 'महात्तमाजी' इतना बड़ा आन्दोलन सुराज के लिए चला रहे हैं, कुछ सोच ही समझकर तो। वे, जवाहिरलाल माथावाले आदमी हैं, तू मुश्किल से 'अछरकट्टू' है, क्या जाने ये बातें ?

पांडे बाजी मार ले गए। उनकी बात सबको जँची। उन्होंने चलते-चलते आखिरी पासा फेंका,

'जानते हो इङ्गलिस्तान के प्रधान मंत्री को, राजकुमार ने डाँटा है, जवाहिरलाल को जेल में रखने के लिए !'

'अच्छा !' चकित होकर सभी बोले, जैसे पांडे ने भारी रहस्य का उद्‌घाटन किया हो। पांडे और कसते गए।

'उन्होंने कहा है जवाहिरलाल हमारा दोस्त है 'स्कूलिया-यार'। हम दोनों एक साथ पढ़े हैं, खाए हैं, खेले हैं। मैं इङ्गलिस्तान का राजकुमार हूँ वह 'भारथ' का है। एक राजकुमार को दूसरे राजकुमार के साथ ऐसा सलूक नहीं करना चाहिए। दोस्त की दोस्ती में बट्टा लगता है।'

'हाँ—आँ-आँ' सभी बोले।

किसी ने पूछा, 'और जवाहिरलालजी क्या कहते हैं ?'

'वे क्या कहेंगे ? बड़े लाट साहब डर के मारे जब उनको जेल से छोड़ने गए तो वे बोले, 'चले जाओ हमारे सामने से, हम बिना सुराज लिए यहाँ से नहीं जाएँगे।'

पांडे का सिक्का पूरा जम गया अब तक। रमनथवा जल-भुनकर खाक हो रहा था। वह एकाएक बोला,

'सुराज क्या संचियाब की सोंधी खपरैल है काका ? जो वे हाथ में लेकर आवेंगे ?'

सभी जोर से ठहाका मारकर हँस पड़े। पांडे का मुँह इतना ( छोटा) सा होकर रह गया।

इतने में दीपन पांड़े आ धमके। ये भी एक जीव हैं, ढीली धोती पहनते हैं, जो बराबर खिसक कर नीचे चली जाती है और दिन भर ये सँभालते रहते हैं। परिश्रम बहुत करते हैं, मुँह अँधेरे, अलल सबेरे से लेकर 'दिया-लेसान' तक न तो हल-बैल को चैन लेने देंगे न अपने लेंगे। बैल इनके खटते-खटते या तो मर जाते हैं या आधे मोल में उधार बिकते हैं। हलवाहे हर साल छोड़कर भागते हैं, यही लंगड़ा दो साल से टिका है, सो उनकी सारी फुर्ती वह अपने डेढ़ टांग में लपेटकर डाल देता है।

रहे अपने, सो न तो खटते-खटते ये मरते हैं और न पनपते ही हैं। 'धुरियामुअन' रक्ता-जिअन' का हाल है, न मरे न मोटाय। बरहमासी-एक सी

रंग रखने वाली सूरत मिली है इनको पर दूसरों की खिल्ली उड़ाने में तो पूरे उस्ताद है।' लीजिए आए तो मगर साथ में मूंज' लेते आए रस्सी बटने के लिए। मुंगरी व बाल्टी में पानी साथ-साथ लाए हैं, क्या मजाल जो एक 'मिलिट' जाया हो जाय।

आजकल की लड़कियों की तरह बराबर उनकी सलाई चलती रहेगी। उँगलियों को एक लहमे की चैन मयस्सर न होगी।

इनको अब रतौंधी होती है, अंधेरा होते ही साँझ से कुछ सूझता नहीं। पर इससे क्या ? दिन को तो सूझता है। आते ही 'मूंज' की अँटिया फेंक दी मिलोटना के सामने कहते हुए–

'ले रे मिलोटना जरा चार मुंगरी मार तो दे इस पर।'

जब काम जारी हो गया तो बोले,

'रमनथवा सुना है तुमने लोहापुर का हाल ?'

'क्या, नू-नू,' रमनथवा बोला।

सभी दीपन का मुंह देखने लगे। देखे, कौन सी फुरहरी छोड़ते हैं ? दीपन बोले,

सुना है परसों एक दुलहिन बन्द पालकी में प्यास के मारे मर गई।'

'ऐं !' सभी ने अचरज से कहा।

'जरा विस्तार से सुना दीपन' दासा पांड़े बोले।

दीपन आगे बढ़ा—

बात यूँ हुई कि एक बारात गंगापार से आ रही थी। आजकल की गरमी व लू तो जानते ही हो। दुलहिन को पालकी में बिठाकर दरवाजा बन्द कर दिया ऊपर से 'ओहार' तो था नहीं। बेचारी गरमी, प्यास व लू के मारे झुलस गई।

'लोहापुर के बाग में कुएँ के पास पालकी रुकी। कहार जब लोटे भर पानी ले दुलहिन को पूछने गए तो अन्दर से कोई आवाज न आई। पालकी का फाटक पीटने लगे फिर भी कोई आवाज नहीं आई। फिर मारे डर के खोल दिया तो क्या देखते हैं कि दुलहिन बेहोश पड़ी है, गहनो से लदी, साड़ी-चद्दर में लिपटी।

'मुंह पर पानी के छींटे दिए, पर कुछ भी न हुआ। लहास गांव ले गए।'

इतना संगीन मामला और रामनाथ को कुछ भी न कहना हो ? भला यह कैसे हो सकता था ? वह झट से बोला,

'नू-नू, परसों मैं लोहापुर के बाग में था जब यह कैसे हुआ !'

'अच्छा !' कहकर सभी चकित भाव से रामनाथ की ओर देखे जैसे दोहा के पीछे लगा 'सोरठा' बाकी रह गया हो, सुनने के लिए ।

सबका ध्यान यूँ आकर्षित कर रमनथवा आगे बढ़ा :

'मैं लोहापुर गया था कुछ जरूरी काम से तिवारी के यहाँ । वहाँ से लौटते समय बाग में जरा रुक गया कि पानी पी सुस्ता कर दोपहरी ढलने पर चलेंगे। उसी समय वह पालकी आई साथ में पाँच सात बाराती भी थे ।

'फिर क्या हुआ ?' कोई बोला'

दीपन व दासा दोनों चुप थे क्योंकि बीच में ऊपर-ही-ऊपर लूटना रमनथवा का उन्हें पसन्द नहीं आया ।

'जब कहार लोटे में पानी लेकर पालकी के पास गया व 'ढबढबाने' लगा तो हम सभी जमा हो गए। फिर उसने मुझसे पूछा, 'क्या करें बाबू, खोल दें ? मैंने कहा 'खोल कर देख ।'

दीपन बोला, 'भला तुमसे वह क्यों पूंछने लगा ? तुम कौन थे ? तीन में या तेरह में ।'

रमनथवा बिचका, 'तुम तो यूँ ही बीच में टाँग अड़ा देते हो नू-नू । अरे उसका एक भकुआ भसुर था सो उल्लू की तरह दूर खड़ा था, फिर किससे पूछता ?

'हाँ, देवर तो एक तुम्हीं थे। दासा पांड़े बोले ।

सभी खिलखिलाकर हँस पड़े । पर इससे रामनाथ का उत्साह ठण्ढा न पड़ा क्योंकि अभी असली बात तो उसने कहा ही न था । उसने फिर से कड़ी जोड़ी,

'पालकी के फाटक खोलते ही, सभी सन्न हो गए पालकी में औंधी हुई 'कनिया' पड़ी थी !

'हाय, हाय ! सब ने कहा ।

'मैंने कहार के हाथ से जल लेकर उसके मुँह पर छिड़का । क्या करता ? सभी टुकुर-टुकुर मुँह ताकते थे। किसी को सूझता नहीं था क्या करें ? क्या नहीं ?'

'हाँ-हाँ आगे बढ़ो।' सबको अब रस आने लगा था।

'दो तीन चुल्लु जल छिड़ने पर भी जब उसने आँख न खोली तो मैंने कहा, इसे बाहर निकालना चाहिए पर निकाले कौन ? किसी को छूने का साहस न हो। फिर मैंने उसके लगने वाले भकुए भसुर से कहा, 'आप निकालिए ना बाहर।' वे बोले, मैं कैसे छू सकता हूँ, मैं भसुर जो लगता हूँ ! 'मैंने सबसे पूछा, फिर मैं निकालूँ ?' सबने झट से 'हाँ-हाँ' किया। फिर मैंने पालकी में सिर डाल बड़ी मुश्किल से उसे दोनों बाहों पर चित्त उठाया व तब तक रोके रहा जब तक कहार पालकी से गलीचा निकालकर जमीन पर बिछा न दिए। फिर मैंने उसे गलीचे पर लिटा दिया।'

'फिर क्या हुआ ?' उत्सुकता व घबराहट के मारे कोई बोला। रमनथवा का रंग जम गया था। इसलिए उसने वह बात कान न किया। अपनी ही हाँकते हुए बोला—

क्या वह नायाब चीज थी नूनू, गुलाब की अधखिली कली ! इतना खूबसूरत व मासूम चेहरा। सांस-प्रान न होने पर तो इतनी लुभावनी थी जाने जीती होती तो क्या होता ?'

'अच्छा छोड़ अपनी लच्छेदारी। असली बात बता' कुढ़कर दीपन बोले।

'बताता हूँ नूनू, तुम बूढ़े हुए क्या जानो ? जवान होते तो तुम्हारा भी कलेजा मुँह को आ जाता।

'अच्छा बोल, बोल। मैं भी कभी जवान था।'

'अच्छा ! मुझे नहीं मालूम था।' सभी हँस पड़े।

'फिर क्या होता ! अपनी रेशमी चादर के पल्ले से हवा किया मैंने मुँह पर। मगर वहाँ जान कहाँ थी जो लौटकर आती। इतने में उसके दूल्हे महाराज दूसरी पालकी में पधारे और आकर 'बकर-बकर' उसका मुँह ताकने लगे जहाँ सभी घेरे बैठे थे। मैंने कहा, 'लीजिए यह अपनी अमानत संभालिए 'तो बोले' अब क्या रहा संभालने को। पहले पहल मुँह भी देखने को मिला तो मरा हुआ।' उनके बड़े भाई अब बोले 'घबराना मत बबुआ, इसी लगन में तेरा दूसरा व्याह कर दूँगा।' और विजय-गर्व से सबकी ओर ताके। मैंने कहा 'बेचारी ! 'तो बोले, 'हाँ, इसका पौरा खराब था, पहले चरण में ही अशुभ हो गया। चलो, भगवान जो करते हैं ठीक ही करते हैं, गाँव जाते-

जाते तो 'लहास' इतनी अकड़ जायगी कि गहने निकालने में भी दिक्कत पड़ेगी।'

'इस पर कहार बोले, अब हम यह 'लहास' पालकी में नहीं ले जायेंगे। आप लोग 'रंथी' बनाकर ले जाइए। पालकी 'लहास' ढोने के लिए नहीं है।'

'भसुरजी कड़के, 'ले क्यों नहीं जायगा, सट्टा नहीं किया है?' वे बोले, 'सट्टा किया है' दुलहिन ढोने के लिए, 'लहास' नहीं। यह अकड़ जायगी तो पालकी काटनी पड़ेगी फिर लहास ढोने से कोई शादी-व्याह में मेरी पालकी न करेगा, तो कौन भरेगा हमारा नुकसान?'

इतने में बगल वाले पेड़ से एक आम टपका। दासा व दीपन उचककर रह गए। तीन लड़के-जवान एक आम पर टूट पड़े, थोड़ी छीना-झपटी भी होने लगी।

रमनथवा की कहानी का रस बिखर गया और उसका मुह लटक गया।

मैंने दूर पर देखा, दुलरिया के कमरे की ऊँची खिड़की पर से झाँक कर मुझे रेशमा बुला रही थी।

मैं उठकर चुपचाप चला गया।

पर वह अज्ञात दुलहिन कहाँ गई?

## ६

गाँवों में 'मिथुन-जनन' की क्रिया बराबर आँख के सामने आती ही रहती है, बच्चे, बूढ़े-जवान, सभी के सामने, सम रूप से। सब देखते हैं, कोई लजाता नहीं।

प्रकृति की इन भौतिक-क्रियाओं में गांव एकदम से प्राकृतिक है। आप कहेंगे निर्लज्ज। कह लीजिए जो जी में आए। पर बात कुछ ऐसी ही है। और इसमें 'भोजन' को भी शामिल कर लीजिए तो बस, हो गया गाँव का जीवन। दो शब्दों में 'भोजन-प्रजनन।'

हाँ, किसी को भी सबसे पहले ये दो चिन्ताएँ सताती हैं। कभी-कभी इन्हें लेकर गांव का निवासी बड़ा ही निर्लज्ज, स्वार्थी व कुरूप हो जाता है।

गर्मी के दिन हैं। गड़ेरिए भेड़ों का झुण्ड लिए खेतों में घूमते हैं। हमारे सामने के खेत से भेड़ों का झुण्ड निकला। 'में-में' की आवाज ऊपर से 'सट सट' पतली 'सटकी' से मारते हुए गड़रियों की आवाज 'मुर्रर-मुर्रर'।

हम व रम्मी दौड़कर बाहर निकले। चिल्लाये—

हमरा गांवे भेड़
भेड़िया गड़ेर ;
गड़ेरिया के—
हमरे भेड़।

रिक्त स्थान पर एक गाळी होती थी। ताली पीटकर हम दोनों चिल्ला रहे थे इतने में तीन-चार स्थान पर उस झुण्ड में देखा नर-भेड़ मादा पर उछल-उछल पड़ते थे।

भेड़ों के पीछे-पीछे पाँच-सात बकरियाँ थीं, उनमें एक बड़ा भारी बकरा था 'बोका'। झबरे बाल व दाढ़ीवाला। वह तो लपक-लपक कर यूँ टेढ़ा मुँह बनाकर 'एं-एँ-एँ-एँ' करता था कि बस, कुछ न पूछिए। और कूद-कूद कर कभी एक, कभी दूसरी बकरी की पीठ पर चढ़ जाता। उनके साथ वह रस ले-दे रहा था।

हमारी व रेशमा दोनों की दृष्टि उसी पर गड़ गई। 'हमरा गांवे भेड़'
'भेड़िया गड़ेर।'

जैसे भेड़ों का झुण्ड खिसकता गया, हमारी आवाज धीमी पड़ती गई पर दृष्टि निरंतर उस बोके का पीछा कर रही थीं। जब वे दूर निकल गए तो हमारी व रेशमा की आँखें मिलीं।

लगा जैसे हमने एक दूसरे का 'चोर' पकड़ लिया। पर इसमें 'साह' कौन था ?

हम मुस्कराए व आँखें नीची किए घर की ओर चल दिए।

अभी उस दिन मेरी 'मखवटी' (मानता) पूरी करने के लिए, शिवरात्रि पर, स्नान कर हम, रम्मी व दुलरिया शिवालय पर गए शिवजी को दूध व बेलपत्र चढ़ाने, मेरे बुखार उतरने की खुशी में वहाँ क्या देखा ?

मंदिर के कलश व कंगूरों पर कबूतरों का झुण्ड 'गुटर्गु-गुटर्गू' कर रहा था। बहुधा वे जोड़े-जोड़े में थे। मादा को नर बार-बार घेरता, चक्कर काटता, सुन्दर गर्दन मोड़कर छेड़ता, मनाता और मादा थी कि बस मान किए जाती। अन्त में वे रतिसुख में लीन हो जाते।

मदिर के कंगूरों पर इस दृश्य को देखने के लिए दोनों ठिठक गईं। मैं आगे बढ़कर चबूतरे पर चढ़ चुका था। मैं बार-बार आवाज लगाता, हाथ से संकेत करता पर वे दोनों थीं कि हटने का नाम न लेतीं। अन्त में उकता कर मैंने उनकी दृष्टि का अनुसरण किया तो कंगूरे पर का रसीला दृश्य दिखाई दिया।

जब दोनों जान गईं कि मैंने भी देख लिया है तो खिलखिलाती हुई मंदिर की सीढ़ियों पर बढ़ चलीं।

जाने इसमें क्या आकर्षण है? कौन-सा जादू है जो इन दोनों लड़कियों को इतना आकर्षित करता है, मेरी समझ में कुछ न आता।

मात्र उत्सुकता, कौतूहल मेरे मन में था।

मगर उनके मन में क्या था, सो तो वे ही जानें। हाँ, इतना मैं जरूर जानता था कि रेशमी को उतना रस नहीं मिलता, उतना चाव नहीं रहता जितना दुलरिया को।

और हमारी उम्रें भी क्या थीं?

पन्द्रह, तेरह, बारह पार किये थे।

दुलरिया, रेशमी, मैं।

यह दुलरिया भी अपने में ही एक पूरी दुनिया है।

तीन लोक से मथुरा न्यारी। अपने सामने गांव में किसी को कुछ लगाती नहीं। जाने कैसे मुझसे बचपन से ही पटती है व रम्मी से भी।

गांव के लोग कहते हैं वह साँढ़ है साँढ़। जो कोई पास जाए, सींग मार देगी। वह 'बाछी' नहीं, जो खूंटे बँध के रहे।

दुलरिया का बाप ठेकेदार है। कहीं आसाम में वह ठेके का काम करता है और खँचिया भर रुपया पैदा करता है। गांव पर केवल वह है व उसकी माँ, तथा एक नौकर, एक माली।

उसकी भाभी भी गांव पर रहती थी, मगर वह गत साल उसके भइया के पास चली गई कानपुर। उसका भी एक लम्बा किस्सा है फिर कभी कहूँगा।

दुलरिया दो वरस डिब्रूगढ़ में रहकर आई है, वहाँ किसी मिशनरी स्कूल में उसका नाम भी लिखा था, पर पढ़ाई कम व मेमों के तौर-तरीके बेसी सिख कर गांव पर आ गई।

इस साल फागुन में उसकी शादी हुई और दस-पन्द्रह दिन ससुराल रह कर गांव पर आ गई तब से और भी मतवाले सांढ़ की तरह अखाड़ती फिरती है।

अब पहले देखिए उसकी वेश-भूषा। सिल्क के फूलदार भड़कीले कपड़े का लम्बा कुरता, सफेद सलवार पांव में लाल-लाल ऊँची एड़ी का सैण्डल व गले में झीनी-झीनी सफेद चुन्नी लपेट कर आई है। कानों में बड़ी-बड़ी गोल-गोल बालियाँ झूल रही हैं।

न नाक में कील न माँग में सेंदूर। कोइ देखेगा तो क्या कहेगा ? यह भी कोई बात रही। पर दुलरिया को कोई कुछ भी नहीं कहता। किसी को कहने का साहस भी नहीं होता, इधर-उधर कान में फुसफुसाते भले ही हों।

भला बर्रे के छत्ते में कौन हाथ लगाए ? बर्रे काट न खायगी।

न लाज, न संकोच। न आँचल न परदा। सिर उठाकर छाती 'उतान' कर उत्तर प्रदेश के गाँव में सहर की चलन चलना—क्या 'सोभता' है ? पर कोई करेगा क्या उसका ? उसका बाप कमाता है वह 'सौख' करती है जिसकी छाती फटती हो फटे। जिसको न देखा जाय आँख मूँद ले। नाराज होगा घर जाकर दो कौर बेसी खा लेगा, और क्या ?

मगर दुलरिया तो वही करेगी जो उसके जी में आएगा। मां-बाप की एकलौती बेटी है, लाड़-प्यार में पली है, रुपये-पैसे की कोई कमीं नहीं। गांव की छोकरी, सहर में रह आई है, पढ़ी-लिखी नहीं है बेसी, न सही—'अछर कटू तो है ही। सीने-पिरोने, रसोई बनाने से उसे कोई मतलब नहीं, 'ऐशन-फैसन' में दिन-रात मस्त रहती है। हँसी, ठट्ठा, खेल-खिलवाड़, राग-रंग बस इसी में उसका जी लगता है और उसी में व्यस्त रहती है।

और करे भी तो क्या ?

कौन सा काम उसे करना है, चक्की चलानी है ? या मूसल ? न कूटना न पीसना, न रसोई-पानी करना। फिर क्या करे ? पानी पीटे ?

गांव भर को अंगूठा दिखाए रहती है। बात-बात में जूती से पीटने की

बात करती है। नाक पर मक्खी तो बैठने नहीं देती, कोई क्या खाकर उसकी 'पूठ' पर हाथ धरेगा।

अब लीजिए गांव में सब लड़कियाँ एक चोटी करती हैं, वह दो चोटी करके आई है। कोई क्या कर लेगा उसका?

जिसको जलना हो जला करे।

अब यही लीजिए, मनौती मेरी पूरी की जा रही थी, मगर मंदिर के भीतर दोनों मुझसे कुछ दूर-दूर, कुछ कटी-कटी सी रहतीं। जाने क्या-क्या बातें फुसफुसातीं व मुस्करा पड़ती। यह भी कोई बात हुई?

एक बार मैंने देखा दुलरिया रम्मी को शिवजी के 'अरघे' व 'पिण्डी' की ओर इशारा कर रही है। पर बात मेरी समझ में कुछ भी न आई। वैसे मैंने भी ध्यान से देखा—देखा शिव की काली, चिकनी, लम्बी, ऊपर गोलाकार स्थूल पिण्डी को, जो एक 'दिए' की शक्ल के 'अरघे' में स्थापित खड़ी थी।

रम्मी ने इसी पिण्डी के ऊपर दूध चढ़ाया, दूध पिण्डी को नहलाता हुआ नीचे अरघे में भर गया जैसे दिए में तेल-हो। उसमें न समा सकने पर वह पिण्डी के चारों ओर किनारे-किनारे फैल कर अरघे के नोकीले मुँह की ओर से नीचे वह गया।

अब रम्मी ने पिण्डी पर फूल चढ़ाया फिर चन्दन छिड़की, बेल-पत्र रखी व हाथ जोड़ जाने क्या बुदबुदाने लगी आँखें बन्द करके। मेरे ख्याल में आया भविष्य में भी मेरी रक्षा के लिए वर मांग रही है।

दुलरिया ने भी यह सारी क्रिया जल्दी-जल्दी पूरी की, फिर उनकी देखा-देखी मैंने भी।

हम इस मन्दिर तथा इस पिण्डी के इतने आदी थे बचपन से ही कि हमें इसमें 'देवत्व' छोड़ और किसी अर्थ का कभी भास न हुआ।

हम मंदिर के बाहर निकले। मैं आगे-आगे वे दोनों पीछे-पीछे। उनकी दृष्टि फिर कंगूरे पर कबूतरों की क्रीड़ा पर अटकी। मैं ठिठका, मेरी दृष्टि उधर पड़ी। रम्मी ने मेरी पीठ में एक धक्का दिया व बोली—

'चल उधर क्या 'ताकता' है?'

और वे दोनों मुस्करा कर चल दीं।

बाहर निकलते ही दुलरिया ने रम्मी से कहा—

'जानती है ? वह पिण्डी व अरघा क्या है ?'

'क्या है ?'

मेरे कान खड़े हो गए। मैं आगे-आगे धीरे-धीरे चलने लगा। फिर भी उनकी फुस-फुस कुछ पकड़ न आई।

दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ी। रम्मी के विस्मय का ठिकाना नहीं था। बोली जरा जोर से—

'तो हम यही पूजते हैं ?'

'और क्या' संसार में है ही क्या ?

कहकर दुलरिया मुस्कराई। दोनों हँस पड़ी। दुलरिया बोली,

'अभी तुम्हें रस नहीं मिला है, रस का चसका नहीं है।'

साल-दो-साल बीतने दो फिर जीभ चटकारती फिरोगी।'

कहते-कहते उसने राह चलते चुपके से रम्मी के कपोल में चिकोटी काट ली। उसका मुँह लाल हो गया, बोली—

'कभी नहीं दुलरिया। कभी नहीं।

'तू देख लेना।'

अभी से लच्छन देख रही हूँ।'

'और क्या, मेरे ही लिए तो रमनथवा मंदिर के कोने पर खड़ा, सीटी बजा रहा था।'

'उसे तो मैं इस उंगली पर नचाऊँगी' कहते-कहते दुलरिया ने दाहिने हाथ की 'कानी' उंगुली ( सबसे छोटी ) दिखा दिया। रम्मी मुस्करा कर बोली—

'देखना दुलारी, कहीं खुद ही नाचने न लगना।'

दोनों फिर मुस्कराईं। शायद दोनों के मुँह में 'मिश्री' की डली घुल रही थी। दोनों जैसे रह-रह कर उसे चूस लेतीं।

अब हम पोखरे पर पहुँच चुके थे। पोखरा बड़ा नहीं है, पानी गर्मियों में एकदम नीचे चला जाता है। किसी-किसी साल तो एकदम से सूख जाता है, फिर उजाड़ सी सीढ़ियाँ, गीली पांक व बीच में खड़ा पोखरे के 'ध्वजा' पर त्रिशूल, यही रह जाता है। पानी थोड़ा होने से, लोगों के नहाने के कारण, मटमैला हो गया है।

पास वाले गाँव से कुछ औरतें लाल, पीला ओढ़ पहन कर 'कंकन' उतारने आई हैं। जिस लड़की की शादी हुई है, वह बारह-तेरह साल की होगी, रेशमा जैसी। चाँदी के गहनों से लदी है, लाल साड़ी, लाल ब्लाउज नाक में नथुनी।

मैं देख कर हँसा। बोला—

'रम्मी, देखती है ?'

'हाँ रे।

'एक दिन तेरा भी कंकन' यूँ ही उतरेगा।'

तो तेरे सिर में क्यों दर्द होने लगा अभी से ?' खीझकर वह बोली। हम तीनों सीढ़ियों के ऊपर थोड़ा रुक गए यह 'मौर' सिराने की क्रिया देखने और शहनाई थी जो निरंतर सुरीला करुण-ध्वनि में तान छेड़े हुए थी। सब कुछ बड़ा मोहक, बड़ा दर्दीला, बहुत ही मीठा लगता था।

जब वे औरतें उस नई दुलहिन को लेकर वहाँ से चली तो उन्होंने तान छेड़ा—

माटी खने गइलौं रामाँ वहि मटी खानवा,
देवरवा पापी,
धरेला मोरी बहिया रे, देवरवा पापी।

गीत बड़ा रसीला था। तान भी सुरीली थी। जवान कुम्हारिन मिट्टी लेने गई 'मटीखाने' में, वहाँ एकान्त पाकर उसके जवान देवर ने उसकी बाँह पकड़ ली। गीत आगे बढ़ा जो मुझे याद नहीं।

हम भी घर की ओर चल दिए। चलते-चलते दुलरिया बोली,

'वह सोनिया, आ रही है क्या ?'

'हाँ, वही तो है' रम्मी बोली।

'रमनथवा ने उसकी बाँह पहले-पहल मटीखाने में हीं तो पकड़ी थी, तब से वह करीब-करीब उसके पूरे बस में हो गई।

'तब वह क्यों इधर-उधर मुँह मराता फिरता है ?' रम्मी बोली—

छूटा सांढ़ है जब तक पाँच खेत में गाल न मारे, पेट नहीं भरता' दुलरिया कहती गई।

रम्मी चकित रह गई। उसकी भौंहों पर बल पड़ गया। मेरी समझ में कुछ भी न आया।

इतने में सोनिया पास आ गई। दुलरिया से बोली —

'यह चिट्ठी लीजिए।'

'किसकी है रे ?'

'इसमें लिखा है, देख लीजिए' कहकर वह जाने-जाने को हुई, तब तक रम्मी ने पूछ दिया।

'रमनथवा की ?'

'हाँ'

दुलरिया ने घूर के देखा रम्मी को। फिर हँस कर सोनिया से बोली, 'तू मटीखाने जाती है ?'

'रोज-रोज !' कहकर हँसती हुई वह भाग गई।

उसके जाने पर दुलरिया ने लिफाफा खोला तो उसमें से दस रुपये का नोट निकला जिस पर लिखा था।

प्राण प्यारी,

तुम्हारे बिना पल भर को चैन नहीं। तुम्हें पाने के लिए दिल बेहद बेताब है। तुम कब मिलोगी व कहाँ ? सोनिया से खबर भेजना।

तुम्हारा
रामनाथ

दुलरिया ने चुपचाप इस खत को पढ़ा। जरा गम्भीर हो गई। इस पर रम्मी ने पूछा—

'क्या लिखा है रे ?'

दुलरिया हँस पड़ी व बोली, 'सुन'

उसने जोर-जोर से पढ़कर खत सुना दिया। फिर लपेट कर रखती हुई बोली—

'मैं तो लाला को वो मजा चखाऊँगी कि वे भी याद करेंगे। क्या किसी से पाला पड़ा था।'

यो कि दुलरिया हँस रही थी फिर भी गुस्से से उसका चेहरा लाल था।

७

एक साल और खिसक गया चुपके-चुपके।

सवेरे-सवेरे खा पीकर रम्मी व मैं जब मटरगस्ती में निकले तो उसने मेरे कंधे पर हाथ टेक कर चलते-चलते कहा--

'रज्जू तू जानता है, दासा पांडे ने अपनी माँ को 'हरी' में ठोंक दिया है।'

'नहीं रे, हरी क्या ?'

'मैं भी नहीं जानती, मगर कोई बहुत बुरी चीज है, चाची कहती थी।'

'क्यों ठोक दिया है 'हरी' में ?'

'क्या पता ? कहते हैं वे पागल हो गई है।'

'बाप रे बाप ! तब तो वे काट खायेंगी।'

'नहीं रज्जू, इसी से तो हरी में ठोक रखा है'

'मगर हरी क्या ?'

'मैं क्या जानूं ?'

'उनके खून बहता होगा।' बहता होगा रुक कर,

'चलेगा देखने ?'

'मां, डाटेगी नहीं ?'

'क्या पता !'

'तेरा मन करता है चलने को ?'

'हाँ'

'तो चल।'

'मार पड़ी तो ?

'खा लूंगा।'

अब हम दोनों दासा पांडे के घर की ओर चल पड़े। नंगे पांव थे मगर अभी सवेरा था 'भूंभुर' तेज न हुई थी। रास्ते को बालू थोड़ी-थोड़ी गरम होने लगी थी।

वहाँ जाकर दासा काका ब से मैंने कहा—

'काका ब, बड़की 'बाबा ब' को जरा दिखा दो।'

'क्यों रे रज्जू ? आ बेटे, मेरे घर तो तू कभी आता ही नहीं, और यह कौन है ?

'रेशमी ?' आ वेटी बैठ।'

मगर हम दोनों घबराने लगे। जाने बाबा ब किधर है, हरी क्या है ? सोचने लगे फजूल इस झंझट में पड़े। खैर, काका ब के कहने से हम दोनों दीवाल की छाया में पड़ी चटाई पर बैठ गए।

बड़े लाड़-प्यार से बोलीं—

'तू किस किलास तक पढ़ गया रज्जू बेटे ?'

'अब मैं हाई स्कूल में जाऊँगा जरा अकड़ कर मैं बोला।'

'और तू वेटी ?'

'वह घर में पढ़ती है' मैं ही टुनुक पड़ा।

'रेशमी' तो अब 'बियाह' करने लायक हो गई' काका ब ने उसे घूर के देख कर कहा। व्याह के नाम पर रम्मी ने निगाहें नीची कर ली। क्यों ? उसे किसने सिखाया यह ?

मैं क्या जानूं ? मगर मैं मन ही मन मुस्करा पड़ा। इतने में काका ब उठ कर भीतर गई कुछ लाने। उनके जाते ही रम्मी ने ऊपर निगाह की। हम दोनों की नजरे मिलीं तो दोनों मुस्करा पड़े। मैंने पूछा—

'काका ब क्या कहती हैं, रम्मी ?

'सुना नहीं ? कान बहरे हो गए थे क्या ?

'जरा तू कह ना।'

'धत्।'

जानती है क्यों कहती थी।

क्या पता।'

'मैं बता दूँ ?'

मैं मुस्कराया। वह भी मुस्कराई। बोली,

'रहने दे'

'इतने में काका ब आ गई और मोतीचूर के एक-एक लड्डू हमारे हाथ में रख दिया। रम्मी झिझकी पर मैं खुश हो गया।

काका ब ने हठ किया कि हम दोनों लड्डू वहीं खा लें पर रम्मी ने कहा--

'नहीं घर पर खा लेंगे, हमें बाबा ब को दिखा दो।'

'क्या करेगी देखकर पागल आदमी को रम्मी ?

'कहीं बुढ़िया ने गाली वाली दे दी तो तेरी चाची मुझसे लड़ेगी, काका ब को जाकर देखेगे, मुझे दिखा दो' मैंने हठ पकड़ा।

इस पर वे बोली, 'अच्छा ले देख।'

काका ब का मकान मिट्टी का बना है जिसमें दरवाजा छोड़ कोई जंगला नहीं। मिट्टी की मोटी-मोटी दीवार जेल की दीवार सी लगती हैं।

काका ब घर के भीतर ले गई। उस घर के पाख में एक छोटा सा दरवाजा था जिसकी कुण्डी चढ़ी थी। काका ब ने उसकी कुण्डी उतार दी व बोलीं हम दोनों को--

'अन्दर झाँक कर देख ले।'

हम दोनों डरते पाँव दरवाजे के भीतर दाखिल हुए। हमने अनजाने एक दूसरे का हाथ पकड़ लिया। 'कोनासी' की उस नन्हीं सी अंधेरी कोठरी में पहले तो कुछ भी न दिखाई दिया पर जरा आंखें मीचने व ठहरने पर लगा कि किसी कोने में कोई सांस ले रहा है।

मैं तो एक दम से भयभीत था। शायद रम्मी की भी छाती धुक-धुक करती थी। ऐसा लगता जैसे उस अँधेरे से कोई प्रेत निकल कर हमें दबोच लेगा।

जरा देर और आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर दस-बारह फीट की एक लकड़ी दिखाई दी बड़ी भारी व मोटी उसके एक छोर पर सुराख करके बाबा ब का एक पाँव उसमें डाल दिया गया था और लकड़ी की ही एक मोटी कील उसमें ठोक दी गई थी। पांव किसी भी तरह उसमें से निकल नहीं सकता था, हिल भी नहीं सकता था।

चिथड़े कपड़ों में यूँ अंधेरे में पड़ी बाबा ब प्रेत सी लगती थीं, जिन्दा चुड़ैल। मैं तो एकदम से डर गया। हम दोनों को घूर-घूर कर देखने लगीं। हम दोनों डरते-डरते बोले—

'पा लागी बाबा ब'

'जी वेटे, सोहागिन हो वेटी, तुम लोग कौन हो?'

'मैं हूँ रेशमी और यह रज्जू।' रम्मी, आहिस्ते से बोली।

'अच्छा, अच्छा, जुग-जुग जियो तुम दोनों।

'क्या देखने आए हो, बुढ़ापे की दुर्गति? क्या करूँ ऐ बच्चा, दासा 'मेहरी' के कहने में आकर मुझे पीटता है, पागल कहकर हरी में ठोक दिया है। आज तीन दिन हो गए न खाना न पीना। पाँव पड़े-पड़े सुन्न हो गए। तन पर बस्तर नहीं, यह चीथड़ा देखो, लाज तक नहीं ढकती इससे। पेट में एक दाना न गया तीन दिन से। इतने पर भी यह प्रान छूटता नहीं। जाने भगवान के घर में कहाँ मेरा 'कागद' भूल गया है।'

इतने में काका ब आईं व कड़क कर बोलीं,

'तू फिर लगी अपना नखड़ा पसारते बुढ़िया—

'चुप न रहेगी? मैं लाऊँ डण्डा?'

डण्डे के नाम से बुढ़िया एक दम से सिहर उठी। शायद उस पर पहले भी मार बहुत पड़ चुकी थी। चेहरे पर बाहों में मार के निशान थे व सूजन थी। वह बोली—

'हमें कुछ नहीं चाहिए ऐ बबुआ। दासा मेरा बेटा है। मेरी कोख से जनमा है। उससे कहो जा के। कुछ तो दया आयगी उसको बूढ़ी माँ पर। उसकी मति इस चुड़ैल ने हर लिया है। दासा से बोलो, हमको एक जून सत्तू भी दे तो यह हरी नहीं अखरेगी। सीरीकिशुन जी जेहल में पैदा हुए थे, गान्ही जी जेहल में हैं तो मैं भी यह 'जेहल' काट लूंगी, पर सत्तू दिलवा दो। एक मुट्ठी सत्तू।'

अब हमसे रहा न गया। रम्मी ने मेरे हाथ का भी लड्डू ले, दोनों लड्डू बाबा ब के हाथ में रख दिया। पास जाने पर एक 'बदबू' नाकों में घुस गई। शायद बाबा ब को पेशाब-पखाने के लिए भी तीन दिन से निकाला न गया था। अब हम दोनों वहाँ से खिसके: जाते-जाते देखा बाबा ब लड्डू मुंह में भरी हैं

दोनों हाथ से। इतने में काका ब हाथ में एक छोटा सा डण्डा लिए पहुँची व बोलीं—

'क्या कहा रे पगली मुझको, चुड़ैल ?
मैं चुड़ैल हूँ. तू लड्डू खायगी ?'

बस फिर क्या था। डण्डे धमाधम, बाबा व पर पड़ने लगे। वे चीखने चिल्लाने लगीं। हम दोनों एक दूसरे का हाथ पकड़े रोते-सिसकते अपने घर को भागे।

लौटने समय तक रास्ते की बालू मिली धूप तपने लगी थी भाड़ के जलते बालू जैसी, मगर हम दोनों को उसकी सुधि कहाँ थी। पाँव जलते भी तो क्या कुछ मालूम होता ? यहाँ तो तन-मन में आग लगी थी।

मन ही मन दोनों पछता रहे थे, बेकार में गए बुढ़िया को देखने। उस पर इतनी मार पड़ी हमारे कारण। रम्मी ने रास्ते चलते आँचल के छोर को उठा पहले मेरे आँसू पोंछी फिर अपनी आँखों के। तब जरा स्वस्थ हो बोली,

अब कभी किसी के घर न जायेंगे, रज्जू।

'नहीं,' मैंने आहिस्ते से कहा।

'तू चाची से कहेगा ?'

'नहीं रे।'

'मैं भी न कहूँगी।'

और मेरे कान में गूंज रहे थे महादेव पंडित के श्रीमद्भागवत के वचन,

'और आततायी राजा कंस ने अपनी बहन देवकी तथा बहनोई बसुदेव को कारागार में डाल दिया। वहीं पर आनन्द कन्द श्रीकृष्णचन्द्र का जन्म भादों कृष्ण अष्टमी को आधी रात के समय हुआ।'

मैं चलता जाता व सोचता जाता। माता देवकी के पाँव में कंस ने यूँ ही 'हरी' ठोक दिया होगा। बुढ़िया ठीक कहती थी गाँधी जी के पाँव में भी जेल में 'हरी' ठोकी गई होगी व जवाहरलाल के पाँव में भी।

दोनों की तसवीर मेरे घर में दीवार पर टंगी थी। मेरा जी भर आया। मैं सोचने लगा आखिर बुढ़िया छूटेगी कैसे ? कितनी दीन होकर कहती थी 'दासा मेरी कोख से जनमा है.''''''''उससे कहके मुझे मुट्ठी भर सत्तू दिलवा दो' मन ही मन मैंने अपने को महाबली श्रीकृष्ण पाया व लगा जैसे दासा पांडे को

तीरों से छलनी कर मैंने धराशायी कर दिया जैसे वही कंस हों, व उग्रसेन के स्थान पर बाबा ब हों।

हम चलते गए चलते गए। मगर इस सोचने से क्या होता।

एकाएक एक बात मेरे मन में आई, मैं चहक उठा,

'रम्मी ?'

'एक तरकीब तो सूझ गई।'

'काहे की ?'

'बाबा ब को मुक्त करने की।'

'सो क्या ?'

'अगर मैं बुआ से कहूँ तो वे दासा पांडे से लड़-झगड़ कर बुढ़िया को जरूर छुड़ा देंगी।'

'तब तू ही कहना। मैं न कहूँगी।'

'अच्छा।'

और अपनी अचूक योजना को मन ही मन चूसता-घुलाता-रस लेता मैं अपने घर पहुँच गया।

हम दोनों के मन खिन्न हो गए थे ?

आज कोई चुहुल न सूझी।

इस घटना की छाप कभी भी मेरे हृदय पर से मिटी नहीं। महीने भर बाद मैं हाई स्कूल में पढ़ने शहर चला गया। वहाँ पर राजनैतिक सभा में एक नेता को भाषण करते सुना—

'आज हमारी भारतमाता कारागार में पड़ी है उसे इस बन्धन से मुक्त करना हमारा फर्ज है, हर पुत्र-पुत्री का फर्ज है।'

और मेरे मन में आया कि भारतमाता बाबा ब जैसी होंगी उनको अँग्रेजों ने हरी में ठोक दिया है और किसी अंधेरी कोठरी में बन्द कर दिया है। उनको मुक्त करना हम सपूतों का धर्म है।

कल्पना के तो पंख लग जाते हैं ना ? साल-डेढ़-साल बाद आन्दोलन में भाग लेने के कारण मैं स्वयं जेल गया और देखा कि वहाँ 'हरी' जैसी कोई चीज नहीं। हम चहारदीवारी के भीतर लगभग वैसे ही रहते हैं जैसे बाहर। हाँ, क्रान्तिकारी कैदियों को 'डण्डा-बेड़ी व तनहाई की कोठरियाँ कभी-कभी

मिलती हैं। मगर उनके जीवन, रहन-सहन में बाबा ब की हरी में बड़ा अन्तर था। अन्तर यूँ था कि वे डण्डा-बेड़ी के साथ चल फिर सकते थे। उनके पाखाना-पेशाब का प्रबन्ध था उनको जीने भर के लिए यथेष्ट भोजन मिलता था, उनकी कोठरियाँ इतनी अंधेरी नहीं थी। 'बाबा ब' को यह सुविधाएँ कहाँ प्राप्त थीं ?'

वे तो मुट्ठी भर 'सत्तू' की माँग करती थीं सो भी एक जून। यदि मिल जाय तो जिन्दगी भर 'हरी' में भी रहने को तैयार थी।

हायरे, जीवन का मोह।

वाहरे, जीवन की परवशता।

दो-तीन बार जेल हो आने के बावजूद भी मेरे मन पर उसकी वह छाप न पड़ी जो मैं देख आया था, भोग आया था, पर बाबा ब की वह छन भर की "छाप' अमर-ज्योति सी चमकती रही, धधकती रही, वह अमर छाप।

'आज सारा भारत एक कारागार हो रहा है, हमारे पाँवों में विदेशियों के............'

और झुक कर मैंने अपने पाँव देखे कहीं, 'हरी' तो नहीं ठुकी है। मुस्करा पड़ा। लगा जैसे घर-घर में 'हरी' पड़ी है और भारत के हर नर-नारी के पाँव उसमें ठुके हैं।

उनको निकाले कौन ?

कैसे ?

मुक्त कौन करे ?

मगर गाँव में उसकी कोई विशेष चर्चा न थी क्योंकि शायद वह 'विशेष' कोई घटना न थी। बाग के चौपाल में गया तो वहाँ दूसरा ही काण्ड छिड़ा था, गंगा पार की बारात में 'सादा पाण्डे ने रात को दो जोड़ी पूड़ी चुराई थी। वे मिरजई में बाँध कर सिर के नीचे रख सोए बाग में। कोई कुत्ता आकर चुपके से पूड़ी खींच ले गया व मिरजयी भी फाड़ डाली जो पास के 'रहठा' ( अरहर के डण्ठल ) के ढेर में मिली चिथड़े-चिथड़े। सबको मजा आ रहा था। घटना के विभिन्न संस्करण निकल रहे थे।

बुआ से जो बात छेड़ी तो बोली, यह तो उनके घर का रोज-रोज का तमाशा है। कौन उसमें अपना सिर खपाए ?

दुलरिया से धीरे से कहा, तो बोली—

'दासा पाण्डे व पड़ाइन को विश्वास है कि 'बाबा ब' के डायन करने से उनको लड़का नहीं होता इसी से वे उनको 'हरी में ठोक कर मारते हैं। फिर जब पड़ाइन छोटी-सी बहू बनकर आई थीं, तो बाबा ब जवान थीं, उन्होंने पड़ाइन को जाने कितनी ही बार पीटा था। अब पड़ाइन उसका बदला लेती हैं।

मैं सब कुछ समझ कर भी कुछ न समझ सका और बाबा ब की बेत्रसी की बात गुन-गुन कर मैं एकाएक फूट कर नए सिरे से रोने लगा। दुलरिया ने एक प्रकार से मेरा सिर अपनी छाती में गाड़ लिया व धीरे-धीरे चुप कराती रही।

जाने मैं कितनी देर तक सिसकता रहा।

आज भी उस दृश्य की याद आने पर—

आँखों के कोर गीले हो जाते हैं।

एक दिन सबेरे-सबेरे दुलरिया मेरे घर धमक पड़ी। आते ही उसने जवाब तलब किया, हमलोग अगले दिन उसके घर क्यों न गए? बेचारी सारी दोपहरी टुकुर-टुकुर राह देखती रह गई।

रम्मी भला क्या जवाब देती? सकुचाती मुस्कराती उसने दुलरिया का हाथ पकड़ा व उसे बैठाती हुई पलंग पर बोली—

'छोड़ भी कल की बात। जो बीत गई सो बात गई। कुछ गाँव-नगर का हाल-चाल तो सुना—

'ले सुन ताजे समाचार सो भी मुफ्त में।'

हँसती हुई दुलरिया बोली—

'कल रात को पास वाले गाँव में जो बारात आई थी, वह नाराज होकर चली गई।'

'क्यों?' मैंने चकित भाव से पूछा।

'दहेज में कमी, और क्या? दो हजार रुपये तय थे। लड़की का बाप कहता है कि उसने दो हजार दे दिए। पचास रुपये बेसी भी दिए हैं। लड़के वाले दूल्हे को दिया गया रुपया गिनते नहीं। कहते हैं अभी दो सौ रुपये की कमी है, जब तक वो नहीं मिलेगा दुलहिन का 'डोला' नहीं उठेगा।'

'फिर क्या हुआ?' मैं बोला—

रम्मी स्तब्ध सा सब कुछ सुनती रही।

'बेचारा लड़की का बाप दो सौ रुपये के लिए सबके सामने समधी के पैर पर पगड़ी उतार कर रख दिया। रो पड़ा। पर वे टस से मस न हुए।'

सभी स्तब्ध हो गए। कोई कुछ न बोला। बोल फूटते कहाँ से? दुलरिया कहती गई–

'बेचारा पहले ही पाँच बीघा खेत 'रेहन' रखकर शादी का रुपया लाया था अब कहाँ से पाता, गाँव में, किसके सामने उसने हाथ न पसारा। अपने गाँव में दासा पांड़े के यहाँ भी उसने हाथ फैला दिया तो बोले 'रुपये दे देंगे मगर' छः तरे सूद पर ( ७२ प्रतिशत प्रतिवर्ष ) बेचारा बोला, बच्चों के मुँह पर जाबी न चढ़ाओ पांड़े, हम भी भाई हैं, पर कौन किसकी सुनता है?

'बारात लौट गई। सो भी हत्यारों ने तब कहा जब पालकी दरवाजे पर लाकर कहार लगा दिए व दुलहिन रो-धोकर उसमें बैठने जा रही थी। अब सभी लड़की का दोष देते हैं, 'क्यों खोटा नसीब लेकर पैदा हुई।'

'लड़की का जन्म 'अकारथ' है दुलरिया' रम्मी बोली। उसके नयन कोर गीले हो गए थे और मेरे भी।

'एक तो हो गया। अब दूसरी सुनेगी?'

'नहीं एक ही बहुत है बहन।' रम्मी उदास हो गई थी।

'अच्छा तो फिर चलूँ' कहती हुई दुलरिया उठी पर उसने देखा मेरी आँखों से टप-टप आँसू गिर रहे थे, मेरे आँसू आँचल से पोछती हुई बोली—

'यूँ नहीं घबराते भइया, यह सब तो रोज-रोज का खिलवाड़ है। किस-किस का दुखड़ा लेकर किस-किस के लिए रोओगे? अरे जितनी घड़ी हँस सको हँस लो। रोने के लिए तो जिन्दगी भर पड़ी है।........

'अच्छा दोपहरी में आ जाना। भला

कहकर वह चली गई। हम दोनों कुछ न बोले। इस घटना से हम दोनों को बहुत ठेस लगी, बेहद।

पर इतनी ठेस क्यों लगी?

कौन जाने? कौन कहे!

## ८

उस प्यार भरी रजनी का भी सवेरा हुआ। मैंने प्रीति प्यार की सुधा छक के पी थी रात को, इसलिए सवेरे देर तक सोता रहा। उठा तब जब रम्मी गुलाब के एक फूल को ले, पंखुड़ियों से मेरी पलकों को छेड़ रही थी।

आँख खुलते ही रम्मी को देख मैं मुस्करा पड़ा। वह भी मुस्करा रही थी एक निराली शरम के साथ। जैसे कहती हो 'रात की रास लीला भूल जाओ कान्ह, दिन, दिन है, रात रात।'

मैंने बनावटी गुस्से से कहा--

'क्या है रम्मी ?'

'तू उठेगा नहीं रज्जू ! देख तो कितना दिन चढ़ आया ? माँ ने कहा है, जाकर जगा दे।

'इतनी जल्दी क्या पड़ी थी रे ?'

'आज तुझे 'सहर' नहीं जाना है ? हाई स्कूल ?'

याद आते ही एकाएक मैं उदास हो गया, उसका भी चेहरा उतर गया। हम एक दूसरे के मन को समझ रहे थे, खूब समझ रहे थे, मगर बोले कुछ भी नहीं मुँह से।

हमारी गाड़ी दस बजे दिन को जाती थी। मैंने विदा होने से पहले माँ के चरण छुए फिर बुआ के, दुलरिया ने सबके सामने मुझे 'चूम' लिया उसे क्या न लाज न भय। मेरे मन में आया मैं रम्मी को चूम लूं जी भर के। पर क्या ऐसा कर पाया ?

रम्मी के जी में भी कुछ ऐसा ही आया होगा। पर वह मछली सी छप-पटाती रही, कुछ कर न सकी। जाने से पहले मौका पाकर उसने पूछा--

'कब तक आयगा, रज्जू ?

'हफ्ते बाद । शनिवार को'

'चिट्ठी लिखेगा ?'

'नहीं।'

एक नई जिन्दगी आरम्भ हुई। स्कूल की विशाल इमारत, बड़ा सा हास्टल, सरकस की सीट की सीढ़ियों की तरह 'लैब थियेटर' खेल के बड़े-बड़े मैदान। देख कर जी खुश हो गया।

दो बाधाएँ मेरे रास्ते में पहले ही दिन से आ खड़ी हुई, एक तो मैं नवीं कक्षा का सबसे छोटा लड़का था उम्र में, दूसरे शहराती लड़कों की तरह चुलबुला न था या चलता-पुरजा।

शायद मेरे चेहरे से 'गांव पन' टपकता था, कुछ गँवारपन भी हो। इस कमी को पूरा करने की एक तरकीब मुझे सूझी। मैंने सोचा अगर मन लगाकर पढ़ूं और फर्स्ट आ जाऊँ परीक्षा में, तो सब पर मेरा रोव गंठ जायगा। यही सबसे अच्छी तरकीब है, सबका गरूर तोड़ने की।

दिन भर स्कूल होता, शाम को बुकसेलरों की दूकान पर विद्यार्थियों का जमघट लगता। इतनी बड़ी भीड़ होती कि कोई किसी की कुछ सुनता नजर न आता। इस रेल-पेल में मेरी गुजर कहाँ थी ? मैं दूकान के बाहर से ही चक्कर काट कर मुँह लटकाए चला आता। शहर में दो ही तो दूकानें थीं स्कूली किताबों की।

साँझ की सूनी घड़ियों में मेरा मन बेहद उदास हो जाता। घूमते-घूमते मैं गंगा के किनारे जाता और वहाँ पड़ी बेंच पर बैठ जाता।

बैठा रहता घंटों। नदी के बहते मटमैले रंग को देखता। रम्मी की याद बेहद सताती। हर, घड़ी मन में सोचता, रम्मी क्या करती होगी ? लीची के पेड़ तले बैठकर आँसू ढारती होगी ? नहीं, नहीं उसे क्या गम रज्जू की ? अपने में मस्त होगी।

होगी मस्त अपने में ?

विदाई की घड़ियों में कितने बड़े-बड़े आँसू ढुलक पड़े थे, उसकी बड़ी-बड़ी पलकों से। बुआ बोली थी 'दोनों में बहुत हेल-मेल है। भैरव बाबा रक्षा करें, हमारे रज्जू व रम्मी की।

'रज्जू–रम्मी' 'रम्मी–रज्जू'

हमारे नाम भी कैसे फबते हैं, एक दूसरे से यूँ चिपकते हैं जैसे बाँह में बाँह डाले रम्मी मेरे बगल में सट कर बैठी हो।

जब रात कदम जल्दी-जल्दी भरने लगती, एकदम से अंधेरा हो जाता, पानी की कल-कल व मछलियों की उछाल के शब्द-मात्र ही सजीव रह जाते, झींगुरों की सरगम सम-स्तर में निरंतर बजने लगती, तब मैं उठ पडता।

आकाश पर एक दृष्टि डालता तो लगता, सोन जुही के फूल खिले हैं या वेले के ?

चक-मक, चक-मक, चक-मक.........

मुझ पर हँस तो नहीं रहे हैं ? मेरी खिल्ली तो नहीं उड़ाते ? रम्मी बिना, मुँह लटकाने पर ? कानाफूसी तो नहीं करते रम्मी को लेकर ?

मैं खीझ भरे उदास मन को लेकर अँधेरे में लौट आता हास्टल में।

यूँ ही दिन पर दिन लुढ़कते गए। दरजे में पढ़ाई ढंग से शुरू हो गई और मेरे पास किताबें न हुईं। शनिवार भी आ गया।

सोचने लगा यदि रुक जाऊँ इस शनि को तो रविवार को दिन भर चक्कर मार कर शायद कुछ किताबें खरीद सकूँ। सारा दिन अपना होगा, शायद भीड़ भी कम हो। किताबें हो जायँगी तो ढंग से पढ़ाई भी होने लगेगी।

पर रम्मी ?

रम्मी का क्या होगा ?

वह तो रो-रो कर जान दे देगी।

यह हमारा पहला बिछोह था, प्यार की पहली झाँकी के बाद। मन तड़प उठा। पिसने लगा एक अजीब कशम-कश में। साँझ हुई तो नदी-तीर घूमने न जाकर मैं रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर घूमने गया।

घूमने तो क्या गया, हसरत भरी निगाहों से उनको देखने गया जो इतने बड़भागी थे कि सप्ताह के अंत में अपने-अपने घर जा रहे थे।

हाय रे घर ! और घर की ममता !

गाड़ी आई, रेल-पेल, दौड़-धूप, हो-हल्ला शुरू हो गया। कितने ही सह-पाठी मेरे, उस ट्रेन से घर गए। सीटी बजी, हरी झण्डी गार्ड ने दिखाई, गाड़ी खिसकने लगी, खिसकती गई, रेंगती-रेंगती अंतर्धान हो गई। मेरा दिल डूब गया। मैं प्लेटफार्म पर पड़ी एक बेंच पर देर तक बैठा रहा।

जब अंधेरा चारों ओर छा गया व देर काफी हो गई तो भारी कदम उठाता धीरे-धीरे हास्टल की ओर चला गया।

मैं शायद स्वयं रम्मी बिना इतना परेशान न था जितना इस ख्याल से बेचैन था कि रम्मी मेरे बिना बेहाल होगी, बेताब होगी।

बार-बार लगता जैसे वह लीची के पेड़ तले अकेले चुपचाप अंधेरे में सिसक-सिसक कर रो रही है।

एक बार जी में आया कि रात के दस बजे की ट्रेन से घर चल दूं? पर……पर……किताबें ?

मैं रुक गया। रविवार को हास्टल के लड़कों की एक टोली गंगा-स्नान करने गई। मैं भी साथ हो लिया।

वही काली-काली नहाने की नीकरें। सारा तन नंगा। नाना प्रकार की उछल-कूद, तैरना, पकड़ना, घसीटना, खिल खिलाकर हँसना।

मैं चुपचाप घाट पर बैठा यह दृश्य देखता रहा मुँह लटकाए। मेरा मन भारी हो गया। मैंने माप न लिया।

कभी मैंने भी स्नान किया था। एक सप्ताह पहले रविवार को चाँदनी रात में। कितना रस था उसमें? कितना सूनापन है इसमें।

खाना खाकर दस बजे से ही पुस्तकों की दूकान पर डेरा डाल दिया दोपहर होते-होते मेरी लिस्ट समाप्त हुई। तीसरे पहर कापियाँ, कागज, पेस्टल, नक्शे, ड्राइंग के सामान, औजार, कलम-पेन्सिल, रबर वगैरह के चक्कर में पड़ा। साँझ होते-होते मेरी सारी खरीद-फरोख्त समाप्त हो गई।

एक भारी बण्डल लिए हुए मैं हास्टल में आया, पुस्तकों का बण्डल मेज पर पटक दिया और पलंग पर औंधे गिर पड़ा।

गिर पड़ा और रोने लगा, फफक-फफक कर, फूट-फूट कर।

एक रविवार वह था,

एक रविवार यह है।

रम्मी रो-रोकर जान दे देगी।

जितना ही सोचता, उतनी ही रूलाई आती और जितनी ही रूलाई आती उतने ही बार नये सिरे से रो-रो पड़ता।

जाने कितनी देर तक रोता रहा। कोई पूछने वाला नहीं, कोई चुप

कराने वाला नहीं.......कोई मनाने वाला नहीं। वैसे भी रविवार को हास्टल में कम लड़के थे, सुनसान था, फिर शाम को तो सभी इधर-उधर चक्कर मार रहे थे।

केवल एक मैं था कि इस सूने हास्टल में झख मार रहा था। अपनी क़िस्मत को रो रहा था। पिछले रविवार की चांदनी रात की एक-एक बात याद आती और मैं रह-रह कर रो पड़ता।

रात का खाना भी न खाया। नौकर दूध दे गया और मैं पीकर सो गया।

नया हफ्ता, नया दिन, फिर सोमवार, वैसे ही 'पीरियड', टीचरों का चक्कर-एक 'रहट' पर जिन्दगी चलने लगी।

और बुधवार को घिर आए आकाश में बादल, गरजे, तड़पे व बरसने लगे। बरसते गए, बरसते गए, मूसलाधार पानी बरसा। स्कूल के ग्राउण्ड में जूते डूबने भर पानी लग गया और मुझे याद तड़पाने लगी रम्मी की। वह आम के बाग में हमारा भींगना।

वह बुखार। फिर प्यार।

मैं एकदम से बेचैन हो गया। एक बार फिर सोचा, रात की गाड़ी से भाग जाऊँ घर, रम्मी के पास, बिल्कुल पास। पर क्या भाग पाया?

फिर दिन गिनने लगा, तीन दिन, दो दिन, एक दिन, और आ गया शनिवार, धरती की सारी खुशियाँ लिए। खुशियों का संदेश लिए। मैं चहक उठा।

दिन जल्दी बीतने को न आता। अपनी कछुए की चाल न छोड़ता।

आखिर हुई शाम व मैं भागा बाजार की ओर। रम्मी के लिए थोड़े से केले लिए, केले?

याद आ गई दुलरिया की बात व मुस्करा पड़ा अकेले।

और लिया चमेली का तेल, सुवासित।

और कुछ सूझी नहीं।

एक चीज सूझी जरूर, मगर सोचा, अभी नहीं, बाद को। जल्दी क्या है?

ट्रेन में तो मैं क्या बैठा बस, पुष्पक विमान में बैठ गया और उड़ा वह विमान, पार करता हुआ किन्नर-लोक, यक्ष-लोक, देव-लोकों को पहुँचा उस

पंछी के पास जो स्वाति के एक बूंद की प्रतीक्षा में जाने कब से आस लगाए बाट जोहता था।

स्टेशन से जल्दी-जल्दी डग भरता घर पहुँचा। रम्मी घर की बगिया के छोर पर खड़ी जाने कब से मेरा 'पथ' निहारती थी। दूर से ही उसने देखा, दिखाई दी। उछल कर भागी घर के भीतर, शायद बुआ को बताने, माँ को खबर देने।

और फिर बगिया के फाटक पर जम गई। मैं काफी पास आया तो लगा उसका सारा तन हँसता है, मेरा सारा तन हँसता है। हमारी आँखें, हमारे कपोल, हमारे होठ सभी तो मुस्करा रहे थे! मारे खुशी के थर-थर काँपते थे जैसे सुख समा न सकेगा।

और पास आने पर बोली--

'आ गया, रज्जू ?

'नहीं तो।'

हम दोनों हँस दिए। मैंने कहा--

'देख तेरे लिए मैं क्या लाया हूँ ?

'जा मैं तुझसे नहीं बोलती।'

और मान कर वह सचमुच घर के भीतर चली गई। मैं आँगन में अकेला पहुँचा। माँ व बुआ को चरण छूकर प्रणाम किया। बुआ ने कहा,

'रम्मी थाल में ठण्ढा जल लाकर रज्जू के पाँव धो दे।'

'मुझसे न होगा।' वह बोली व दूसरी ओर चली गई।

'रम्मी सचमुच नाराज है—और सो भी बेसी।

जब बुआ जल लाकर पाँव धोने चली' तो उनको हटाकर रम्मी ने धोना शुरू कर दिया। मैं मुस्करा पड़ा। वह रूठी होने पर भी झेंप गई।

अंधेरा पाख, अमावश की रात, आषाढ़ के बादल घोर अंधेरी रात और पहर भर रात गए हम दोनों लीची के पेड़ तले बैठे थे। बैठे थे जाने कब से।

वहाँ जाते ही उसने पूछा था,

'पहले यह बता, तू उस शनिवार को क्यों न आया ?'

'सुन मेरी बात रम्मी' कहते-कहते मैंने उसका एक हाथ अपने हाथ में लिया तो' उसने झटक कर छुड़ा लिया अपना हाथ। बोली,

'पहले मेरे सवाल का जवाब दे'

'बात यूँ हुई कि मेरी पुस्तकें ........'

'भाँड़ में जाय तेरी पुस्तकें। यह भी सोचा कि मेरी क्या हालत होगी तेरे बिना'

'सोचा मैंने रम्मी, खूब सोचा' कहते-कहते मैंने उसका एक हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया। उसने इस बार हाथ न खींचा पर अंधेरे में मेरे हाथ पर उसके नयन के मोती बरस पड़े।

'तेरी ही बात सोचते-सोचते तो मैं इतना रोया कि' कहते-कहते मेरी आँखें डब-डबा आईं। जब मेरे आँसू की बूंदे उसकी हथेली पर गिरीं तो लगा जैसे वह पिघल गई। झट से आँचल उठा मेरे आँसू पोछती हुई बोली,

'रज्जू तू लड़का होकर लड़कियों सा रोता है?' रुककर

'मैं जानती हूँ, न आने से तेरे ऊपर क्या गुजरती होगी, तू छटपटाता होगा और आ न पाता होगा यही सोच-सोच कर तो मैं रो पड़ी'।

अंधेरे में मैं मुस्कराया गीली आँखों से व बोला,'

'और मैं यह सोच-सोच कर रोता था कि तू छटपटाती होगी,

फिर क्या था, हम दोनों आँसुओं के बीच हँस पड़े। सुलह हो गई। छोटी-बड़ी बातें डेर सी करने के बाद मैंने पूछा'—जानती है मैं क्या लाया हूँ तेरे लिए'

'जानती हूँ'

क्या?

'अपने को' हम दोनों मुस्कराये।

आकाश में बादल भाग रहे थे इधर से उधर और उनकी ओट में तारे आँख मिचौनी खेल रहे थे। यह दृश्य बड़ा ही मोहक लगा हम दोनों को। हम मुस्कराए व बगिया से उठकर घर में आ गए।

वह प्रथम विरह।

फिर प्रथम मिलन!!

# ९

रविवार आया झोली में खुशियाँ भर के। यह पहला रविवार था जब रम्मी देर तक सोई थी, मुझसे भी देर तक।

बुआ के बड़े पलंग पर आयत के कर्ण की तरह इस छोर से उस छोर तक लेटी थी। सांस के साथ-साथ उसकी छाती निरन्तर उठती गिरती थी सम-ताल पर।

कितना भोला व कमनीय था उसका मुख।

प्यार में छक के जो सोई थी।

छक के पहली नींद।

रात को उसने दो चोटियाँ की थीं। पर क्यों?

दो ओर से बाँधने के लिए रज्जू को।

मैंने एक चोटी को हाथ में ले उसके छोर पर लगे फूल से रम्मी के कपोल सहलाए। उसने हाथ का झटका दिया और करवट बदल कर फिर सो गई। मैंने चोटी के फूल से फिर भाल को छेड़ा, आँखों की पलकों को दुलारा और उसने आँखें खोल दी। मुस्कराई और मेरा हाथ अपने हाथ में दबाती हुई फिर आँखें मूंद ली।

यह तो उठने के आसार नहीं।

मैंने धीरे से कहा,

'रम्मी चल नहाने चलें'

'उ--हुं ई' वह बोल कर रह गई।

'तू उठेगी नहीं रम्मी!

'तू उठा रहा है, या सुला रहा है?

और मधुर मुस्कान के कटोरे उसके गालों पर बन गए। आँखें मुस्करा कर बन्द हो गईं।

जब रम्मी किसी भी तरह उठती नजर न आई, तो मैंने दोनों हाथ से

पकड़ कर बड़े जोर से उसे झकझोर दिया। वह मुस्कराती हुई उठी व बोली

'तू तो कभी-कभी जान ले लेता है, रज्जू।

'तो उठ ना ? लगता है घोड़ा बेच के सोई है।

'बिका तो नहीं है अभी पर बिक जायगा, कभी न कभी वह मुस्कराई। मैं कुछ न समझा।

हम दोनों स्नान को चले। रास्ते भर मनमानी बातें करते रहे गुटगूं।

नहा धोकर लौटे तो मां ने कहा,

'देख रज्जू, आज मजूर लगे हैं खेतों में खाद डालने पर। तू भी उनकी मदद कर व देख-भाल भी।

मैं कुछ जलपान करके काम पर जुट गया। गांव की दस औरतें टोकरी लेकर गोबर की खाद उठा मेरे खेतों में ले जा रही थीं। उनमें सोनिया व उसकी छोटी बहन सोनिया भी थी, जो लगभग रेशमा की ही उम्र की थी। उनकी मां गोरी थी इसलिए ये दोनों भी बड़ी ही गोरी व गठी हुई निकलीं।

मजूरी नया तन संवार देती है।

मोनिया कुदाल लेकर खांचीं में खाद उठाती व सोनिया दूसरी मजूर के साथ उसके सिर पर टोकरी उठा देती। मैं चुपचाप यह दृश्य देख रहा था।

और नये चक्षु पर जाने के कारण यह भी देखता था कि टोकरी सिर पर उठाते समय किस प्रकार सोनिया के उभार उछल कर दूने हो जाते। लगता, बाहर भाग जायेंगे और बांह ऊपर से नीचे करने पर फिर सम हो जाते।

सोनिया-मोनिया जाने क्या बातें फुस-फुसाकर बराबर करती व रह-रहकर खिलखिला कर हंस पड़ती। उनका क्या दोष ? यह उम्र ही ऐसी है, जवानी की देहली पर कदम जो रखे जा रहे हैं।

सोनिया जरा फुर्सत पाकर बोली,

'रज्जू भइया, रास-लीला का नाच देखे हो ?

'एकाध बार।

दोनों खी-खी करके हंस पड़ीं। मैं डरा, दुलरिया ने कुछ कहा है क्या ? उसके घर यह बहुत आती-जाती है सोनिया बोली,

न देखा हो तो मेरे घर आ जाना मैं दिखा दूंगी।

फिर वही ही-ही-ही। मैंने पूछा,

'रास कौन रचायगा ?

'मैं व मोनिया' । ही-ही-ही ।

'और कान्ह कौन बनेगा ?

'तू । ही-ही-ही-ही ।

'धत् कहकर मैं मुस्कराया। दोनों हंस के निहाल हो गईं। फिर वही खाद वही टोकरी, वही उठान, वही हंसी।

छन भर फुरसत पाते ही बोली,

'राधा मोनिया बनेगी मैं नहीं।

फिर वही ही-ही-ही। मोनिया लजा गई।

'मैं ललिता सखी बनूंगी। रूक कर

'आओगे ?

'नहीं'।

इतने में रम्मीं आ गई व आकर मेरे पास खड़ी हो गई। आते ही बोली

'तू कुछ नहीं करता रज्जू'?

मेरे बोलने से पहले ही सोनिया बोली,

'करते क्यों नहीं, खड़े-खड़े हमारा मुंह देखते हैं' सभी ठठाकर हंस पड़े। मेरा मुँह खिसियाना सा हो गया। यह सोनिया बड़ी ढीठ है। दुलरिया इसे और भी ढीठ बना रही है।

रम्मी बोली, मां ने कहा था काम भी करना व देख भाल थी'।

'सो देख भाल तो खूब करते हैं रज्जू भइया'।

सोनिया चिढ़ाती हुई बोली,' हाँ कान की बात और है'।

तीनों ठठाकर हंस पड़ीं मैं एकदम से गुस्से में आ गया व बोला,

'मैं काम भी कर सकता हूं सोनिया। तुझे अभी दिखाता हूँ, चल तू सिर पर ले जा, मैं उठाने का काम करूँगा'।

मैंने तमक टोकरी उठाने का काम सोनिया से ले लिया। काम जरा कड़ा जरूर था, मेरे लिये तो बहुत ही कड़ा था, पर मैं तो यह दिखाना चाहता था कि जो सोनिया कर सकती है सो मैं भी कर सकता हूं।

हँस के सोनिया अलग हो गई। मोनिया ने खाद से टोकरी भरी। मैं उठाने लगा, सोनिया अभी भी हँस रही थी। एक ओर से टोकरी वह पकड़े

थी एक ओर से मैं। टोकरी उसके ओर से तो उठ रही थी पर मेरी ओर झुकी पड़ती थी। अंत में एक जोर के उचक्के के साथ उसने टोकरी उठा ली और सिर पर लेकर चलती हुई बोली,

'छू दी न मेरी बेल ? लगता है रज्जू भइया को बेल बहुत पसन्द है।'

तीनो हँस पड़ीं। रम्मी का चेहरा हल्का सा उतर गया। मेरा तो एकदम से उतर गया, कारण मैंने कुछ भी ऐसा न किया था।

अब ध्यान में आया कि टोकरी उठाते समय अपनी सखियों के साथ सोनिया ऐसा कुछ जरूर करती थी तभी दोनों-तीनों खिलखिलाकर हँस पड़ती थीं। एकाध बार कुछ ऐसा देखा भी मैंने था, पर मन का भ्रम........।

थोड़ी देर तक यह क्रम चलता रहा। धूप 'खरखरा' कर तेज हो चली। बरसात में बादलों के जल से नहाई हुई धूप कुछ ऐसी होती ही है।

एक बार सोनिया खाली टोकरी लेकर आई तो बोली, 'रज्जू भइया, अब तुम्हारी 'राधा' थक गई है, तुम कुदाली उठा लो या कहो तो मैं उठा लूं ?'

रम्मी एकदम से चकित रह गई। मोनिया मारे लाज के गड़ गई। सोनिया हँसे जा रही थी और मैं मारे क्रोध के आग बबूला हो रहा था। मैंने सोचा, कुदाली पर अपने रहकर बराबर सोनिया मुझे चिढ़ाना चाहती है। टोकरी ढोने में मन नहीं लगता, बड़ी 'सुकंवार' है न।

मैंने झट कहा, 'नहीं, मोनिया थकी नहीं है।'

फिर पूछा, 'थकी है रे ?'

लजाती-शरमाती, सिर नीचे किए मधुर स्वर में बोली मोनिया 'ना'

क्रम जारी हो गया। चलता रहा, चलता रहा। धूप तेज होती गई। हर किसी के हाथ-पांव ढीले पड़ने लगे। रम्मी जलपान लाने गई सबके लिए, जलपान, छ्योंकी हुई महुआ-चना। भर लाई डलिया में व बाल्टी में पानी भी, लोटा भी।

मजूरिनों ने टोकरी ढेर करना शुरू किया व सुस्ताने के लिए जमा हो बैठने लगीं जमीन पर।

मगर यह मोनिया है कि खाली टोकरियां भरे जा रही है, भरे जा रही है।

'छोड़ दे मोनिया, सुस्ता ले, आ जलपान कर।' सोनिया बोली।' भर के आती हूं।' थकी हुई मधुर धीमी आवाज आई।

और बात की बात में कुदाल मोनिया ने वाएं पांव पर पड़ा। पांव का पंजा आधा कट गया। खाद लहू से सन गई।

'माई रे'

चिल्ला कर वह धम से गिर पड़ी। कुदाल हाथ से छूटकर दूर जा गिरा।

अब ?

मैं एकदम से इतना सारा खून देखकर घबरा गया। लपककर मोनिया को बांहों में संभाला। सोनिया चिल्लाई, 'हाय राम, मोनिया को मार डाला।'

रम्मी ने आग्नेय नेत्रों से मुझे देखा। मैं कड़क कर बोला। मेरे भीतर का 'पुरुष' जग गया था।

'मुंह क्या देखती है रम्मी ? जाकर टिंक्चर ला और थोड़ा साफ कपड़ा।

रम्मी चुपचाप खिसकी। सारी औरतों ने मोनिया को तथा मुझे घेर लिया। सोनिया हाय-तोबा मचाए थी। मैं डपटा, 'चुप रह सोनिया, इधर आकर मोनिया को संभाल, मैं खून गिरना बन्द करूँ।'

मोनिया 'हाय दैय्या, दैय्यारी।' चिल्ला रही थी और बिलख-बिलख कर रो रही थी।

सोनिया ने पास आकर मोनिया को गोदी में भर लिया। मैंने छोड़ दिया और लपककर, उसके पांव में टखने के पास खून की नाड़ी के दबाव का मुख्य केन्द्र अंगूठे से दबा दिया।

खून का गिरना कुछ कम हुआ। सबने चकित हो मुझे देखा, जैसे मैंने कोई जादू किया हो, फिर भी सारा दृश्य बड़ा डरावना व दर्दनाक था।

रम्मी टिंक्चर की शीशी व कपड़ा लाई, बुआ की पुरानी साड़ी। मैंने उससे कहा, 'अंगूठे से दबाये रख इस जगह, मैं दवा लगाऊं।'

घूर के रम्मी ने मुझे ताका, पर 'इन्कार' का साहस उसमें न था। उसने 'दबाव-बिन्दु' को दबा रखा। मैंने मोनिया का कटा पांव एक हाथ से पकड़ दूसरे से टिंक्चर डाला। टिंक्चर पड़ते ही, वह 'छनछना' उठी। तड़पी, लगा जैसे सबको उछालकर भाग जायगी।

मैं गरजा, 'डोल मत। पकड़ सोनिया कस के।'

रम्मी का हाथ छूट गया था, उसने डरते-डरते फिर से दबाव-केन्द्र पर अंगूठा रखा पर वह ठीक न पड़ा व खून टिंक्चर से मिलकर बह चला।

मैंने झटककर रम्मी का अंगूठा पकड़कर ठीक स्थान पर रख दिया व दवाने को बोला कस के।

इस बार मैंने टिंक्चर ठीक से लगाया व कपड़े में भिगोकर कस-कस के पट्टी बांध दी। फिर बांस की छोटी सी चारपाई मंगवाकर उसे उठाकर रख दिया व आंगन में ले जाने को बोला। मां से कह दिया उसे थोड़ा गरम दूध पीने को दे दे।

बाद को वे मजूरिनें उसे उठाकर उसके घर ले गईं। सोनिया बराबर रोती कलपती व कुड़मुड़ाती रही।

मेरी नीकर व कमीज खून से रंग गई थी। हाथ व पांव पर खून के दाग लगे थे। मैंने नहाकर कपड़े बदल दिए। रम्मी इस घटना के बाद से मुझसे बोली नहीं थी, बिल्कुल नहीं। दिखाई भी न दी। मैंने भी ध्यान न दिया। फुर्सत कहां थी?

जब दोपहरी ढलने लगी, तो दुलरिया का संदेशा आया हम दोनों के लिए। बुलाई थी अपने घर।

मैंने घर में खोजा रम्मी को, नहीं मिली। एक-एक घर छान डाला, कहीं पता न चला। तब बगिया में गया तो वहीं लीची के पेड़ तले मुंह लटकाए बैठी थी।

मैंने कहा, 'रम्मी चल दुलरिया के घर, उसने बुलाया है।'

'तू जा, मैं नहीं जाती' गुस्से में बोली।

'क्यों नहीं जाती?' मैं रूखाई से बोला।

'मेरी मरजी।'

'अरी वाह री तेरी मरजी।' मैंने ताना दिया।

'मेरे पास गांव भर की लड़कियों के पास जाने का वक्त नहीं है, तू जा।' वाह री रम्मी!

'लड़कों के पास जाने का वक्त है?' मैंने पूछा। मारे गुस्से के तिलमिलाकर बोली,

'मुझे गाली मत दे रज्जू?'

'गाली मैं देता हूं या तू'

उसके नयन भरने लगे। सावन-भादों की झड़ी लग गई। गुस्सा मेरा भी

भरा बैठा था सो अब उभड़ने लगा। फिर भी मैंने संयम से काम लिया। कहा न कि मेरा 'पुरूषपन' जाग गया था।

मैंने उसके पास जा उसका हाथ पकड़ चलने को कहा, पर वह तो बिजली की तरह कड़क कर मेरा हाथ झटक बोली,

'खबरदार जो मुझे छुआ। तू जा अपनी दुलरिया के पास, सोनिया के पास, मोनिया के पास।'

मेरे गुस्से का कोई पार न रहा। मैं एकदम से पागल हो गया और चिल्ला पड़ा,

'और तू जा भट्ठी में।'

और बैठी हुई रम्मी को एक लात मारकर चल पड़ा। वह धड़ाम से गिरी, पर तुरन्त उठकर 'फटी-फटी' आंखों से मुझे देखने लगी। रोई नहीं, चिल्लाई नहीं।

वह दृश्य मुझे कभी नहीं भूलता, कभी नहीं। मैंने अपने को उसके लिए कभी माफ न किया। आज तक नहीं।

मैंने मुड़कर देखा था उसकी बेबस आँखों को, उनमें मँडराते आश्चर्य को वह बिल्कुल हक्की-बक्की हो गई थी क्या से क्या हो गया ?

किसे कल्पना थी इस अन्त की।

मैं दुलरिया के घर गया वह। मुस्कराकर मिली व अपने कमरे में ले गई मुझे देखते ही बोली

'क्या हुआ रे ? और रम्मी कहाँ है' ?

मैं औंधे मुँह उसके पलंग पर गिर पड़ा व फूट-फूट कर रोने लगा।

रोता रहा, रोता रहा। मेरे रोने का कोई अन्त न था। दुलरिया मुझे बराबर मनाती रही, पुचकारती रही, गोद में भरके दुलारती रही, आँचल से मेरे आंसू पोंछती रही, पर मेरा रोना न रूका, न रूका।

जब दुलरिया ने मुझे सीधा बैठाकर सारी बात जानने की कोशिश की तो मैं केवल इतना ही कह सका, रम्मी रूठ गई। और फिर उसकी छाती में सिर गाड़ रोने लगा।

'अरे इतनी सी बात पर तू इतना रोता है रज्जू ? तू चुप तो हो, मैं रम्मी को मना लाती हूं।

'नहीं, नहीं अब वह नहीं मानेगी'।

'तू चुप हो मेरे भइया. मुझे जाने तो दे, तू चुप न होगा, तो मैं न जा सकूँगी'। इस धमकी से मैंने, रूलाई रोकने की जबर्दस्ती कोशिश की जो बड़ी-बड़ी हिचकियों में सिसक-सिसक कर निकलने लगी।

दुलरिया मुझे सिसकता छोड़ चली गई। मेरे घर जाकर देखी रम्मी नहीं मिली। लीची के पेड़ तले वह ज्यों की त्यों बैठी थी। पहले तो हिलने-डोलने को ही राजी न थी पर दुलरिया ने बहुत मनाया व हठ किया तो उठी व चलते-चलते चली आई उसके घर तक।

यह भी कैसी विचित्र समस्या थी। मार उसे पड़ी थी, रो मैं रहा था वह तो शायद मारे 'शाक' के रो भी न पाती थी। दुलरिया के कमरे में आते ही वह पलंग के एक कोने में मुंह लटकाए बैठ गई।

मैं उसका मुह देखते ही, फिर से रो पड़ा। नए सिरे से एकदम फूट-फूट कर। पर रम्मी थी जो न हिली न डोली, न बोली।

क्या हो गया रम्मी को?

मैंने क्या कर डाला?

दुलरिया ने रम्मी से कहा चुप करा न रज्जू को। इतना बेजार होकर रो रहा है बेचारा।

रम्मी फिर भी न बोली। मेरा रोना बिल्कुल न घटा। दुलरिया ने फिर से अनुरोध किया, तो रम्मी बोली,

'रोने दे, रोने से आँख धुलकर साफ हो जाती है, तो सब कुछ ठीक-ठीक दिखाई देता है।

ओह, रम्मी इतनी निर्दयी हो गई?

मुझे कितना प्यार करती थी।

कहाँ गया वह प्यार?

पर मैं स्वयं कितना जालिम निकला?

वह रुककर दीवार की ओर ताकती हुई बोली,

'मैं कल ही अपने गाँव चली जाऊँगी। पराये घर रहने से यही हाल होता है।

"नहीं। नहीं'। करते हुए मैं 'पुका' फाड़कर रोने लगा व रम्मी के दोनों

पाँव अपनी बांहों में छानकर उसी पर सिर टेक गिर पड़ा। अब तो मेरे रोने का कोई अन्त न था।

दुलरिया को सूझती न थी, क्या करे, क्या न करे ? मुझे लगता था अब संसार का प्रलय हो जायगा और उसी में हमारा व रम्मी का भी।

अब रम्मी के आँसू झरने लगे, झरते गए, झरते गए। धार बह निकली उसके कपोलों पर। वह हिचकियाँ लेने लगी, सिसकियाँ भरने लगी।

एकाएक वह बोल पड़ी—

'रज्जू, मेरा भइया।'

और दोनो हाथ से मुझे चरण पर से उठाकर छाती से लगा ली। मैं एकदम से उसकी छाती में चिपक पड़ा। उसने मुझे कस के दबा लिया और लगी सिसक-सिसक कर रोने। हम दोनों खूब रोए, खूब रोए।

रो-धोकर जब कुछ ठण्ढे पड़े तो उसने अपने आँचल से मेरे कपोल व आँखें पोछीं। मैंने भी पाकेट के रूमाल से (हाई स्कूल जाने पर से रूमाल रखने लगा था) उसके आँसू पोछे।

मैंने सिसकते-सिसकते पूछा--

'अपने गाँव नहीं जायगी ?'

'फिर तो ऐसा नहीं करेगा ?' बोली,

'नहीं-नहीं, कभी नहीं।'

'मेरी कसम खा।' उसकी देह छूकर मैंने कहा, 'तेरी कसम।'

'तो न जाऊँगी।'

और दोनों गीले आँसुओं के बीच भी मुस्करा पड़े।

कितना, स्नेह-सिक्त व शीतल था वह चुम्बन। हमारे प्यार व सुलह का प्रतीक।

दुलरिया यह देखकर हँस दी। बोली—

'बाप रे बाप, इतना पानी बरसा, इतना पानी बरसा कि सावन-भादो मात हो गए। अब जाके जरा सी धूप निकली है ?

हम तीनों हँस पड़े। बोली—

'अच्छा। अब बैठकर मीठी-मीठी बातें कर, मैं अभी थोड़ा जलपान लाती हूँ। हाँ देख, रज्जू लड़ न पड़ना बीच में, हाँ।'

हम दोनों मुस्कराए। वह मुस्कराती हुई चली गई।

उसके जाते ही मैंने दोनों बाँहें रम्मी के गले में डाल दिया व लटकते हुए बोला, बोल दे रम्मी, अब तो न रूठेगी ?'

नहीं रे, भला मैं कभी अपने भइया से रूठ सकती हूँ ?'

'तो खा मेरे सिर की कसम।'

मैंने उसका हाथ खींचकर अपने सिर पर रख दिया। उसने झट से अपना हाथ खींचते हुए कहा—

'मैं कसम तेरी हरगिज न खाऊँगी।'

'तो फिर तू रूठेगी। यही न ?' मैंने मुँह फुलाकर कहा।

'नहीं रे, नहीं, नहीं, कभी नहीं।'

जरा रुककर आत्मविभोर होती हुई बोली—

'मैं अपने भइया के सिर की कसम इस जनम तो क्या सात जनम में भी न खाऊँगी।'

'और मैं अपने को कभी माफ न करूँगा रम्मी। इतने बड़े गुनाह की सजा भोगनी ही होगी।

रम्मी मारे आश्चर्य के घबराकर बोली—

'यह क्या रज्जू ? तू क्या करने वाला है ?'

'कुछ भी नहीं, अभी तो सोचा तक नहीं है।'

'मेरे प्यार की सौगन्ध जो तुमने कुछ भी किया रज्जू ? याद रखना जिन्दगी भर की 'कुट्टी' हो जायगी फिर। भूलना मत यह मेरी बात।'

मैं मौन ही रहा और सोचता रहा इतने बड़े गुनाह की सजा अपने पाँव को क्या दूँगा ? आग में जला दूँ, कोल्हू में पीस दूँ, पेड़ के कान में अटका कर तोड़ डालूँ क्या करूँ, क्या करूँ ?'

रम्मी जीत गई। मैं हार गया।

वह फिर अंतरिक्ष में आँखें गड़ाकर बोली,

'मैंने कितना सोच रखा था तू आयगा तो.........तो.........। पर.........आज सब मिट्टी में मिल गया।.........इसमें कसूर भी किसका है ? किसी का नहीं। मात्र मेरा भ्रम।'

'नहीं रे मेरा जंगलीपन।' मैं टुनका 'जाने मुझे क्या हो गया था ? मैंने

कितना बड़ा अपराध कर डाला, तू मुझसे बड़ी है ! तूने मुझे कितनी ही बार पीटा है, पर मैंने तो कभी नहीं।'

'आज तूने सब दिन की कसर निकाल ली।'

रम्मी मुस्कराई।

'अभी कहां ? अभी तो बाकी है।'

कहकर, मैंने उसे छेड़ना शुरू कर दिया। वह खिलखिलाकर हँसने लगी। मैंने कभी कोख में गुदगुदाया, कभी पीठ में, कभी कांख में, कभी गले में।

हमारी छेड़छाड़ प्रचण्ड हो चली। हम चुपके-चुपके हँसने लगे। हँसते रहे, हँसते रहे। छेड़ते रहे, छेड़ते रहे।

जब दुलरिया कमरे में आई, तो हमें देखकर मुस्करा दी। बोली,

'अभी जी नहीं भरा रे ?'

'अभी कहां ?'

कहती-कहती रम्मी मुझे छेड़कर दूर जा बैठी। दुलरिया बोली, 'अच्छा आ, अब थोड़ा फल खाएं।'

मैं रम्मी की ओर लपकनेवाला ही था कि दुलरिया ने डांटा, 'रज्जू ?' बन्द कर अपनी शैतानी।'

मैं चुप लगा गया, भलेमानस। फिर लीचियां खाई गईं फिर केले।

दुलरिया हँसती जाती थी व गांव का समाचार सुनाती जाती थी, पाड़े टोली में झगड़ा हो रहा है दीपन व बसावन के घर में। एक दिन कुछ आदमी 'उजले' कपड़े पहनकर गांव में आए व लौट गए। दीपन की बीबी कहती है वे तिलकहरू उसके भतीजों के लिए आए थे, बसावन की बीबी कहती है, उसके भतीजे के लिए आए थे।

आनेवाले चले गए मगर झगड़ा जारी है। मैंने पूछा, 'वे आए किसके लिए थे ?

दुलरिया हँसी, बोली, 'तेरे लिए।'

'धत्त'

'नहीं रे वे आषाढ़ में बैल लेने आए थे।'

फिर बोली, 'खड़ानन पण्डित की शादी उत्तर में तय हो गई। तिलक-दहेज पाँच हजार लगेगा, लड़की अठारह साल की। खड़ानन ने अभी से खिजाब लगाना शुरू कर दिया है।'

हम ठहाका मारकर हँस पड़े। तब उसने कहा, 'देख, रज्जू कल सवेरे जाने से पहले तू गनेश के नाम चिट्ठी लेकर जाना व उसे खोजकर दे देना। मैं रात को लिखूंगी।' फिर मुस्कराती हुई बोली, 'जाके कह देना, बगिया की सारी अमियाँ पक गई हैं, नहीं समेटेगा तो कौआ चोंच मार देगा।

हम तीनों हँस पड़े। वह बोली—

'रमनथवा रोज-रोज सोनिया से खबर देता है कि दुलरिया एक दिन मन रख देगी तो उसका क्या घट जायगा ? माल तो मालधनी का है ही भिखारी को एक अंजुल दे देने से धर्म होगा, पुन्न होगा, बढ़ती होगी, घटेगा कुछ भी नहीं।'

वह हँस रही थी इसलिए हम भी हँसे पर मैं सोनिया के नाम से जल-भुनकर खाक हो गया।

हमारी मजलिस खतम हुई। जब रम्मी व मैं, अपने घर लौट रहे थे, तो मैंने कहा, शरमाते-झेंपते हुए।

'दुलरिया से तूने 'मार' की बात कहा ?'

'नहीं रे, आपस की बात किसी से कहते हैं ?' वह फिर रुककर बोली—

'तूने मेरे रूठने का कारण बताया ?'

'नहीं' हम दोनों हँसे। वह बोली—

'क्यों ?'

'आपस की बात।' हम जोर से हँस पड़े। फिर मैंने कहा—

'रम्मी, यह सोनिया जाने कितना घर 'नासेगी ?'

'क्यों ?' वह मुस्कराई।

'भाभी को उसने 'नासा', दुलरिया को 'नास' रही है और अपने तो कोई बात ही नहीं।' मैंने कहा।

'और तो तूने छोड़ ही दिया।' रम्मी मुस्कराई, मैं भी।

'तू पूरा कर दे' मैंने कहा।

'तेरे लिए 'राधा' खोज रही है।'

'और तेरे लिए कान्ह नहीं।'

लगा हम फिर से झगड़ पड़ेंगे पर यह क्या ? रम्मी तो मगन-मन मुस्करा रही है, बोली—

'मेरा कान्ह तो मेरे साथ है, मेरे आँचल में।' और मोहक मुस्कान उसके कपोलों पर बिखर गई।

'तो मेरी भी राधा मेरे साथ है, मेरे पाकेट में।'

'हाँ, तभी तो खाद की ढेर पर छेड़ रहा था, गोदी में भर रहा था, उसके पाँव दबा रहा था, प्यार से पट्टी बाँध रहा था।' वह मुस्करा रही थी। मैंने कहा—

'रम्मी, तू इतना जलती क्यों है? उतना तो मैं किसी के लिए भी कर सकता हूँ, वह तो 'धर्म' है, कर्त्तव्य है।'

'चल-चल, आया बड़ा धर्मात्मा बनने। उसे जरा सा घाव लगा तो इतना तड़प उठा।

'और मैं इतना तड़पी सो?'

रम्मी मोहक मुस्कान बिखेरती चल दी।

## १०

मेघदूत सा 'बिरहिन' का संदेशा लेकर मैं 'शहर' पहुँचा। गनेश दसवें में पढ़ता था शायद तीन साल से। उसे शादी के समय संक्षेप में ही देखा था इसलिए इतने बड़े स्कूल में ढूंढ़ निकालना कोई आसान काम नहीं था।

फिर पूछते फिरने की मुझे न तो इच्छा थी, न साहस। गाँव का 'गँवार' जो था, संकोच से भरा। खुली दूकान पर जाकर माल की कीमत पूछने की तो हिम्मत नहीं थी। फिर आदमी को कौन पूछता फिरे? सो भी लगभग अनजाना।

पर बिरहिन का संदेश !
कागा सब तन खाइयो,
खइयो हाड़ व मास,
दो नयना मत खइयो,
पिया मिलन की आस ।

उधर कागा' चोंच मारने को तैयार बैठा था, दो नयना से उसे कोई 'गरज' नहीं, उसे तो 'सब तन' चाहिए बस, भरा पूरा, स्वस्थ, बाँहों में ।

साँझ हुई और उदास मन मैं हास्टल से निकला। बाहर फील्ड में हमारी 'ए' और दूसरे स्कूल की 'ए' टीम के बीच मैच हो रहा था, फुटबाल का। बहुत सारे लड़के देख रहे थे स्कूल के। भीड़ खासी थी। मैं भी खड़ा होकर मैच देखने लगा और कुछ नहीं तो यही सही।

मैच काफी अच्छा तथा जोरदार था। दोनों ओर एक-एक गोल होकर 'ड्रान' मैच खत्म हुआ। लड़के फील्ड में दौड़ पड़े अपने-अपने दोस्तों को शाबाशी देने के लिए। मैं किसको शाबाशी देता ?

इतने में दसेक लड़कों से घिरा हुआ, एक हाथ में सोडा की बोतल व दूसरे में नीबू लिए, चूसता हुआ एक लम्बा गोरा लड़का निकला जो गनेश सा लगा। मैं घूर-घूर कर देखने लगा पर लपककर पूछने का साहस नहीं था। सारे लड़के हँस जो पड़ते।

भाग्य की बात कहिए, पास से गुजरते हुए वही 'ठमका'। फिर बोला, 'कौन ? रज्जू ?'

मैंने झट से कहा, 'हाँ'।

'आ-आ, तुमसे ढेर सी बातें करनी हैं।'

और उसने नीबू दाँत से पकड़ कर बाएँ हाथ से मुझे बगल में भर लिया व चलने लगा।

हम दोनों को घुलमिल कर बातें करते देख और लड़के छँट गए। मगर पीछे से आवाज़ सुनाई दी।

एक ने कहा, 'यार पटती है खूब दोनों में।'

दूसरा, 'गहरी छनती होगी।'

ठहाका मारकर सभी हँस पड़े। फिर एक ने कहा—

'जोड़ी तो अच्छी है यार।'

'जोड़ी सलामत रहे।'

फिर वही हँसी। मैं मन ही मन गुस्सा हो रहा था, पर गनेश बराबर हँस रहा था। अंत में किसी ने छींटाकशी की,

खुश रहो आबाद रहो

चाहे यहाँ रहो, या एलाहाबाद रहो।

हँसी का फौव्वारा फिर छूटा, पर हम काफी आगे निकल गए थे।

गनेश ने दुलरिया का समाचार पूछा फिर रम्मी का पूछा। बुआ, माँ, काकी सबके बारे में पूछता रहा। अन्त में मैंने चिट्ठी की बात कही तो बोला–

'दे देना, जल्दी क्या है ?'

मुझे इस लापरवाही पर कुछ आश्चर्य हुआ, पर मैंने कहा, 'तुम रुको यहीं, मैं चिट्ठी लाता हूँ।' और मैं भागा। मन ही मन सोच रहा था, बिरहिन का संदेस, कौवे की चोंच, रमनथवा की चिट्ठी दस रुपये के नोट पर। जब मैंने चिट्ठी लाकर दे दिया तो उसने न खोला न पढ़ा। बोला,

'चल रज्जू, बाजार तक, वहाँ से लौट आना।'

मैं भी कुछ अकेलापन महसूस कर रहा था। उसके साथ-साथ हो लिया। हम लोग स्कूल के मैचों की ढेर सी बातें करते रहे।

बातें करते-करते हम चौक में पहुँच गए। वहाँ एक छोटी सी पर सजी हुई चाय की दुकान में गनेश मुझे ले गया। वहाँ हमलोगों ने चाय पी। चाय के बाद उसने मुझे अपने घर चलने को कहा, पर मैंने इन्कार कर दिया। बोला, "फिर कभी आ जाऊँगा, आज नहीं।'

अब हम लोग लगभग रोज ही शाम को फील्ड में मिल जाते खेल के बाद। वह रोज 'प्रैक्टिस' के लिए आता। उसी के कहने से मैं भी स्कूल की 'सी' टीम में भरती हो गया और शाम को फुटबाल खेलने लगा। इससे जी भी बहल जाता व रम्मी के बारे में सोचने की फुर्सत कम मिलती।

इस बार मैं रम्मी के बारे में पहले से भी बेसी सोचता। सोचता अपने पागलपन की बात। अपने ही प्यार की प्रतिमा को इस प्रकार ठोकर मारना। छिः-छिः। मैं अपने को कभी माफ नहीं करूँगा, कभी नहीं।

पर रम्मी क्यों इतनी नाराज थी ? क्यों ? मैंने किया क्या था ? मेरी समझ में कुछ भी न आता।

फिर उस निरीह मोनिया की सूरत आँखों में नाच जाती। बेचारी थकी होने पर भी कुदाल चलाती गई, चलाती गई। निर्दयी मैं ही था, जो सोनिया के कहने पर भी उसे कुदाल से छुड़ा नहीं दिया। कितनी थकी हुई धीमी आवाज में उसने कहा था,

'ना '

तो क्या रम्मी जलती है ? सोनिया से, मोनिया से ? पर क्यों ? यह सोनिया ही शैतान है, उसने ही 'तुम्हारी राधा' कहा था मोनिया के लिए। वह ऐसा न कहती तो शायद रम्मी इतना न जलती।

ओह, पर मैंने रम्मी को मारा, सचमुच मारा, जानबूझ के मारा। वह कैसी फटी-फटी आँखों से मुझे देखती थी। हे राम, रम्मी चाहती तो मेरा हाथ पकड़कर इतने जोर से ऐंठ सकती थी कि बाँह चरचरा के टूट जाती, पर नहीं, वह मौन रही। मौन रही, रोई नहीं, चिल्लाई नहीं। उसने कहा 'पराए घर'।

मैंने कितना अक्षम्य अपराध कर दिया। अब वह मुझे कभी पहले जैसा प्यार न करेगी। कभी नहीं। अब क्या ? अब तो गांठ पड़ गई। कौन छुड़ाए इस गांठ को। भला, दिल का शीशा टूटकर कभी जुटा है ? जुटे भी तो क्या पहले जैसा होगा ? एक 'दरार' एक लकीर बनी रह जायगी, सूखते 'पांक' की लकीर सा।

मैं अपना सिर भी दे दूँ काटकर, तो रम्मी अब वह न होगी, ज़ो थी।

मैं उसकी बात सोचते-सोचते दिन पर दिन अन्तर्मुखी होता जा रहा था व पुस्तकों में गड़ने लगा था। स्कूल की लाइब्रेरी के अलावा मैं 'पब्लिक' लाइब्रेरी का भी मेम्बर हो गया। वहाँ बड़ी-बड़ी 'रेकों' में विभिन्न रुचियों की पुस्तकें भरी पड़ी थीं।

एक दिन विद्यापति की पदावली मिल गई। पढ़ने लगा। बड़ी रसीली लगी। जब पढ़ा—

'पहिल बयरि सम पुनि नवरंग।'

तो खिलखिलाकर हँस पड़ा। सोचा रम्मी से जाकर कहूँगा। फिर–

'शैशव यौवन दुहुं मिलि गेल,
श्रवन क पथ दुहुं लोचन लेल,
बचन की चातुरि, लहु लहु हास,
हिरदय चाँद कईल परगास।'

मन में बार-बार घुलाता रहा मिश्री की डली सा,

'पहिल बयरि सम, पुनि नवरग'

फिर, 'हिरदय चाँद कइल परगास'

मैंने सारी 'वय: संधि' कापी पर उतार लिया। सोचा हमारी रविवारी मजलिस में इसकी छक के विवेचना होगी।

एक दिन पुस्तकें पलटते-पलटते कहीं 'पन्त' की एक रस भरी मिल गई–

'अमिया से उभरे उरोज।'

फिर तो क्या था मैं पढ़कर निहाल हो गया। बार-बार पढ़ा। रम्मी की याद बेहद आई। सोचा खूब चिढ़ेगी, जब सुनाऊंगा––

'रम्मी की अंखियाँ सरोज'
'अमिया से उभरे उरोज'

और ?

सोचने लगा क्या साहित्य यही है ? तब तो इसका अध्ययन मैंने बहुत पहले ही आरम्भ कर दिया है रम्मी के साथ अनजाने ! सजीव कविता, सदेह।

अंग्रेजी पुस्तकों पर एक दिन हाथ फेरने लगा, तो एक पुस्तक मिला 'ग्रीक-आर्ट' पर। सुन्दर आर्ट पेपर पर रंगीन तस्वीरें भरी पड़ी थीं जो शायद मूर्तियों की थीं, कलाकार की अमर-कृति।

पर उनमें था क्या ? नंगा तन, नंगा तन पुरुष का, नंगा तन नारी का एकदम नंगा।

कितना सुडौल, कितना सुन्दर शरीर की गठन कितनी भव्य, उसमें कितनी चिकनाई, रग-रग में शक्ति व सौन्दर्य खिला हुआ। शील बहुत कम सो भी अपने ढंग का। संकोच ? बिल्कुल नहीं।

क्या कला का यही रूप है ?

साहित्य-कला । रज्जू-रम्मी ।

और यदि रम्मी से कहूं इन प्रतिमाओं जैसे ही 'पोज' बनाकर दिखाने को ?'

बाप रे बाप, वह हरगिज राजी न होगी ऊपर से मुझपर चार्ज लगायगी "बिगड़ने' का ।

पर दुलरिया ? उसका कोई ठिकाना नहीं । जी में आ गया तो कुछ भी कर डालेगी ।

मुझे लगा पब्लिक लाइब्रेरी बड़ी अच्छी है, स्कूल की लाइब्रेरी में इतनी मजेदार पुस्तकें नहीं । गांव जाने से पहले एक पुस्तक योगासन पर भी मिल गई, जिसमें हर आसन की फोटो दी गई थी ।

एक सोलह वर्ष की लड़की ने मात्र अण्डरवीयर (काली) व ब्रेसियर में सारे आसन किये थे । पुस्तक में आकर्षण बहुत था । यह भी लिखा था कि ये आसन लड़के-लड़कियाँ समान रूप से कर सकती हैं । मोटापा घटाने के विशेष आसन दिए थे ।

फिर तो क्या था मैंने इस पुस्तक को तथा 'ग्रीक आर्ट' वाली पुस्तक दोनों को लाइब्रेरी से ले लिया । इस बार रम्मी व दुलरिया के लिए यही उपहार बहुत थे, ऊपर से विद्यापति की पदावली से चुने हुए 'अंगूर' के दाने तो थे ही, रस से भरे-पूरे ।

●

## ११

मेरे गांव जाने से पहले गनेश ने एक पैकेट दिया दुलरिया के लिये जिसमें पता नहीं क्या-क्या था ? जवानी बोला, 'कह देना दुलरिया से कजरी-तीज के मेले में मिलेंगे।'

इस बार हमारी तीन दिन की छुट्टी थी। कजरी तीज रविवार के साथ मिल गई थी।

अबकी बार गाँव व खेतों का नजारा बिल्कुल ही बदला हुआ मिला।

मीलों तक मकई के पौधे पूरवा में लहराते हुए दिखाई दिये। गंगा के कछार में धान के दुबले-पतले लम्बे पौधे लचकते, बल खाते, हवा में झूमते, सामने नदी का भरा पूरा पाट जलमय, समुद्रसा, धारा तेज, चक्र खाता, उफनता जल, रह-रहकर कगारों के काटने का धमाका, जल पर तैरती बड़ी-बड़ी नावें दो-दो, तीन-तीन पालों के पंख पर उड़ती, कोई-कोई नन्हीं सी डोंगी नन्हें से पाल पर नई छोकरी की तरह फुर-फुर भागती सब कुछ बड़ा ही अपूर्व था।

किसका न मन मोह जाता, इस सुहाने समां पर।
सावन पूरी मस्ती में था, भरी जवानी में था।

हवा के झोंको में कभी 'सारंगा-सदावृज' और कभी कजरी लहराती, बल खाती कानों में अमृत घोल जाती,

'रामा, सावन के महिनवा,
बदरा रिम-झिम बरसे ना।'

फिर,

बरसे बरखा बहार,
झड़े बूंदन फुहार,
सूनी सेजिया हमार,
सुन मोरी सजनी।

धान के खेतों में 'निराई' का काम लग गया था। सोनिया का दल-पाँच छः नई छोकरियों का, खेतों में इधर से उधर आकाश के बादलों सा मंडराता और रह-रह कर रस-वर्षा कर देता।

पूरवा के झोंकों पर उनकी मधुर स्वर-लहरी सारे 'सरेह' में गूँज उठती। भूखे-प्यासे दिलों को तसल्ली मिलती। इस दल की मांग बहुत रहती थी और कभी-कभी दो, भूमिधरों में लड़ाई भी हो जाती कि वे किसके खेत में काम करेंगी ? पर जो भी हो, सोनिया की मरजी की बहुत कीमत थी। वह तथा उसका दल काम भी मिहनत से करता था और रस-वर्षा मुफ्त में।

भला किसे न भाता यह मजूर-दल।

मजूरी में दिल देने वालों की भी कमी न थी पर वे लेती बराबर वैसे ही थीं, उनके लिए पैसा महगा था दिल सस्ते थे।

इधर गाँव में नये समचार बहुत हो गए थे जिन्हें समभाव से बराबर हंसते-हंसते दुलरिया सुनाती। जैसे दासा पाड़े की माँ भीख मांगकर खाने लगी थीं, फिर भी दोष सारा बहू पर मढ़कर दासा की तारीफ का पुल बाधे बिना न रहतीं।

उधर दासा ने अच्छा मुनाफा मिलने के लोभ में अपना बैल आषाढ़ में वेंच दिया अब नया बैल मिलता नहीं जल्दी, कौन अपना बैल आषाढ़ में वेचे। इसलिए वे हल-बैल मंगनी मांगकर खेती कर रहे हैं, पर कोई जल्दी देता नहीं। घर-घर, द्वार-द्वार दाँत 'निपोरते' फिरते हैं व जवाब 'टका' सा मिल जाता है। सब कहते हैं, 'बावग' खत्म हो जाने दो फिर एक के बदले दो दिन ले जाना।

'पूछो, बावग ही खत्म हो जायगा तो सावन में कोई हल-बैल देकर क्या करेगा ? दासा ही उनका क्या करेगा ? चटनी बनायगा ? या आँख का अंजन ?' दासा कहता।

पर लोगों की दलील और है, वे कहते हैं, 'हम अपना' अकाज 'कर दासा को हल-बैल क्यों दें ? वह कभी सूद में एक पैसा छोड़ता है ? मुरव्वत तो उसकी आँख में है ही नहीं।'

दूसरा बोलता है, 'अरे लाज-हया आँख में रहती है न ? सो तो वह नीचे करके बोलता है, फिर कैसी लाज ? कैसी मुरव्वत।'

खड़ानन पंडित की शादी इस बीच हो गई, बड़े धूमधाम से। रुपये नकद खर्च हुए दस बीघा खेत स्वाहा हो गया। गाँव भर खूब छक के खाया व नाच देखा। फल ? आठ साल की छोकरी मिली, सो भी धनिया की जात की।

बात यह है कि खड़ानन पंडित जरा रसिया जीव हैं, थोड़े दिन काशी में इन्होंने किसी पाठशाला में 'लघु कौमुदी' का अध्ययन किया फिर तो क्या ? बन गए पंडित और कलकत्ते में जमकर मारवाड़ियों के घर माल मारने लगे।

खड़ानन के एक चाचा थे जो गाँव पर खेती बारी करते थे। खड़ानन लगन के दिनों में हर साल गाँव पर सज-धज कर आते थे। पान, तम्बाकू, बीड़ी सिगरेट से लेकर गाजे-अफीम तक का डौल लगाते थे पर 'देखनहरू' न आए। 'ढाही' पर के गाँव के 'मंगन' पंडित को कौन अपनी वेटी ब्याह कर कुएँ में डालता।

खड़ानन हर साल आशा के पुल बाँधते, चढ़ते-उतरते और पुल ढह जाता। इस प्रकार उनकी जवानी धीरे-धीरे खिसक गई। एक दिन उनके चाचा भी सुरलोक सिधार गए। उनकी भी सारी उम्र यूंही सपने देखते गुजर गई थी।

अब जमीन-जायदाद सम्हालने के लिए खड़ानन पंडित गाँव पर रहने लगे। कुछ दिन और गुजरे। पंडित ने देखा कि शादी न होने से 'पुत्र' न होगा पुत्र न होगा तो 'पिण्डदान' व 'जल' कौन देगा ? 'जल' न मिलने से 'पिण्डी' नरक तो जाना ही पड़ेगा। इस प्रकार 'लोक-परलोक' दोनों बिगड़ेगा। न माया मिली न राम।

अपना दिल मजबूत करके पंडित ने 'परलोक' को छोड़ 'लोक' बनाने की ठानी। सबसे पहले पंडित ने अपने घर के सामने पीपल के पेड़ तले 'अखाड़ा' खुदवाया। फिर क्या था, गाँव के नवयुकों की मण्डली जमा होने लगी। दण्ड, कसरत और 'रस-चर्चा' 'थोड़ा बहुत 'नसा' भी। भंग तो लगभग रोज ही छनने लगी व भंग की तरंग में वे रसीले तान पंडित छेड़ते कि वस, क्या कहने ?

एक बार मैंने भी सुना था पंडित को गाते हुए,

'पियवा अभागा ना जागा
नक-बेसर कागा ले भागा।'

तब मैं इसका कुछ भी अर्थ न जानता था। सोचा, कौओं की तो आदत ही है, कुछ न कुछ लेकर भाग जाते हैं, फिर 'नकबेसर' ही सही।

हाँ, तो पंडितजी पाँच कोस के भीतर आनेवाली हर बारात में नाच देखने जाने लगे अगली कतार में बैठते, उनके साथ उनके अखाड़े के दो चार पहलवान रहते, और पंडितजी खूब पैसे फेंकते, रस लेते, रस देते।

पंडित ने खेत-खलिहान में गाँव के मजूरों की छोकरियों पर पहले हाथ साफ किया फिर भूत-प्रेत झाड़ने लगे व रात-रात भर मजूरों की बस्ती में गायब रहने लगे। अंत में अपने हलवाहे बन्नू चमार की 'नवकी' (नई बीवी) धनिया के साथ उन्होंने 'परमानेण्ट सेटलमेण्ट' कर लिया।

पंडित व धनिया के नाना प्रकार के कौतुकों की कथा गाँव भर में गूंजती रहती। बाग-बगीचे, खेत-खलिहान, 'निकसार-पैसार'—हर जगह उसकी चर्चा होती, नकल उतारी जाती। पंडित के बहाने कहने सुननेवाले भी रस लेते-रस देते।'

पंडित अब पचास के निकट आ रहे थे वे स्थितप्रज्ञ होते जा रहे थे। उनके सामने भी जो कुछ कहो, धनिया को लेकर,तो हँसकर रह जाते, बुरा न मानते। बार-बार कहते।

'इस संसार में क्या धरा है? माटी का संसार माटी में मिल जायगा। यह माटी की देह भी माटी में मिल जायगी। फिर इससे जितना रस लेते-देते बने, लो और दो।'

पर शादी होने पर खड़ानन के गुस्से का कोई अन्त नहीं। कहता है,

'सालों ने जात-धरम लिया सो लिया, छोकरी तो अठारह की देते जैसा वादा किया था।'

रमनथवा कहता है, 'काका, जात-धरम तो पहिले ही धनिया के आँचल में बँध चुका था, कुछ होता तब न वे लेते।'

ठहाका मारकर सब हँस पड़ते हैं। दीपन कब चूकने वाले। कहते हैं, 'खड़ान' ने ठीक से सुना नहीं, मंगल चौबे ने कहा 'आठ' ही था अठारह का तो ये सपना देख-देखकर सच मान गए।'

जोर की हँसी होती। खड़ानन गुस्से में चूर हो जाते। इधर दीपन और जोड़ता,

'खड़ानन, क्वारी कन्या में कोई दोष नहीं, उसकी कोई जात भी नहीं। वह ब्राम्हण तुल्य है फिर तो तुम ब्राम्हण हो ऋषि हो, उसे ऊपर उठा सकते हो।'

रमनथवा कहता है, 'हाँ, पालो-पोसो, तुम्हारे नहीं, तो गाँव-नगर के काम तो आयगी।'

दिन पर दिन, रोज-रोज, ये फुहेरियाँ सुनते-सुनते तंग आकर खड़ानन ने कचहरी में दावा कर दिया है अगुवा पर तथा लड़की के बाप पर।

गाँव को खूब रस मिल रहा है। खड़ानन भट्ठी में जा रहे हैं, जाँय। गाँव की यही तो रीत है, एक डूबता है तो शेष 'ताली' पीटते हैं।

सोनिया के आवें की खपरैल खोजनेवालों की संख्या बढ़ रही है। कभी-कभी मोनिया का भी नाम लिया जाने लगा है। चलो, खपरैल नहीं, तो सोंधी सुवास तो मिल जाती है, चक्कर मार लेने में घटता क्या है।

एक और खबर बड़े जोर पर है। आखिरी लगन में ही तो बूढ़ों का 'किनुआ-बेचुआ' विवाह होता है। दो, ऐसे ही विवाह की बारातें सोनपुर से आ रही थीं। छपरा में दोनों बारातें उतरीं व पालकी में अपनी-अपनी 'कनिया' लेकर दोनों दूल्हे घर गए।

चार दिन के बाद 'बहुरंवत' आया तो उसके साथ दुलहिन का भाई भी आया नारायनपुर वाली के पास। दुलहिन घूंघट काढ़े भाई का पाँव पकड़कर रोती धोती रही। जब रो-धोकर घूंघट उठाया तो भाई अवाक्।

वोला, 'यह तो मेरी बहिन नहीं है?'

दूल्हा ने हँस के कहा, 'नहीं? मैंने तो समझा था यह मेरी बीबी है।'

बात की बात में खबर फैल गई गाँव में जवार में कि परदे के कारण 'दुलहिनें' बदल गईं छपरा स्टेशन पर।

मगर रमनथवा कहता है कि नारायणपुर वाले ने यह जान-बूझकर किया क्योंकि उसकी 'कनिया' काली थी व छोटी, दूसरी गोरी व तैयार।

सब खूब हँसते हैं व रस लेते हैं ये हुई गाँव में जवार की आम खबरें। दुलरिया के ही मुंह से सुनना भला है, क्योंकि मैं उतने ढंग से कह न खास खबरें सकूंगा जैसे सजाकर वह बोलेगी, मधु के छीटें छिड़क-छिड़क कर।

दुलरिया ने अपनी बगिया में नीम के पेड़ में झूला डाल दिया है, वैसे झूला रम्मी ने भी लीची के पेड़ में डाल दिया हे। पर उसका इस्तेमाल वह नहीं करती। अकेले क्या करें ? क्यों ?

सबेरे-सबेरे दुलरिया की बुलाहट आई। रम्मी तथा मैं, दौनों गए। मैं गनेश की दी हुई सौगात लेता गया, जिसे विना खोले उसने रख दिया व बोली, चल,

'चल रज्जू, तुझे झूला झुलाएँ। चल रम्मी।

और हम दोनों के कन्धों पर बाहें रख कर वह चल दी घर के पीछे बगीचा मैं यहाँ कुछ पेड़ हैं, कुछ फूल हैं, एक कुआ है, माली का एक घर कोने में हे, जिसमें कोई रहता नहीं।

झूले के पास पहुँचने पर मैंने कहा,

'तुम दोनों बैठो , मैं झुलाऊँगा।'

दुलरिया हँसी। बोली, 'नहीं बाबा, कहीं तेरी राधा रूठ जायगी तो बस, सारा मज़ा क़िरकिरा हो जायगा। 'रम्मी व मैंने एक दूसरे को देखा व हँसे। दुलरिया कहती गई, 'सुन रज्जू पहले तू व रम्मी वैठ जा, मैं झुलाऊंगी। फिर तू झुलाना भला।'

दुलरिया कितनी मीठी है, कितनी मिलनसार, हर बात में कितना हमारा ख्याल रखती है ? मैं यही सोचने लगा तब तक, उसने मुझे झट से पकड़ कर झूले पर ढकेल दिया और मैं रस्सी पकड़ वैठ गया। तब वह बोली,

'चल रम्मी, जल्दी कर।'

'मैं इसके साथ न झूलूंगी।'

'क्यों ? शरम आती है ?' दुलरिया बोली।

'नहीं यह लड़ेगा' रम्मी मुस्कराई।

'तो वहीं पर निबट लेना' कहकर दुलरिया ने घसीटा रम्मी को व मेरे बगल में बैठने पर मजबूर की।

और हमारे वैठते ही जब तक हम संभल भी न पाये थे कि उसने झूले को पीछे से धक्का दिया। वह एकाएक आसमान में उठ। मैंने अकबका

कर रम्मी की कमर में हाथ डाल दिया उसने मेरी गरदन में बाँह डाल दी व मेरी ओर ताककर इतनी मोहक हँसी हँस पड़ी, जैसे युग-युग की प्यास पूरी हो रही हो। जैसे उसके सपने साकार हो रहे हों।

और मुझे ?

मुझे लगा मैं सचमुच आकाश में उड़ रहा हूं रेशमा के साथ, शैलजा के साथ, बनदेवी के साथ-पुष्पक विमान में।

रम्मी का रेशमी आँचल लहराया। यह पताका इतनी अच्छी लगी कि क्या कहूं ? साहित्यिक होता तो कहता 'मनोज की पताका' फहराने लगी।

अब हम झूलने लगे सम भाव से। दुलरिया हर बार एक धक्का देती जब हम उसके पास पहुँचते। सबसे ऊँचे बिन्दु पर आकाश में पहुँचकर डरके बारे हम दोनों एक दूसरे से लगभग चिपक जाते, पर नीचे उतरते समय मुस्कराते हुए जरा अलग हो जाते।

अब दुलरिया ने गीत आरम्भ किया,

गोइयाँ ! घेरि घेरि के बरसै, काली-काली बदरिया ना।

तरसै जियरा, बोलै पपिहरा, चमकै बिजुरिया ना;
रात अँधेरिया, बिना सँवरिया, सूनी सेजरिया ना।
बहै बयरिया, लगे कटरिया, छाई बदरिया ना;

गोइयाँ, घेरि घेरि के बरसै, काली-काली बदरिया ना॥

और,

झूला परै कदम जुड़ छहियाँ,
डालै कृष्ण गले में बहियाँ,
झूलै राधा-प्यारी ना।

रम्मी ने भी स्वर मिलाया। मैं मुस्कराता रहा चुपचाप। खूब मजे आ रहे थे, क्या कहूं, कैसे कहूं ?

दुलरिया की शरारतें आरम्भ हो गई थीं। पहले तो वह रस्सी को पकड़ कर झुलाती थी फिर हमारे कंधों पर हाथ रखकर ठेलने लगी।

और गीत चल रहा था—

अभी बारी है मोरी उमरिया,
परदेस में छाए मोरो सावरिया,
रामा, अरे रामा
फारैं जोबनवा चोली
लागे तन गोली रे हरी।

एक बार झूला रुकते ही रम्मी ने मुझे संकेत किया व हम दोनों मुड़कर दुलरिया के सामने हो गये। फिर तो क्या था रम्मी ने पकड़ा दुलरिया को जोर से, कस ली उसे बाहों में और लगी उसे छेड़ने। और हँसे जाती, हँसे जाती, जैसे इस खिलखिलाहट का कोई अन्त ही न हो।

मैंने झट से उतरकर झूले को धक्का दिया। दुलरिया भी झम्म से झूले पर कूद पड़ी व दोनों झूलने लगीं। पर उनका अजीब हाल था। तेजी से उठते-गिरते झूले पर भी वे एक दूसरे को छेड़ने से बाज न आतीं, कोख में, पीठ में, मिवली में कहीं भी छेड़ देती और फिर वही 'ही-ही-ही-ही'।

हवा में उनके आँचल लहरा उठे। कभी-कभी डाली चरमरा उठी। सारा पेड़ थर-थर काँपने लगा। मुझे याद आया रहीम का पद— 'संत' रहीम का,

लहरत लहर लहरिया
लहर बहार
मोतिन जरी किनरिया
बिथुरे बार
कौन रोग दुंहु छतियाँ,
उपजेउ आइ
दुखि दुखि उठे करेजवा
जिय जरि जाय
चूनत फूल गुलबवा,
डार कटील
टुटिगा बन्द अंगीयवा,
फटि ५ट नील।

जब दोनों ने खूब छक के रस पी लिया, तो मतवाली सी झूमती आई दुलरिया के कमरे में ।

दोनों कितनी खुश थीं ?

दुलरिया बोली, 'आ अब जरा देखें हमारे रसिया ने क्या भेजा है ?'

'क्यों फिर कुछ भेजा है क्या ? 'रम्मी चहकी और मुस्कराई ।

'नहीं रे, यह तो पहली सौगात है ।'

दुलरिया कागज़ के पैकेट को खोल रही थी, एकाएक बोल पड़ी, मुस्कराती हुई,

'तूने किसे समझा, रम्मी ?'

और दोनों की आँखें एकदम से चमक उठीं, मुस्कान के गड्ढे कपोलों पर थिरक उठे । जरा संभलकर रम्मी बोली,

'शहरी यार ।'

'ओह, मैंने समझा…… ।'

फिर दोनों हँसी । रम्मी ने पूरा किया,

'गाँव का गँवार ।'

और पैकेट में से निकला क्या ? दो साड़ियाँ, दो ब्लाउज, दो ब्रेसियर, पाउडर, स्नों, लिपस्टिक, वैनिटी बैग ।

उसी में एक खत भी था जिसे पढ़ने लगी । लिखा था, 'कजरी के मेले में दोपहरी ढलने पर पोखरे की सीढ़ी पर उत्तर ओर मिलेंगे ।' यह भी लिखा था, 'हरे रंग की साड़ी व उसके साथ लिपटा ब्लाउज व ब्रेसियर रेशमा को दे देना मेरी ओर से सावन की सौगात, कजरी तीज की भेंट । शेष तेरे लिए (दुलरिया) है । तुम दोनों यही साड़ियाँ व ब्लाउज पहनकर आओ मेले में, तो बड़ी खुशी होगी ।'

दुलरिया खुश हो गई । बोली, लो रानी, आधा माल तुम्हारा आधा मेरा । हमारा रसिया भला सौत को क्यों भूलता ?

दुलरिया यही सब कह रही थी वे नई साड़ी का पल्ला सीने पर फेर-कर देख रही थी कैसा फबता है ? वह सचमुच खुश थी, बेहद खुश ।

पर रेशमा ?

उसका मुंह एकाएक उतर गया पर क्यों ?

दुलरिया अपनी ही धुन में मस्त थी । किसी गीत की एक कड़ी गुनगुना रही थी,

'सइयाँ पठावे मोरे,
कसमस की चोलिया रे'

उसने झट से अपनी चोली उतार फेंकी व नई चोली पहनती हुई शीशे के सामने खड़ी हो गई ।

यह चोली भी क्या थी ? 'वाडिस' से जरा भी वड़ी नहीं । छाती खुली पेट खुला, पीठ दो तिहाई खुली व पीछे की मूंधियाँ कस-कस के बाँधने पर भी गोल-गोल फूलनुमा सोने की पीठ बाहर झांक पड़ती थी । सामने का समां तो और भी निराला था । सुनहरे रेशम की चोली पर दो गुलाब के बड़े-बड़े फूल वने थे जो उसके सीने पर दोनों ओर खिल पड़ते थे ।

अपना चेहरा शीशे में स्वयं देखकर खुश हो गई । वोली, बोल रज्जू, कैसी लगती हूं ?'

'अच्छी, वहुत अच्छी ।'

'शाबाश' कहके उसने मुझे हल्की चपत जमा दी । बोली, 'लगता है, रसिया को माल की परख है । अबकी भेंट होगी तो कहूंगी, मुझे सावन निकलने से पहले ले चल, यहाँ माल सड़ाने से लाभ ?

और गुनगुनाने लगी,

'सइयाँ भेजे कसमस चोलिया रे ।'

मैंने कहा, 'साड़ी भी जरा पहनकर देख दुलरिया ।'

'वाह रज्जू, तेरे भी दांत निकलने लगे ।' वह बोली और लगी नई साड़ी पहनने । छन भर में पहनकर तैयार हो गई ।

ओह, दुलरिया सचमुच कितनी सुन्दर है, कितना जंचती है ।मुझे शरारत सूझी मैंने पूछा ,'

'अच्छा दुलरिया, अगर रमनथवा तुझे यूँ देखे ?'

'मुस्कराई, बोली, 'तड़प उठेगा । उसके दिल पर साँप लोट जायगा ।'

'तो क्या कर लेगा तेरा ?'

'कुछ भी नहीं ।' वह फिर मुस्कराई व अंगूठा दिखा दी ।

मैं सोचने लगा रेशमा जब नई साड़ी व ब्लाउज पहनेगी तो कितना जंचेगी ? इतने में दुलरिया का ध्यान रम्मी की ओर गया जो पलंग पर मुंह लटकाए बैठी थी । बोली,

'चल रम्मी जरा तू भी पहन । देखूं सौत कितनी जंचती है ?' और रेशमा के लिए नन्हें से ब्रेसियर को हाथ में लेकर बोली,

'मेरा राजा जानता है, रम्मी रानी के पास बस नन्हीं-नन्हीं अमिया हैं।'

हम सभी हँस पड़े । रम्मी भी जरा सी मुस्कराई ।

जब दुलरिया ने रम्मी को ध्यान से देखा, तो चकित रह गई । बोली,

'अरे तू मुंह क्यों लटकाए है ? तुझे ये पसन्द नहीं ? फिर मेरी साड़ी ले ले, तुझे जो पसन्द आए ले ले । हाँ, मेरी ब्लाउज व ब्रेसियर तुझे फिट न होगी।'

वह मुस्कराती हुई बोली । रम्मी क्षीण मुस्कान के साथ बोली, 'नहीं रे, मुझे अपनी मां की याद आती है, कजरी तीज के लिए उसने कुछ भी नहीं भेजा अभी तक।'

क्या सचमुच रम्मी को अपनी माँ की याद सता रही थी ? कौन जाने उसके मन की ? हो भी सकता है ।

दुलरिया ने प्यार व संवेदना के स्वर में कहा, 'तो अभी से उदास क्यों होती हो ? मेरी रानी, तीज तो कल है । हो सकता है कल आ जाय ।' परसों 'सेरावन' ( जल विसर्जन ) है तीज का व मेला भी । अभी अपने रसिया की भेंट से छाती तो जुड़ा ले, कल माँ के आँचल में मुंह छिपा लेना ।'

रम्मी ने सिर नीचे कर लिया था इसलिए दुलरिया देख न पाती थी कि उसकी बातों का असर रम्मी पर क्या हो रहा है ? उधर शायद रम्मी के दिल पर कुल्हाड़े चल रहे थे । मैंने कुछ–कुछ भांपा व बेचैन हो गया । पर ठेस कहाँ लगी रम्मी को व कैसे, बुझ न पाया ।

रम्मी को मनाने के लिए दुलरिया पलंग पर बैठ गई व उसका मुंह सीधा कर रम्मी की ठोढ़ी पर हाथ रखते हुए बोली, 'जानती है, मेरा दूल्हा तेरे बारे में क्या कहता है ?'

'उहुं 'रम्मी धीमे बोली ।

'कहता है, दुलरिया सेंदूर तो तेरे मांग में भरा है पर अंगूठी रेशमा ने पहनाई है, इसलिए मेरी दो रानियाँ हैं, बड़ी और छोटी।'

मैं मुस्कराया। रम्मी एक व्यंग हँसी के साथ बोली, 'फिर ?'

मैंने पूछा, 'फिर छोटी रानी को क्यों नहीं लाया ? 'तो बोला, 'माल अभी कच्चा है, पक जाने दे फिर हरगिज न छोड़ूंगा।' दुलरिया हंसी।

रम्मी ने सहयोग न दिया। भयवत बोली,

'फिर ?

'फिर क्या हम दोनों पलंग पर ढ़ेर हो गए।'

तीनों मुस्करा पड़े। रम्मी ने कहा, 'चल रज्जू, घर चलें, देर हुई।' और उठने का उपक्रम करने लगी।

दुलरिया ने कहा, 'अच्छा, फिर ये साड़ी ब्लाउज तो लेती जा।'

'फिर ले लूंगी' रम्मी ने अनमनस्क भाव से कहा।

'अभी क्यों नहीं ?' दुलरिया की भौंहों पर बल पड़ रहे थे। रम्मी बोली,

'क्या पता, चाची नाराज हों।'

'नहीं मेरी रानी, मैं बुआ को मना लूंगी। तू ले जा।' कहते-कहते उसने रम्मी के कपोल चूम लिए व बोली, 'यूं उदास नहीं होते।' फिर मेरी ओर मुड़कर बोली, 'तू लेता जा रज्जू।'

और मेरे हाथ में उसने कागज का पैकेट पकड़ा दिया जिसमें रेशमी के लिए साड़ी, ब्लाउज व ब्रेसियर थी।

जब हम दुलरिया के घर से बाहर निकले तो रम्मी ने मारे गुस्से से कहा,

'मैं आग लगा दूंगी उसकी साड़ी व ब्लाउज में, अपने को बड़ा रसिया बनता है, मैंने जैसे कभी साड़ी देखी न हो।'

रेशमी दाँत पीस रही थी, होंठ चबा रही थी, मारे गुस्से के उसकी आँखें अंगारे सी लाल-लाल हो रही थीं। मैं तो एकदम से डर गया।

इसमें इतना गुस्सा होने की क्या बात है, मेरी समझ में न आया। नहीं लेनी है साड़ी लौटा देंगे। पर इतना गुस्सा क्यों ?

'फिर उसने मेरी ओर मुड़कर पूछा,

'तू मेरे लिए साड़ी क्यों नहीं लाया ? ब्लाउज क्यों नहीं लाया ? जानता नहीं था कल कजरी-तीज है ?'

मैं इस, गुस्से के सामने क्या बोलता ? चुप ही रहा, वह बोलती गई, 'चल, घर चल। मैं तुझे रुपये दूंगी। तू जाके जहाँ से हो, कल साड़ी-ब्लाउज मेरे लिए ला दे।'

'और ये ?' मैंने धीरे से कहा।

'चुप रह।' उसने कस के डांटा।' इनमें आग लगा दे। अभी तुरन्त। चल उस लीची के पेड़ तले अपनी बगिया में। मैं अभी इसकी' होली 'बनाती हूं' वह गुस्से से काँपती रही। दाँत मींचती रही। रुककर फिर बोली,

'रज्जू तू बुद्धू है, पूरा बुद्धू। जाने पढ़ने में इतनी जेहन कहाँ से मिल गई ?

आजकल का दूधमुंहा बच्चा भी लड़के-लड़की की बात जानता है। प्यार की बात जानता है और एक तू है कि बस पूरा भोंदू। कुछ भी नहीं जानता। तभी यह दुलरिया व इसकी भाभी तुझे मनमाना नाच नचाती रही हैं।

मैं लगातार सोच रहा था, रम्मी के गुस्से को कैसे ठण्ढा करूं। और वह थी कि बड़बड़ाए जा रही थी, 'छोटी रानी ? अभी शीशे में अपना मुंह नहीं देखा है। ··· माल अभी कच्चा है ···पक जाने पर हरगिज न छोड़ूंगा बच्चे को भी मजा चखाऊंगी कि सारा रसियापन भूल जायगा······।' वह दाँत पीसती जाती। नथूने फूलते जाते।

मैंने रम्मी को कभी भी इतने गुस्से में नहीं देखा था। लीची के पेड़ तले पहुंचने पर मैंने कहा,

'इसे सचमुच फूंकेगी रम्मी ?' मैंने भयभीत स्वर में कहा।

'हां।' वह गुर्राकर बोली।

'क्यों ?'

'क्योंकि मेरे तन पर इस साड़ी के पड़ते ही आग लग जायगी।' और गुस्से में बोली।

'मैंने कहा, 'तो अभी रहने दे। जब पहनेगी तो अपने ही आग लगकर यह जल जाएगी।' मुझे शरारत सूझी।

पहली बार वह मुस्कराई, बोली, 'बुद्धू महाराज। और मेरी देह न जलेगी ? सारे तन में छाले पड़ जायेंगे, साड़ी तो ज्यों-की-त्यों बनी रह जायगी।'

'आग लगने पर भी ?'

हम दोनों मुस्कराए। वह बोली,

'हाँ।'

'फिर यहाँ दियासलाई कहाँ है ?'

समस्या सचमुच गम्भीर हो गई। बिना दियासलाई के साड़ी की होली कैसे हो ?

हम दोनों मुस्करा पड़ें। रम्मी ने फट से मेरा मुंह दोनों हाथ में लेकर चूम लिया। बोली,

'कितना भोला है तू रज्जू।'

तब मैंने कहा, 'तुमने वह कहानी सुनी है रेशमा ?'

'कौन सी रे ?'

'वही जिसमें एक आदमी की नाक में मक्खी घुस गई तो उसने अपना सिर भाड़ में डाल दिया इसलिए कि मक्खी जलकर मर जाय।'

फिर क्या था रम्मी खिलखिलाकर हंस पड़ी। बादल छँट गए उसके सुन्दर मुख पर और सुहानी धूप खिल गई हंसी बनकर।

मैं भी खुश हो गया। होता क्यों नहीं ?

रम्मी की खुशी में ही तो मेरी खुशी थी।

अब मैंने कहा, 'तू सचमुच माँ के लिए उदास थी ?

'नहीं।'

'फिर ?'

'तेरे बुद्धूपन पर।' वह मुस्कराई।

'जानती है मैं तेरे लिए क्या लाया हूं ?'

'क्या ?' हम दोनों मुस्कराए।

'चल घर तो दिखाऊँ।'

हम दोनों जल्दी-जल्दी घर गए। मैंने दुलरिया की दी हुई साड़ी का बण्डल एक कोने में फेंक दिया और अपना सूटकेश खोलकर एक बण्डल रम्मी के हाथ में रख दिया।

उसने बड़े चाव व उत्सुकता के साथ उसे खोला। मारे खुशी के खिल पड़ी थी। गाल पर कटोरे बनते थे, आँखें चमक उठती थीं। मैं भी मारे खुशी के तर हो रहा था।

और जब उसने खोला तो उसमें से निकला क्या ?

एक रेशम की श्वेत प्लेन साड़ी जिसकी किनारी पर फूल कढ़े थे व किनारी के फूल से ही फूलनुमा रेशम की रंगीन चोली, दो-दो चमकते-दमकते खूबसूरत ब्रेसियर।

उसने सबको छाती से लगा लिया व झट से उछलकर बोली,

'वाह रज्जू, खूब।'

## १२

आखिर कजरी तीज आ ही गई। दिन साफ निकला, धूप चमक उठी, खेत लहराने लगे, हरियाली लहलहा उठी। गंगा का पानी चाँद के घोल सा चमक उठा। उत्तर से हवा बहने लगी, जल में लहरें, धान के खेत में लहरें, उड़ते केश में लहरें, रेशमा की साड़ी में लहरें, उसके उड़ते आँचल में लहरें—जहाँ देखो वहीं लहरें बनने व मिटने लगीं।

लगा, जैसे सारा वातावरण सावन की मस्ती में झूम उठा। गाँव के लोगों के चेहरे खिल गए। खेतों में धान व मकई की बाढ़ देखकर। हाँ, दीपन जरूर कहता, 'गंगिया छोड़े तब ना ?'

रम्मी सबेरे-सबेरे बुआ के साथ स्नान कर आई और मेरी लाई हुई साड़ी व ब्लाउज पहनकर तैयार हो गई। आज तो कान में सोने की इयरिंग-

फूलनुमा, हाथ में सोने की चूड़ियाँ, गले में काले धागे में गुंथी नन्हीं सी नेकलेस, आँखों में पतला पर लम्बा कान तक छूता काजल—रम्मी ने गजब ढा दिया।

इतना रूप ? ऊपर से इतनी शालीनता ?

आज कजरी तीज है न ? जाने आज क्या हो ?

आज रम्मी इतनी खुश है कि लगता है आपे में नहीं। सुख तन से छलक-छलक पड़ता है।

मुझसे मिलते ही एक अजीब झेंप व शरम उसके चेहरे पर नाच उठी। बात बहकाने के लिए बोली,

'क्या घूर-घूर के देखता है रज्जू ? मुस्कराई।

"तेरा मुंह।'

'धत्।'

हम दोनों खिलखिलाकर हंस पड़े।

और चल दिए बुआ वाले कमरे में जहाँ लीप पोत कर रम्मी ने तीज की पूजा का प्रबन्ध किया था। वह रोली-मैंदा वगैरह लेकर बैठी 'अल्पना' रचने, इतने में दुलरिया भी धमक पड़ी।

आते ही बोली,

'कहो रानी, सबेरे ही सबेरे चहक रही हो, क्या बात है ?' दुलरिया मुस्कराई।

'पूछ इसी रज्जू से। शहर में जाकर बालेश्वरजी के मंदिर से कमल की कली को फूल बनाना सीख आया है।'

'वाह रज्जू, फिर भोले बाबा पर चढ़ाना नहीं सीखा ?'

और दोनों मारे हंसी के लोटपोट हो गए। हंसी भी ऐसी कि उसकी बाढ़ में तीनों बह चले। इसमें कोई गूढ़ बात जरूर थी जिसे वे दोनों पकड़ पाती, पर मैं नहीं।

फिर भी मैं हंसता रहा, अनबूझे, अनजाने।

दुलरिया ने रम्मी की साड़ी को देखा तो पूछी,

"यह कहाँ से आई रे ? बड़ी अच्छी साड़ी है ?'

'मां ने भेजी है।' रम्मी बोली मुस्कराकर व मेरी ओर भेदभरी दृष्टि से ताककर आँखें फेर ली।

'ले, अब तो जी उदास न होगा।'

'नहीं।'

'और तूने रसिया की साड़ी नहीं पहनी ?'

दुलरिया मुस्कराई। रम्मी भी मुस्कराकर बोली,

'कौन शहरी-रसिया ? उसे तो कल पहनूँगी जब मेले में रसिया से मुलाकात होगी।'

और दोनों अभी से रस में डूब गईं जैसे ताजी गरम जलेबी रस मे डूबती–उतराती है।

मैं सोचने लगा आज सबेरें-सबेरे रम्मी को क्या हो गया ? इतनी चुहुल। इतनी खुशी। जिस साड़ी में वह कल आग लगा रही थी उसी की कल्पना में आज इतना रस ? इतनी आत्म-विभोरता ?

मैं जल गया।

रम्मी कल उसे पहनेगी फिर मेले जायगी। फिर गनेश मिलेगा, फिर उसके हाथ में हाथ डाल मेला घूमेगी, फिर कंधे से कंधा, कमर से कमर, फिर······फिर······फिर······?

मेरा सिर चकराने लगा।

उधर दुलरिया ने नगर-चर्चा आरम्भ की।

'जानती है रम्मी, एक रात को जब सोनिया घर से बाहर गई तो कहीं 'साँप ने सूँघ लिया'।

'सचमुच ?' रम्मी बोली। दोनों मुस्कराईं।

'सुना तो ऐसा ही। फिर महादेव काका जहर उतारने आए।'

'उसका जहर महादेव काका से उतरेगा ?'

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं। यह रम्मी है ?

'महादेव काका मंत्र पढ़कर तिल के छींटे फेंकने लगे।'

पर 'कान लगने' वाला भी तो चाहिए ? गांव के पांच-छह जवानों में धक्कम-धुक्की होने लगी, कौन सोनिया के कान लगे ?'

'हाँ, फिर ?'

'फिर क्या ? दीये के उजाले में कुछ सूझता तो है नहीं । जब सोनिया को लहर आती और वह पीछे या आगे गिरने-गिरने को हो जाती तो झट से ये जवान उसे बांहों में भर के कान में मुंह डाल जहर खींचते ।'

'तब तो उन्हें बड़ा रस मिलता होगा दुलरिया ?' रम्मी बोली ।

'और क्या, जवान सोनिया की देह मसल-मसल के ढेर कर दिये उल्टे कान लगने के बहाने वे उसका गाल चूमते थे ।'

ठहाके की हंसी कमरे में गूंज गई ।

जब महादेव काका मंत्र पढ़ते-पढ़ते थक गए व उकता कर जाने को हुए तो इन जवानों ने रोक लिया; बोले, 'अभी तो इसे लहर आती है काका, जहर पूरा न उतारोगे तो रात भर में मर जायगी ।'

दोनों फिर हंसीं । दुलरिया कहती गई ।

'कहीं से सुन सुनाकर रमनथवा धमक पड़ा । अब वह किसी को कान न लगने दे पर एक आदमी दो कान में कैसे लगेगा इसलिए उसने अपने दोस्त दुर्गाचरण को दूसरा कान लगने को कहा । दोनों बड़ी रात तक सोनिया के कान लगते व जहर उतारते रहे ।'

'और बेचारे महादेव काका फजूल में परेशान होते रहे ।' रम्मी बोली ।

'मुंह पिटाते रहे ।' दुलरिया बोली ।

'और सोनिया देह पिटाती रही ।' रम्मी ने जोड़ा ।

मैंने समझा, कहानी समाप्त हो गई । पर यह क्या ? दुलरिया तो हंस-हँसाकर आगे बढ़ी । बोली,

'बात साँप का काटना झाड़ने से शुरू हुई मगर जाने कहाँ तक पहुंच गई ।'

'अच्छा, फिर क्या हुआ ?' चकित होकर रम्मी बोली ।

'हुआ क्या ? दूसरी रात को रमनथवा सोनिया के घर में घुसा । सोनिया डर गई फिर भी चुप रही । दोनों बड़ी रात तक भंग छानते रहे ।'

'और छक के पीते रहे ।' रम्मी ने जोड़ा ।

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं ।

जब आधी रात ढल गई तो उसकी निगाह सोनिया पर पड़ी । रमनथवा जब उसकी ओर बढ़ा तो सोनिया जल-भुनकर खाक हो गई और चिल्ला पड़ी,

चोर-चोर-चोर ।'

'अच्छा ! फिर ।' मुस्कराती हुई रम्मी बोली,

'गाँव भर के लोग जमा हो गए। वह पिछले दरवाजे से भागा। घर की खानतलाशी होने लगी। पूरा मुआयना हुआ। सेंध खुली कहीं मिली नहीं। चोर आए कैसे ? खपरैल पर चढ़कर आने के निशान नहीं, कोई खपरैल टूटी नहीं। सामान कुछ चोरी गया नहीं। आखिर ये चोर कैसे थे ?'

दोनों मुस्कराईं। दुलरिया कहती गई,

'सब लोग जमा होकर यही कहें। भई, यह चोरी तो कुछ समझ में नहीं आती। न सेंध, न कोई चोरी गया माल। आखिर चोर आए कैसे ? अरे, पीछे की खिड़की खुली छूट गई होगी, छोड़ो भी चोर आए-गए माल तो नहीं गया ?' पर दीपन बोलता है, 'अरे जाने वाला माल हो तब तो जाय ? देखो कहीं चोर कुछ लेने के बदले दे तो नहीं गए हैं ?'

दोनों फिर हंसी में लोटपोट हो गईं।

दुलरिया की रस-चर्चा जारी रही।

पर उसकी चर्चा बताने से पहले मैं अपने गाँव की, एकाध बातों को बता दूँ तो भला।

मेरा गाँव पाण्डे लोगों का है जो 'पाण्डे' न कहकर 'पाँड़े' कहलाते हैं, गाँव का नाम भी पाँड़ेपुर है। कभी किसी छोटे-मोटे राजा ने खुश होकर पाँड़े के किसी पुरखे को दो सौ बीघे जमीन दे दी थी फिर तो क्या, सारी पाँड़े वंशावली 'जमींदार' होने के नाम व गौरव से विभूषित हो गई। जिसे दस 'धुर' भी जमीन नहीं वह भी अकड़कर चलता है, ज़मींदार जो है, आसपास के जवार में और कोई जमींदार नहीं। सभी एक बड़े जमींदार बनाम 'राजा' के काश्तकार हैं, वह गंगा पार रहता है इसलिए इस पार सभी को आजादी व छूट सी रहती है, उसके अस्तित्व का कोई प्रभाव लोगों पर नहीं। तहसीलदार को एक 'ताव' दही व दो रुपये दे देने से बहुत का काम निकल जाता है, लगान माफ तक हो जाता है, 'परती बीजमार' के नाम पर।

वैसे पाँड़ें लोगों के पास काश्तकारी बहुत है इसी राजा की, पर वे काश्तकार कहने से चिढ़ते हैं, नाराज होते हैं। 'जमींदार' कहो, 'राजा-बाबू', 'मालिक' कहो तो खुश हो जाते हैं। 'गउवां' व 'गांवदार' तो सभी हैं।

छोटी जाति के लोगों को 'परजा' बनाकर उनपर नाजायज रोब गांठना, उनकी माल व इस्मत को अपनी बपौती मानना उनका अधिकार है। ऐसे ही 'परजापन' की छत्र छाया में सोनिया व धनिया को जीवन यापन करना पड़ता है, ऐसे ही 'परजापन' में अभी 'मोनिया' को फिट होना है।

तभी इसे निभाने के लिए सोनिया उसे मेरी 'राधा' बनाना चाहती है। जब 'राधा' बनना ही है तो सुयोग्य व सुपात्र की क्यों न बने, बड़े की, जिसकी छाया में गुजर हो जाय। दिन सुख से कट जाय।

पाँड़े लोगों के किसी पुरखा ने अपने भांजे किसी चौबे को अपने गाँव में मारे प्यार व छोहके बसा लिया। तब से चार-छह घर चौबे लोगों का भी गाँव में हो गया। पर पाँड़े-चौबे परिवारों में युग-युग से सर्जित मामा-भांजे का प्रेम चलता है, जिसके आदर्श 'कंस-कृष्ण' थे। बात-बात में पाँड़े टोली व चौबे टोली में खटक जाती है, चाहे वह बात मुंडेर का पानी गिरने की हो या 'झुर' में से एक मूठा 'खर' काटकर झाड़ू बनाने की हो।

नन्हा सा गाँव, कुल मिलाकर पाँच सौ के लगभग प्रानी, पर टोले आधें दर्जन हैं, क्यों न हों, अलग-अलग गुर्गे, अलग-अलग खान-पान, अलग-अलग जातियाँ फिर भिन्न-भिन्न टोले क्यों न हों गाँव की 'मर्जाद' भी तो इससे बढ़ती है।

'पाँड़े टोली' यहाँ की सबसे शक्तिशाली टोली है, जिसके बीच में एक किनारे 'चौबे टोली' है—दांतों के बीच बिचारी जीभ की तरह। वैसे जिन दिनों की कथा मैं कह रहा हूं, उस समय इस जीभ से इतना मीठा रस टपकता था कि सारे दांत मारे मिठास के तर रहते थे कभी जीभ को काटते न थे।

बिचारी जीभ करे भी क्या? जब उसे बत्तीस दाँत के बीच में रहना है, जो बराबर पिसते रहते, बजते रहते, लड़ते रहते हैं। उन्हें 'तर' रखने में ही उसका गुजर है।

ये दोनों मालिकों की टोली थी गौरवमयी, शक्तिशाली, ऐंठनवाली। इनमें 'पाँड़े' असली 'गउवा' थे वलचौवे मंगनी के।

छोटी जातियों में कुम्हार टोली, अहिर टोली, तेली टोली व चमार टोली थी। सबके अपने-अपने अलग-अलग स्नेह सूत्र मालिकों के साथ थे। ऐसे ही

सुख-दुख में बंधे प्यार व दुलार की जिन्दगी सभी जिए जा रहे थे जिसमें अपने-अपने स्वार्थ व रुचि के अनुसार सब रस देते, रस लेते थे।

इधर चौबे लोग 'चिकने' हो रहे थे जो पाँड़े टोली को बहुत खटकता था इसलिए चौबे लोगों का लंहगा, मौका पाते ही बाजार में टाँगने में पाँड़े टोली में कोई हिचकता न था।

मैं पाँड़े-टोली के 'प्रमुख' का लड़का था, दुलरिया पाँड़े-टोली के सबसे वेसी पैसे वाले 'ठीकेदार साहब' की लड़की थी। तभी दुलरिया के मनमाने रस-विज्ञान के प्रयोग तथा मेरा घुस-फुस कर प्यार निभ जाता था। हम अगर चौबे टोली के होते तो जाने अब तक क्या हुआ होता? दीपन व दासा 'रज्जू-दुलरिया' पुराण गढ़ देते जो गाँव-गाँव में 'बाँचा' जाता।

झगरू और मंगरू चौबे दो भाई थे। झगरू ने तो कुछ खेत से, कुछ अनाज से, कुछ ईख से, कुछ 'लेन-देन' से थोड़ा रुपया बटोर लिया है। गंगा दूर नहीं फिर भी निडर होकर उसने ईंट का घर भी बनवा लिया, मिट्टी के 'गिलवे' पर, पक्का सीमेण्ट नहीं। ऊपर से खपरैल दी है। फिर भी गाँव में मिट्टी के घरों के मुकाबले वह पक्का घर कहलाता है। उसने सुन्दर-सुन्दर बैलों की तीन जोड़ी रख ली है, दो गाय और एक भैंस रखे हैं। उम्र यही चालीस-पैंतालीस की होगी। एक ही लड़का है जो कलकत्ते में किसी हाई स्कूल में पढ़ता है और अपने मामा के साथ रहता है जो किसी मारवाड़ी के यहाँ दरवान है। उसकी शादी दस वर्ष की उम्र में ही हो गई। शादी लगती थी तो चौबे क्यों न कर लें, क्या पता बाद को हो-हो, न हो। नदी किनारे का गाँव ठहरा। चौबे को तिलक-दहेज तो कुछ खास न मिला पर बहू पन्द्रह साल की मिल गई परी जैसी सुन्दर 'धप-धप'। इस घटना के हुए भी तीन साल हो गए।

मंगरू भी चार बैल की खेती करता है। उसका छोटा भाई बेचन कलकत्ता पुलिस में है, पैसा अच्छा 'टानता' है, देह भली हृष्ट-पुष्ट है। सजीला जवान है, साल में एक बार अट्ठारह दिन की छुट्टी पर आता है। 'हक-छुट्टी' कभी नहीं लेता। क्या काम?

शादी उसकी भी हो गई दो बरस हुए व बहू घर में बैठी है, पट्ठा-जवान। दीपन कहता है, 'माल' सड़ रहा है।

अच्छा, अब दुलरिया की रस-चर्चा सुनिए वह घबड़ाकर बिगड़कर, मुझे घूर-घूरकर देख रही है।

अल्पना के फूल रचती हुई रम्मी बोली,

'आजकल चौबे-टोली का कोई समाचार नहीं मिलता रे ?'

'वाह, तुझे तो दीन-दुनिया में किसी की कोई खबर ही नहीं रहती। सुना नहीं, झगरू गए थे बनारस अपनी पतोहू की दवा के लिए ?

'अच्छा, तो क्या हुआ ? 'रम्मी ने चकित भाव से पूछा।'

'वहाँ कोई बड़े बैद हैं, 'त्रिवम्बक' शास्त्री। उनको दिखाया तो वे बोले दवा से इसको कोई लाभ नहीं होगा। इसे 'हिस्टीरिया' है, इसके आदमी को बुला दो यह ठीक हो जायगी। 'रति-सुख' के अभाव में इसे यह रोग हो गया है।'

दोनों मुस्कराईं। मैंने कुछ भी न समझा। रम्मी बोली,

'फिर ?'

'बैद ने कुछ पुड़िया शहद के साथ खाने को दे दी और कह दिया पुड़िया के भरोसे कुछ न होगा। करो वही ज़ो मैंने कहा है, इक्कीस दिन में ठीक हो जायगी।'

'पर उसे हुआ क्या था ? मैंने छेड़ा क्योंकि बात मेरी समझ में बिलकुल न आ रही थी।'

दुलरिया व रम्मी दोनों अर्थभरी हंसी हंस पड़ीं। अब दुलरिया ने कहा,

'तू क्या जाने, उसको क्या-क्या रोग होते हैं ? उसकी सांस लम्बी-लम्बी चलती है, छाती बार-बार उठती गिरती है, बढ़ती जाती है, पड़ी-पड़ी छत की धन्नियाँ गिनती है और कभी-कभी छटपटाकर तकिया छाती में दबाकर मसलने लगती है और मसलते-मसलते बेहोश हो ज़ाती है। जब उसकी सास मुंह पर पानी का छींटा देती है, तो फिर होश में आती है और फूट-फूटकर रोने लगती है। बोल रज्जू, अब कुछ समझा ?'

दोनों खिलखिलाकर हंस पड़ीं।

दुलरिया फिर आगे बढ़ी।

'झगरू फिर ले गया पतोहू को ठाकुरबाड़ी में। ठाकुरबाड़ी का दरवान उसका रिश्तेदार था। ठाकुरबाड़ी बंगाल के किसी जमींदार की थी, बड़ी

सी हवेली साथ लगी थी, इतनी बड़ी जगह और पड़ी रहती थी सुनसान। केवल वह बूढ़ा दरवान था जो ठाकुरजी के चरणों में ही सो रहता था।

'फिर' रम्मी बोली।

'झगरू पतोहू को ठाकुरबाड़ी की नन्हीं सी कोठरी से हवेली में ले गया। पतोहू ने सेवा-टहल की सुविधा के लिए गाँव चलने को कहा। मगर झगरू बोला, 'बनारस बार-बार तो न आया जायगा ?' तीन दिन बाद वैद को खबर देनी है। मैं हूँ न, जो कुछ बन पड़ेगा, करूंगा। आपद्‌काल में क्या नहीं करते ?'

'दोनों फिर खिलखिलाकर हंस पड़ीं।'

'फिर क्या किया झगरू ने आपद्‌काल में ?' रम्मी चहकी।

'किया क्या ? दिन भर शहद में दवा घोंट-घोंट पिलाई, रात को मालिश की। पतोहू भली चंगी होकर गांव पर आ गई।' दोनों जोर से हंस पड़ीं। मालिश के कल्पना सुख पर। दुलरिया बोली,

'दीपन कहता है कि तीसरे दिन सवेरे उस बुड्ढे दरवान ने दोनों को वहाँ से मारकर भगा दिया। कहता था इन्होंने हमारी ठाकुरवाड़ी 'भरष्ट' कर दी।'

'बहू क्या कहती है ?' रम्मी ने पूछा।

'वह कहती है कि वैद की पुड़िया तेज थी और बाबूजी ने चाव से सेवा की मैं अच्छी हो गई।'

दोनों ठठाकर हंस पड़ीं। दुलरिया ने जोड़ा।

'जब से बनारस से आई है रात-दिन ससुर की सेवा में रहती है, उनका खाना-कपड़ा, हर चीज संभालती है, सास को छूने तक नहीं देती। सारा गांव कहता है, बहू मिले तो ऐसी मिले।'

'और मंगरू के क्या हाल हैं ?' रम्मी ने छेड़ा जैसे उसका पेट रस-भरी बातों से भरता न हो।

'उसकी भी सुनो। उसकी 'भवह' को भी यही रोग है पर खड़ानन पण्डित भूत-भूत कहकर उसे झाड़ते हैं। यह भूत की उतराई बराबर आधी-रात-पिछली रात को होती है, जब सारा गाँव सो जाता है। कभी-कभी दुर्गा व रमनथवा उनकी चेलागिरी में जाते हैं गो कि वे ले जाना पसन्द नहीं

करते। जहाँ पांच-सात दिन गुजरा नहीं कि मंगरू के घर में भूत का उपद्रव शुरू हो जाता है, आँगन में मेले की वर्षा होने लगती है। कोई-कोई कहता है, 'भूत' नहीं उसे 'जिन' लगता है। दीपन कहता है, 'जिन' भूत से अच्छा होता है, जिसे लगे 'मालामाल' कर देता है, पर रमनथवा कहता है कि औरत को लगने पर भूत तो केवल सताता है मगर 'जिन' उसका सारा रक्त चूस लेता है।' सभी हंस पड़ते हैं।

'फिर क्या हुआ ?' मैने उकताकर पूछा।

दुलरिया आगे बढ़ी।

'एक दिन मंगरू ने अपनी 'भवह' से कहा कि बनारस के 'त्रिबम्बक' शास्त्री तो बड़े तेज़ लगते हैं, झगरू की बहू तीन ही दिन में भली-चंगी होकर आ गई। चलो न तुझे भी दिखा लाऊं। उनकी 'भवह' बोली, 'मुझे वह रोग नहीं है। मुझको तो 'रसिक बाबा' सताते हैं। उनका चोरा बंध जाय तो रोग शान्त हो जाय।'

दोनों मुस्कराईं। दुलरिया आगे बढ़ी,

'झगरू ने कहा, चौरा तो उनका तेरे सोने के कमरे में चुपके-चुपके बंधवा दिया है। कभी-कभी रात को आकर खड़ानन 'पूजा-हवन' वगैरह भी कर जाता है, पर फल कुछ भी नहीं होता। बाबा कहते हैं आम चौरास्ते पर मुझे 'बाजे-गाजे' के साथ बाँधो, 'चुनरी-कराह' चढ़ाओ, तो छोड़ूंगा यूं 'चूल्ही' में बाँधने से क्या होगा ? झगरू बोला, 'पर यह तो इज्जत का सवाल है। यह कैसे होगा, चलो बहू बनारस ही दिखाना ठीक है।'

'फिर ?' रम्मी बोली मारे उत्सुकता के।

'फिर बहू राजी हो गई। दोनों बनारस गए। झगरू ने सारी तरकीब बता दी थी। शास्त्रीजी से दोनों मिले। उसी ठाकुरबाड़ी में ठहरे। वहीं तेल की मालिश तीन रात को हुई और वह भी चंगी होकर आ गई।'

तब तो बड़े अच्छे वैद हैं।' मैंने कहा।

दोनों अर्थभरी हंसी हंसकर रह गईं। दुलरिया ने कहा,

'मंगरू की बहू सोलह आने अच्छी नहीं हुई। हर महीने एक बार बनारस जाने पर जोर करती है पर इतना पैसा कहाँ है इसलिए 'रसिक बाबा' फिर सताने लगे हैं।' दोनों फिर हंस पड़ीं।

१३

उस रस-चर्चा के बाद हम दोनों जब घर से बाहर निकले तो 'पूरवैया' बड़े जोर की बहने लगी थी। मकई के पौधे और बाग में पेड़ों की डालियाँ लहरा रही थीं। 'हर-हर', 'भर-भर', 'सी-सी' का मधुर स्वर निरंतर आ रहा था।

और काले-काले मतवाले बादल झूमते हुए आकाश में चढ़ते चले आ रहे थे।

इस हवा का शीतल झोंका मुंह पर, देह पर पड़ते ही एक निराली ताजगी, एक अजीब मस्ती हमारे तन-मन में छा गई। रेशमा का आँचल हवा में फहरा उठा व बार-बार मेरा मुंह चूमने लगा, सहलाने लगा। उसने भी संभाला नहीं, हटाई नहीं, छोड़ दी उसे छेड़ने को और मुस्करा पड़ी। उसके केश हवा में लहरा उठे। उसने अपने सिर को एक झटका देकर और भी लहरा दिया। मगर साड़ी नीचे से उठकर उड़कर भागने का प्रयत्न करने लगी। रेशमा की सुन्दर सजीली पिण्डलियाँ रह-रहकर बाहर झाँकने लगीं आज उसने उसे भी न संभाला।

क्या वह होश में नहीं थी।

रास्ते में हम दोनों एक शब्द भी न बोले। जाने कौन सा तूफान हमारे तन-मन में चल रहा था। मेरी सारी नसें तन गई थीं, झनझनाती थीं, लगता नाड़ियों से रक्त खौलकर बाहर निकल पड़ेगा। मेरी नस-नस पुकार रही थी,

'रेशमा, रेशमा, शैलजा, शैलजा।'

और वह खोई-खोई सी पास-पास चल रही थी। मुझे लगा जैसे एका-एक उछलकर एक दोपहरी में ही तीन साल बड़ा हो गया और रेशमा वहीं की वहीं है।

हम दोनों अपनी बगिया में आए तब तक घटाओं ने सारे आकाश को घेर लिया और घटाघोप अन्धकार छाने लगा, मंडराने लगा। लीची के पेड़ तले आकर बोली,

'हमलोग अपने झूले पर तो साथ-साथ बैठे ही नहीं।'

मैं मुस्कराया, 'और आज कजरी तीज है।'

'फिर आ छन भर को बैठ लें' रम्मी ने कहा।

और मेरा हाथ पकड़कर झूले पर बैठ गई। आज पहले पहल उसके हाथ पकड़ते ही मुझे ऐसा लगा जैसे स्वप्न की हिमकुमारी ने मेरा हाथ पकड़ा हो। मैंने बैठते हुए कहा,

'पानी तुरंत आने वाला है।'

'तो भींग लेंगे।' वह मुस्कराई, कहती गई,

'कहाँ रोज-रोज भींगने को मिलता है रज्जू, साथ-साथ। घबरा नहीं, इस बार मैं बीमार पड़ूँगी भींगकर, तू नहीं।

'तब तो तुझे 'रसिक बाबा' लगेंगे।'

'धत्' वह बोली व हँस पड़ी।

झूले को वह बड़े-बड़े पेंग देती रही। पास में होने से उसके केश व आँचल लहरा लहरा कर मुझे चूमते रहे। डाली लगातार चरमराने लगी। मुझे ऐसा लगा कि रस्सी टूट जायगी पर रेशमा होश में नहीं लगती थी इसलिए हमने कुछ न कहा। झूलते-झूलते वह बोली,

'आज मेरे प्रान निकल जायेंगे, रज्जू।'

मैं तो डर गया। क्या इसीलिए इतने ज़ोर से झूले को पेंग मारती है कि रस्सी टूट जाय व हम दोनों साथ-साथ मर जायँ?'

अगर घायल होकर रह गये तो?

अगर हाथ-पाँव तोड़कर बैठ गये तो?

मैंने आहिस्ते से पूछा, 'क्यों री?'

'यूँ ही, मेरे भीतर इतनी तड़पन मालूम होती है लगता है जाने क्या कर दूं।'

'आज मेरी भी सारी नसें तन गई हैं रम्मी, जाने क्या बात है, देह में, मन में एक अजीब झनझनाहट मालूम होती है।'

वह सुनकर चमक गई। उसकी आँखें चमक से दूनी हो गईं, गाल व होंठ भी थिरकने लगे। बोली,

'सच ?'

'सच।'

'तब तो तू भी बड़ा होने लगा।'

'हाँ री, तुझसे भी बड़ा।'

'धत्, मुझसे बड़ा तो क्या होगा।'

'यह दुलरिया सारा तन मन झकझोर कर रख देती है' मैंने धीरे से कहा।

'मुझे उसकी बात सोलह आने सही लगती है, यह देह मिट्टी की है, मिट्टी में मिल जायगी। फिर इससे जितना रस देते-लेते बने क्यों न रस दें, रस लें।' वह मुस्कराई।

'तो तू किसे रस देना-लेना चाहती है ?'

हम दोनों मुस्कराए, उत्तर की जरूरत न थी। वही बोली,

'पर जाने मन में कोई बार-बार कहता है यह ठीक नहीं, वह ठीक नहीं।'

'ये तो संस्कार हैं रम्मी, तू भी डिब्रूगढ़ के मिशन स्कूल में या कान्वेण्ट में दो-तीन साल पढ़ आई होती तो ऐसा मन नहीं कहता।'

'तेरा ख्याल क्या है ? दुलरिया की बात सोलह आने सही है ?'

'सही गलत मैं नहीं जानता पर सारी दुनिया, जाने या अनजाने, उसी पर चलती नजर आती है।'

'तुझे इसमें कोई गलती न मालूम हुई ?'

'अभी तक तो मैं पकड़ न पाया।'

'और मैं भी नहीं।'

मुझे भाभी की बात याद जरूर आई। पर मैंने कहा नहीं, जाने क्यों ? मैंने रुककर कहा,

'मुझे तो ऐसा लगता है कि जब जो सही लगे सो करना ठीक। इससे बेसी कोई क्या करेगा। तू देखना, राम व कृष्ण दोनों भगवान थे। राम बेचारे के पास एक ही बीबी सीता—उसे भी रावण उठा ले गया। वे टुक-

टुक ताकते रहे। 'कृष्ण ने वचपन से ही रास रचाया' सैकड़ों रसीली-छवीली गोपियाँ--फिर राज पाने पर जहाँ गए खूवसूरत लड़कियाँ हर लाए। उनके आठ-आठ पटरानियाँ व सोलह हजार रानियाँ हो गईं। अव वोल कौन ठीक था ? यह या वह। सबके ऊपर एक राधा अलग से।'

'तू ठीक कहता है रज्जू, जव जो सही लगे, जो जंचे वही करना ठीक है, क्यों ?' वह मुस्कराई।

'ठीक' मैंने कहा भी नहीं तव तक बांहों में भरके उसने मारे चुम्बन के मेर होंठ दवा लिया, आज उसने इतने जोरों से बांहों में कसा झूले पर ही वह इस प्रकार मेरे होंठ चूमने लगी जैसे इसी अवस्था में हम दोनों के प्राण गल जायेंगे।

ओह, कितना मीठा लगता था उसका चूमना।

जब उसने थोड़ी देर में वंधन ढीले किए तो मैंने एक हाथ उसकी कमर व दूसरा पीठ पर देकर उसे छाती से लगा लिया और उसे चूमने लगा। यूं वेताव होकर मैंने उसे कभी नहीं चूमा था। उसने भी एक बाँह मेरे गले में डाल दूसरे से मेरा सिर सहलाते रही।

मेरा बुरा हाल था, कपोल, ग्रीवा, आँखें चुमने के वाद मैंने उसके अधरपान यूं आरम्भ कर दिया जैसे उसी की राह रम्मी को मैं आत्म-सात् कर लूंगा।

घटा घिर आई, वादल बरसने लगे। पहले बड़ी-बड़ी बूंदें, फिर छहर-छहर। हम दोनों पेड़ के नीचे होने पर भी भींगने लगे, भींग चले। रस में सरावोर, पर एक दूसरे के बंधन से मुक्त नहीं हुए।

वह वोली, 'मेरी जान न मार रज्जू।'

'तू कितनी सुन्दर है रम्मी।'

तेरे आँख कहाँ हैं' वह मुस्कराई।

'खुल तो रही है।' मैं भी मुस्कराया। कुछ देर वाद वह बोली,

'चल अव घर चलें, देर हुई, हम भींग चले।'

'रस में सरावोर' मैंने कहा।

चलते-चलते वह बोली, 'ये मधु के छींटे हैं रज्जू, चाट ले जब तक चाटते वने।' देखिये रम्मी की यह अदा।

'नहीं तो चींटे लग जायेंगे।' वह मेरा कान पकड़ते-पकड़ते रुक गई व मुस्करा दी। हम दोनों घर आये।

# १४

तीज का मेला भी आ ही गया। बुआ, दुलरिया, रम्मी तथा मैं, चार का दल मेले पहुंचा, दोपहरी से कुछ पहले। सुक्खू को भी पीछे से आने के लिए दुलरिया कह आई थी।

मेले के बाहर से ही झुण्ड की झुण्ड लड़कियों के जमात से कजरी की लहरें हवा में तैरती सुनाई देतीं और सारे वातावरण को मधुमय बना देती।

यह मेला पक्की सड़क से एक मील दूर पड़ता है, जहाँ कच्ची सड़क गई है, बहुधा यह कीचड़ व पाँक से भरी रहती है। कल की वर्षा ने इसे और भी गीला व दुरूह कर दिया था पर जिसके मन में मिश्री घुल रही हो, तन जवानी की मस्ती में पुरवा हवा के साथ लहरा रहा हो, उसे यह पांक क्या करेगी ? कीचड़ क्या करेगा ?

दिन साफ था फिर भी बादल मंडराना न छोड़ते थे। मौसम की बात जो ठहरी।

मेले में पहुँचने से पहले छोटे-छोटे त्रिपाल व छतरियों के नीचे साधु-संन्यासी पड़े मिले कीलों की चौकियों पर। सिर पर बड़ा जूड़ा, सारा तन भभूत रमाए, आँखे लाल-लाल, कोई-कोई चार अंगुल चौड़ी एक कोपीन कमर में लपेटे थे नहीं तो बहुत से तो एकदम से दिगम्बर थे। उनमें अनेक जवान थे, एकदम से जवान, गंठा तन, चढ़ी हुई बाँहें, चौड़ी छाती, चिकनी रानें, बड़ी-बड़ी आंखें – जो तन से सुन्दर था जवान था, वही तेजस्वी भी लगता था। उसके सामने पैसों का ढेर काफी पड़ा मिलता। वह सुपात्र देखकर हँस के आशीष भी देता।

इनको देखते ही दुलरिया बोली,

'ले रज्जू तेरे ग्रीस व रोम को जीतने वाले यहाँ बैठे हैं।'

हम तीनों ठहाका मारकर हँस पड़े। बुआ कुछ समझी नहीं। मैंने कहा, 'ये वो नहीं हैं।'

दुलरिया बोली, 'इसमें क्या फरक पड़ता है रे, जो नग्नता की आजादी यहाँ मर्दो ने अपने लिए रख ली वही उधर स्त्रियों ने अपने लिए छीन ली। मर्द टका सा मुँह लेकर रह गए।

लगा, दुलरिया ठीक बोलती है। हम पोखरे के पास आ गये थे। छोटी-छोटी मिठाइयों की, खिलौनों की तथा लड़कियों के लिए 'चोटी-चौखा' की की दुकानें भरी पड़ी थी।

रंगीन साड़ियों, चोलियों, व चाँदी के गहनों से लदी ढेर की ढेर स्त्रियां पोखरे में तीज की कजरी विसर्जन कर रही थी। जलते दीप के साथ उनका जल में तैरना अच्छा लगता था, बहुत अच्छा।

हमलोगों का सारा सामान ढोकर सुक्खु लानेवाला था इसीलिए हमलोगों ने सोचा दोपहरी बाद तीज 'सिरायेंगे'।

पोखरे के पास ही एक मंदिर है, भोले बाबा का मंदिर। उसी के इर्द गिर्द ढेर सी औरतें नजर आई। हमलोगों ने अपना थोड़ा बहुत सामान बुआ को सुपुर्द कर वहीं मिलने के लिए कहा और तीनों निकल पड़े मेला घूमने साथ-साथ।

छोटे से मेले में भीड़ बहुत हो जाती है। वैसे यह मेला अपने साइज के हिसाब से बड़े ढंग से सज के लगता है। इसके केन्द्र में एक चौक बना है, वहाँ से चार दिशाओं की चार सीधी सड़कें व चार कोनों में चार सड़कें, कुल आठ निकलती हैं। इनके अतिरिक्त सारे मेले को आयताकार बाँटती भी कमसे कम आठ-दस सड़कें हैं। दोनों किनारों पर सड़कों के, दुकानों पर भीड़ लग जाती है। सड़क पर चलना दुरूह हो जाता है फिर हर जमात की सारी स्त्रियाँ एक दूसरे का पल्ला या आंचल पकड़ कर चलती हैं इसलिए जमात के बीच से किसी का गुजरना संभव नहीं। किनारेवाली कुचलती व धक्का खाती रहती हैं, पर किनारे रहता कौन है? वे जो अपने को 'सांढ़' मानती हैं, 'बछिया' नहीं। एक का दो देने का जोर रखती है या 'रस दे-रस ले' सिद्धान्त में विश्वास करती हैं।

परदा के देश में परदे को फाड़ फेंक मनमाना घूमने का यह सुअवसर कौन खोए ? जिन्होंने अपने घर के मुख्य दरवाजे के किवाड़ तक महीनों नहीं देखे उनकी मटरगस्ती इस मेले में देखते ही बनती है। वँधुआ छूट पाते ही स्वतंत्रता का मनमाना उपयोग करता है।

गाँव के गंवार बेसी जमा होते हैं इस मेले में पर उसी में 'रमनथवा' टाइप के रसिया-यार भी खूब सैरबाजी करते हैं।

इस मेले में हर चीज की लाइन अलग-अलग बँटी होती है, जैसे मिठाई-वालों की लाइन, नाच तमाशेवालों की लाइन, चर्खी कठघोड़वा, वर्तन, तरकारियाँ, फल, कपड़े, चोटी-बौखा, हरेक की एक पंक्ति है।

दोपहरी होते-होते मेला ठसाठस भर गया औरतों से व धक्का देने वाले मरदों से। बच्चे व बूढ़े तो बचा-बचाकर चलते, अधेड़ घूर-घूरकर ताकते चलते और जवानों की टोली छींटा-कशी करती, हँसती, धक्का देती-लेती चलती।

रसिया जवानों की भी दो टाइप है, एक तो साफ लम्बा कुरता, आधी साफ घुटनों तक धोती, नंगे पाँव या चपोधा जूता, निकली हुई छाती, ऐंठी हुई मूँछ, हाथ में खूब तेल खाया डण्डा, सिर पर लाल अँगोछा जरा तिरछे बँधा या कंधे पर झूलता। कसरत करने के सहज चिन्ह 'कान' पर-टूटे कान। पान खाकर पित्त की दो बूंद सफेद कुरते पर चमकाते।

ये लोग छोटी जाति की जवान लड़कियों को छेड़ते चलते हैं, कुछ न हुआ तो छींटाकशी करने में क्या है ? कोई उनका मुँह पकड़ लेगा ? अगर छींटाकशी की गई लड़की या बहू हँस दी तो उनको मजा आ गया। उसकी वगल से गुजरते हुए एक धक्का देते-लेते चले जायेंगे। ये लोग 'विदेशिया' व 'बटोहिया' टाइप हैं। इनकी पहुँच 'सोनिया-मोनिया' टाइप तक सीमित है।

दूसरा दल है रमनथवा टाइप का। महीन खूबसूरत चमचम चमकती धोती, महीन मलमल का कुरता, कलाई पर चुस्त व बटनदार, हाथ में चाँदी के गोव का नन्हा सा डण्डा, सोने के ( नकली भी ) बटन छाती पर

खुले व बिखरे, बड़ी-बड़ी मूँछे ऐंठे हुए, पान खाए, पान के दाग नहीं तो छींटे कुरता पर लाल-लाल चमकते खूब महीन, जर्दा खाने के निशान स्वरूप काले-श्वेत दाँत, सिगरेट का पैकेट पाकेट में।

इनकी निगाह बड़ी जाति की लड़कियों, बहुओं पर रहती है जो रेशम की साड़ी, 'कसमस' की चोली व सोने का कण्ठा, ककनी पहनकर मेला घूमने आती हैं। ये पहले हिसाब से छेड़ते हैं 'टेस्ट' रूप में। अगर उधर शील संकोच वेसी लगा तो लाभ उठाकर दो-तीन बार छेड़ते, फिर बहकाते व रात को मेले में रह जाने का प्रस्ताव करते हैं। नौटंकी देखते हैं व पिछली रात को रस दे-रस लेकर बिदा होते हैं।

रम्मी को इस प्रकार की छेड़खानियों का ज्ञान है, इसलिए वह बीच में हो ली। एक किनारे मैं उसकी बाँह में बाँह डाले, दूसरी ओर दुलरिया।

दुलरिया ने अपने 'राजा' की भेजी साड़ी पहनी थी, रेशमा ने मेरी दी हुई। जब दुलरिया ने पूछा, 'रम्मी तूने गनेश वाली साड़ी नहीं पहनी ?' तो बोली, 'क्या करती, चाची ने लाकर यह साड़ी दे दी माँ की भेजी। फिर उनके सामने यह साड़ी निकालने की हिम्मत न पड़ी।'

बात खत्म हो गई पर दुलरिया के चेहरे से लगा कि वह समझ रही है, 'जरूर कोई बात है ?'

और भाँपने की पूरी चेष्टा कर रही है।

मैं हाई स्कूल का विद्यार्थी होने के कारण जन-साधारण से भिन्न सा लगता था। रेशमी की ऊँची शालीनता व दुलरिया की कामरूप की शोखी सहज ही बता देती थी कि ये लोग बड़े घर के नहीं बल्कि 'बहुत बड़े' घर के हैं, इसलिए छेड़ने का साहस बड़े से बड़े रसिया को न होता था, साधारण की तो बात ही क्या ?

फिर भी 'टेस्ट' करनेवालों की क्या कमी थी, वे दुलरिया को घिसते निकल जाते। दुलरिया बाद को भले, मुस्करा पड़े उस समय गुस्से से ताकती थी क्योंकि उन्हें इस काबिल नहीं मानती थी कि उस पर ऐसे प्रयोग करें।

फिर दो चोटी, उल्टे पल्ले डालकर साड़ी का आँचल, चुस्त ब्लाउज गले में नन्हीं सी नेकलेस, सोने की चमचम चमकती इयरिंग हाथ में सोने की चूड़ियाँ, पाँव में चप्पल के बदले सैण्डिल, गाँव के लोगों को डरा देने के लिए काफी थे।

फिर बड़ी-बड़ी आँखों में धारदार काजल व हाथों में खूबसूरत लाल-लाल फूलों-सी रची मेंहदी तो और भी गजब ढाती।

हम जिधर से निकल जाते, इस जोड़े को देखनेवाले देखते ही रह जाते। पर देख के करेंगे क्या ? छाती पर साँप लोट गया, लोटने दो।

मगर जब भीड़भाड़ काफी घनी हो गई तो अनजाने भी धक्के आने लगे। धक्के मैं खाता, दुलरिया खाती, बीच में रम्मी औरों के धक्के से तो बचती जाती मगर हमीं दोनों के धक्के से पिसती रहती। दुलरिया का धक्का उसे कैसे लगता सो तो वही जाने पर मुझसे बार-बार कमर व पाँव व बाँहों में धक्का लगने से एक निराली सुखद अनुभूति होती थी, इसीलिए कभी-कभी भीड़ मुझे पसन्द आती गोकि मुझे कुचलना पड़ता, पर इससे क्या ? रम्मी के तन पर तो कुचलकर मर भी जाता, तो स्वर्ग ही मिलता।

हरलोग नाच-रंग वाली लाइन को बड़ी मुश्किल से पार करके चरखी के पास पहुँचे तो जान में जान आई। दुलरिया ने प्रस्ताव किया चरखी पर चढ़ने का। मैं 'घुमरी' चढ़ने से थोड़ा डरता जरूर था रम्मी भी डरती थी, पर यूँ डरने से कहीं काम चलता है ?

चरखीवाला एक-एक हिंडोले को रोकता व चार जन बैठ जाते। उसे छोड़ दूसरी पकड़ता। जब आखिरी हिंडोला उसके हाथ में आया तो दुलरिया आगे बढ़ी। मैं तथा रम्मी एक ओर बैठे, दुलरिया सामने दूसरी ओर बैठी तब तक जाने कहाँ से उछलकर 'रमनथवा' उसकी बगल में जा बैठा।

दुलरिया तमक कर उठी व बोली,

'रामनाथ उतर जा, इसी दम !'

तब तक रमनथवा ने उसकी कलाई पकड़कर जबरदस्ती बैठाते हुए कहा,

'अरे इतना गुस्सा होने से काम चलता है ? दुलरिया तू तो इतना घबराती है जैसे मैं खा जाऊँगा ।'

चरखीवाले को यह बखेड़ा कुछ समझ में न आया, उसने रमनथवा की ओर ताका तो वह झट बोला,

'ठीक है तुम चलाओ ।'

और चरखी चल पड़ी । दुलरिया ने कहा,

'खा तो तू क्या जायगा । तेरे जैसे गँवार को मैं इसी कानी ऊँगली से नचाती हूँ ।'

'नाचने ही तो आया हूँ, नचा न ? देख यह चरखी नाचती है, नचाती है, तू भी नचा । मना कौन करता है ?' वह मुस्कराया ।

दुलरिया मात खा गई अपनी ही बात से ।

मुझे व रम्मी को बहुत बुरी लगी यह जबर्दस्ती की छेड़-छाड़ । मुझसे बोला,

'रज्जू भइया, तुम चिन्ता न करो, मैं तुम सब लोगों को मेला घुमा दूँगा ।'

'सो तो मैं देख रहा हूं ।' मैंने कहा ।

वह कटकर रह गया ।

हिंडोला धीरे-धीरे चक्कर मारने लगा व तेज होने लगा । एक बार एकाएक झन्नाटे के साथ नीचे उतरा तो दुलरिया बोल पड़ी,

'हाय राम ।'

उसकी छाती धक् से हो गई । रम्मी मेरे कन्धे पर लुढ़क गई । रमनथवा ने झट से दुलरिया को सँभाला व एक बाँह उसकी पीठ पारकर कन्धे पर रख दूसरी से उसका हाथ पकड़ अपने कन्धे पर लिटा लिया ।

दुलरिया ने एकाध बार सीधे बैठने का प्रयत्न किया तो भी रमनथवा ने ऐसा करने न दिया । वैसे दुलरिया को इतनी घुमरी आ रही थी, सिर चकरा रहा था कि वह चाहकर भी सीधी बैठ न सकती थी । ऐसा सुयोग ।

रमनथवा की किस्मत बुलन्द थी ।

चरखी चलती रही, ऊपर-नीचे, ऊपर-नीचे, गोल-गोल, गोल-गोल, आवाज बराबर आती रही 'चों-चों, चों-चों' । हमारे हिंडोले ऊपर चढ़ते तो हम एक

दूसरे को जोर से पकड़ लेते, पर उच्चतम विन्दु पर पहुँचकर जिस जोर से वे धक्का खाते दूसरी ओर उछलते व नीचे आते, उससे हम सब की छाती पस्त हो जाती। रम्मी बराबर मेरे कन्धे पर लुढ़कती रही। रमनथवा की देखा-देखी मैंने भी उसे एक बाँह में भरके सहारा दिया, पर वह तो था कि ऐसे मौंकों पर अपनी भुजाओं के पाश कस देता।

जब चरखी का एक दौर समाप्त हुआ तो दुलरिया इतनी पस्त हो चुकी थी कि रमनथवा के कन्धे पर से अपना सिर हटा तक न सकी।

और एक वह था कि मारे खुशी के मस्त हो रहा था, फूला न समाता था। झूमकर बोला,

'अब सोचो मैं न होता तो क्या होता ?'

दुलरिया चुप रही।

रमनथवा ने उत्साह में भरके पूछा,

'एक दौर और ?'

'नहीं'

दुलरिया ने पहले पहल आँखें ऊपर उठाईं। रमनथवा ने सुझाया,

'फिर चलो कहीं मुँह-हाथ धोकर सुस्ता लो तो यह सिर का चक्कर मिट जाय।'

दुलरिया कुछ बेरुखी से बोली,

'देख रमनथवा, आज इस मेले में गनेश आनेवाला है, तू जा, चला जा। कुछ तो मेरी इस्मत का ख्याल कर।'

'शाम को तब तो रहेगी मेले में ?' कह के वह मुस्कराया। दुलरिया बोली,

'नहीं'

'अच्छा फिर मिलेंगे, राम-राम।'

और वह मुस्कराता हुआ भीड़ में खो गया।

हमारी जान में जान आई। मैं इस प्रकार की जबर्दस्ती से बेहद गुस्से में था। रस का तो कहीं नाम भी नहीं सूझा, मुझे। मैं सोच रहा था अपने पिताजी से कह दूँ तो 'रमनथवा' की दवा पल भर में हो जाय। हाँ, उनसे

कहने का काफी साहस मुझमें जरूर चाहिए क्योंकि सारे 'जवार' की सबसे बड़ी पंचायत के सरपंच थे वे, उनका रोब बहुत था। उनके हुक्म से थाने की पुलिस हथकड़ी लेकर हाजिर हो जाती थी व जुर्माना करते तो उन्हें देर न लगती थी। पर यह मामला रेशमा का तो था नहीं। दुलरिया का था और वह अपने हिसाब से चलेगी, अभी तो कल ही रात को कह रही थी कि रमनथवा मिले तो एक रात को मैं 'माल' सौंप दूँ।

और क्या पता ? उसे यह सब अच्छा लगा हो तो।

हमलोग चरखी से उतरकर सीधे पोखरे पर आए जहाँ औरतों की भीड़ और बढ़ गई थी। वहाँ गनेश मिल गया जो हमारा इन्तजार कर रहा था। मुस्कराकर बड़े तपाक व चाव के साथ मिला। दुलरिया से दो-एक बात करके रम्मी से बात करने लगा। वह जवाब 'हाँ, ना' में दिए जा रही थी। फिर रम्मी तथा मैं, बुआ के पास चले गए मंदिर पर। सुक्खू भी गनेश के ही साथ पोखरे पर खड़ा था सामान लेकर।

इस प्रकार तीन-तीन के दो ग्रुप हो गए। गनेश को दुलरिया के साथ बातें करने का मौका देने के लिए हम तीनों अलग से मेला घूमने निकल पड़े। थोड़ी देर तक अलग-अलग घूमते रहे, इतने में गनेश दुलरिया के साथ मिल गया और अब फिर हम साथ-साथ हो गए।

साथ ही पोखरे पर आकर हमने कजरी को विसर्जित किया पोखरे में। और चल पड़े मेले में।

बुआ यह कहकर मंदिर पर चली गईं कि मैं व रम्मी तुरंत आ जायँ, पोखरे पर। बरसात के दिनों में देर करना ठीक नहीं। पानी कभी भी बरस सकता है, फिर अंधकूप रास्ता।

मगर इस गनेश के घूमने का तो कोई हिसाब ही न था, कोई अन्त ही न था। बार-बार उसी नाच रंग वाले, नौटंकी व सरकस वाले रास्ते पर घूमता। वहाँ भीड़ बहुत होती थी। हम चाहे जितना भी बचाएँ, धक्का खा हा जाते थे। गनेश, दुलरिया व रम्मी के बीच में चलता था इसलिए वह चाहे जिधर से भी धक्के खाए, मजे ही मजे थे।

बेचारी रम्मी की शामत थी कि एक ओर मैं दूसरी ओर गनेश, मैं उसे जितना बचाने की कोशिश करता, वह धक्के खाकर गनेश पर गिर ही जाती, वह मुस्करा देता, रम्मी लजा जाती। एकाध बार उसने रम्मी की बाँह में बांह डालकर चलने की चेष्टा की पर उसने हाथ खींच लिया। एकाध बार कंधे पर हाथ रखा, सो भी रम्मी ने हटा दिया।

नौटंकी के कैम्प के दरवाजे पर एक मचान पर एक आदमी चूने व कालिख से मुँह पोते साहबी लिबास में खड़ा था। एक जवान औरत भी सस्ती रंगीन साड़ी पहने उसके साथ खड़ी थीं। दोनों नाचते थे। नाचते तो क्या कूल्हे मटकाते थे, फिर वह आदमी चिल्लाकर कहता था,

'आइये, ग्राइये, 'इन्दर-सभा' के मजे लीजिए।'

और उस औरत के उठे हुए उरोजों पर हाथ फेरकर जनता को लुटा रहा था जैसे श्री सत्यनारायण बाबा का प्रसाद बाँटता हो।

गाँव-देहात के लोग इस खुले अश्लील रस-दान को देखकर निहाल हो जाते, आँखें तृप्त हो जातीं। बहुत से टिकट खरीदकर अन्दर भी जाते।

गनेश यहाँ आकर बहुत बार खड़ा हुआ। रम्मी ने बार-बार वहाँ से चलने का संकेत किया पर वह हटता न था जब तक दुलरिया उसे घूर के न देखती थी। दो-एक बार पूछा भी उसने,

'चलोगे तुम लोग भीतर।'

दुलरिया बोली, 'नहीं।'

'तुमसे कौन पूछता है? रम्मी को बोलने दे।' रम्मी भी धीरे से कहती, 'नहीं।'

'फिर नहीं चलेंगे।' वह मुस्कराकर कहता।

अब हम सभी जलपान करने चले। मुझे उसने पैसा न देने दिया। बोला,

'तुम सभी हमसे छोटे हो, पैसा मैं दूँगा।'

फिर 'साली' के नाते रम्मी से मजाक करने लगा, जिसका कोई खास जवाब रम्मी ने नहीं दिया। खाना खाते समय उसने पहले तो दुलरिया के

मुंह में अपने हाथ से मिठाई डाली फिर रम्मी की ओर वढ़ा। रम्मी ने मुंह फेर लिया। अव वह लगभग उसे पकड़कर मुँह में ठूँसने जा रहा था कि दुलरिया ने घूर के ताका और वह रुक गया।

जरा-सा मौका पाते ही रम्मी ने कहा,

'अव यहाँ से भाग चल रज्जू, मैं एक पल मेले में न रहूँगी।'

'और दुलरिया ?'

'वह तो अपने दूल्हे के साथ है, लुक्खू है, तू चल चाची के पास।

मैंने वुआ के पास जाने का हठ किया। गनेश ने बहुत रोका व जाते जाते भी आधा घन्टा लगा दिया मेले में दुलरिया व रम्मी की फोटो लेने में। फोटो लेने के वहाने उसने रम्मी के आँचल ठीक किए, मुँह व ठुड्ढी पकड़कर पोज ठीक किया, कन्धों की उठान ठीक की, गोया एक न एक बहाने उसने रम्मी का तन कमर से ऊपर कई वार, कई जगह स्पर्श किया। तव जाके कहीं फोटो ली गई।

रम्मी तथा मैं एक प्रकार से भाग कर बुआ के पास आए। दुलरिया मन ही मन नाराज हुई। इस प्रकार छोड़ने पर हल्का सा मुँह फुला ली।

जब मैंने कहा क्यों न उसे भी ले लें तो रम्मी वोली, 'तू नहीं जानता रज्जू, दुलरिया रात को मेले में रहेगी, गनेश के साथ।'

'सचमुच ?' आश्चर्य में मैं आ गया।

'हाँ, हमसे वह कहती थी मालधनी का माल चाहे जहाँ ले ले, घर में या मेले में।'

'और कुछ कहती थी ?'

'हाँ' वही नौटंकी दोनों रात भर देखेंगे जहां वह चूना–कालिख वाला आदमी············।

'परसाद' बाँट रहा था।' मैंने ज़ोड़ा। हम दोनों घंटे-डेढ़ घंटे बाद पहली बार मुस्कराए। मैंने कहा, 'ज़हाँ तक मैं सोचता हूँ, रमनथवा भी रात को यहीं रहेगा।'

'और दुलरिया को खोजेगा' कहकर रम्मी मुस्कराई।

स्वीकृतिसूचक हँसी मैं भी हंसा अब वह बोली,

'एक साध तो रह ही गई रे!'

'क्या ?'

'केवल तेरे साथ मेला घूमने की।'

'फिर चल, थोड़ी देर बाद बुआ के पास चलेंगे।'

'और अगर गनेशवा फिर मिला तो ?'

तुझे डर लगता है उससे ?'

'हाँ रे ? वह पूरा लम्पट है, आज उसने मेरा सारा तन छूकर, घिसकर छोड़ दिया।' मुझे शरारत सूझी। पूछा,

'तो रस तो खूब मिला होगा ?'

आँखें अंगारे सी लाल करके बोली,

'मैंने जब मोनिया को लेकर तुझे कहा था तो कैसा लगा था, मिर्च सा ? खबरदार जो कभी ऐसी बात मुँह से निकाली।'

बाप रे बाप। मैं डर गया।

इसी समय दो दस-दस साल के लड़के बड़ी सुरीली व तेज आवाज में गीतें गाते मिले जो दो-दो पैसे की गीत की किताबें बेच रहे थे। हम दोनों जरा ठिठककर उनका गीत सुनने लगे जो यूँ था :—

चढ़लि जवनिया, बैरन भइली छतिया हो,
के मोरे हरिहैं कलेश रे बिदेसिया ?

अमवाँ मोजरि गइले, लगले टिकोरवा से,
दिन पर दिन पियराय रे बिदेसिया।

एक दिन भइहैं रामा जुलुम की अँधिया से,
डार-पात जइहैं भहराई रे बिदेसिया !

हमारी आँखें मिलीं, हम मुस्कराए। रम्मी की पलकें नत हो गईं। वहाँ से चलते-चलते मैंने कहा,

'अच्छा चल आइसक्रीम खायें' और फिर सुहानी धूप सी हँसी उसके चेहरे पर खिल गई। एक नुक्कड़ पर पोखरे से दूर एक आइसक्रीम वाला

'बक्सा' लिए खड़ा था वहाँ जाकर हमलोग आइसक्रीम लिए सो भी 'लकड़ी-वाला' लकड़ी के चारों ओर लिपटा।

दोनों गुलाबी रंग के उस आइसक्रीम को खाने लगे, आँखें व कपोल हमारे मारे खुशी के चमक उठे। कितना मजा आ रहा था। रस कभी-कभी लार सा टपक पड़ता व उसकी साड़ी या ब्लाउज़ पर पड़ जाता, मेरी कमीज पर पड़ जाता।

आगे बढ़े तो फोटोवाले की दुकान सामने पड़ी, मैंने कहा, 'फोटो खिचाएगी मेरे साथ ?'

'क्यों नहीं। मगर वह भी मेरी साड़ी गनेश की तरह ठीक करेगा ?" वह मुस्कराई।

मैंने कहा, 'शायद नहीं। करेगा तो हम फोटो नहीं खिचायेंगे।'

वह फोटोवाला अच्छा था, अधेड़ उम्र का। उसने हमें मनमाना बैठने दिया, दूर से ही पोज हमारा कहके ठीक किया और पाँच मिनट में फोटो दे दी। इसलिए खुश होकर हमने एक और फोटो खिचवाई जिसमें हम दोनों एक दूसरे की बाँह में बाँह डाले थे।

वह फोटो आजतक मेरे पास दर्द बोने के लिए पड़ी है।

जब यह समाप्त हुआ तो शीशे में बड़ी-बड़ी तस्वीरें दिखानेवाले के पास गए। वह दो-दो पैसे में दिखाता था।

वैसे नौटंकी लाइन में बड़े-बड़े भी ऐसे शीशेंवाले थे पर गनेश से बचने के लिए हम उधर नहीं गए व भीड़ से भी तो बचना था।

दो पैसे में आगरे का ताज देखा, दिल्ली का कुतुब देखा, बम्बई का गेट वे आफ इण्डिया देखा, दक्षिण के मंदिर देखे, भुवनेश्वर का टेम्पुल देखा——जाने क्या-क्या देख डाला।

मैंने पूछा, 'तूने रम्मी ग्रीक परियों को इनमें देखा ?'

'नहीं तो ? कहाँ दिखाया था वो?' वह अकचका कर बोली। मैंने कहा, 'मैंने तो देखा।'

'तो मैं फिर से देखूँगी' कहकर वह लपकी फिर देखने। मगर मैंने उसके सिर पर चपत जड़ दी व कहा,

'वे परियाँ केवल मुझे दिखाई देंगी रे, तुझे नहीं।'

'क्यों ?' उसने पूछा।

'क्योंकि एक परी मेरे साथ है।'

और मीठी मुस्कान उसके चेहरे पर बिखर गई।

अब हम एक जादूवाले के कैम्प में गए। वहाँ एक जादूगर हवा में से मिठाइयाँ लेकर सबको बाँट रहा था, जाने कैसे। फिर उसने एक खूबसूरत लड़की को हमारे सामने एक सन्दूक में बन्द किया और सन्दूक को बीच से आरे से चीर दिया दो टूक। रम्मी तथा मैं दोनों स्तब्ध रह गए।

बेचारी मर के दो टूक हो गई।

सन्दूक के दोनों भाग फिर जोड़ दिये गए व खोलने पर वह लड़की हँसती हुई बक्स से निकल आई व हम सबको सलाम की।

हम खुश होकर चल दिए।

अब 'चोटी-वउँरवा' की दुकान पर जाकर उसके लिए कुछ चोटियाँ लीं, चूड़ीवाले के यहाँ से चूड़ियाँ ले दीं। वह बोली,

'मुझे यहीं पहन लेने दे रज्जू, नहीं तो घर पर सारी की सारी टूट जायँगी।'

मैंने कान में कहा, 'क्या चूड़ीवाले से कलाई मलवाने का मन है ? चल मैं घर पर पहना दूँगा।'

वह मारे खुशी के फूल उठी। ठीक, तू ही पहनाना फिर।

एक जगह पर बन्दर का नाच हो रहा था जिसमें बन्दर गुस्से में आकर बन्दरिया को डण्डे मारता था फिर उसके पाँव पकड़कर मनाता था और मान जाने पर बन्दर के गले की रस्सी बन्दरिया पकड़कर उसे नचाती थी।

यह मनाने व नचाने का दृश्य बड़ा मोहक था। रम्मी हँसते-हँसते लोट-लोट गयी।

जब हम दोनों वहाँ से हटने लगे तो देखा सोनिया-मोनिया भी दोनों बहन वहाँ खड़ी थीं बन्दर का नाच देखने। हमें देख मुस्कराती हुई वे दोनों हमारे पास आईं।

सोनिया बोली, 'दुलारो बहन को अलग कर दिया भैया वे अकेलें नौटंकी की ओर मिली थीं।'

रम्मी बोली, 'अकेले तो न होगी।'

सोनिया मुस्कराई, बोली, 'दूल्हे के साथ थी' फिर रुककर बोली, 'ठीक ही है, अपनी-अपनी जोड़ी, अपने-अपने साथ।'

रम्मी बोली, 'रमनथवा भी मेले में आया है।'

सोनिया झेंप गई, बात बदलकर बोली,

'भइया अपनी राधा को साथ न लोगे ?'

'राधा तो मेरे साथ है ही।'

इसपर मोनिया व रम्मी दोनों झेप गईं। मैं व सोनिया मुस्करा पड़े। मैंने बात बदलने के लिए पूछा, 'अब तेरा पाँव कैसा है मोनिया, दिखा तो।' उसने पाँव दिखाया बढ़ाकर, लम्बा कुदाली से कटने का निशान इस पार से उस पार तक था। सोनिया बोली, 'रज्जू भइया के प्यार की पहली निशानी है, जो कभी न मिटेगी इस जनम में।'

यह व्यंग मुझे अखरा। मैंने कहा, 'चल तुम दोनों को चूड़ी लें दूँ।'

सोनिया खुश हो गई। मोनिया और भी लाज से गड़ गई। चूड़ी की दुकान पर गए। चूड़ीवाले ने उन दोनों को चूड़ी पहनाई उनके पसन्द की। मैंने पैसे दिए।

गांव के नियमानुसार दोनों ने हमारे व रेशमा के पाँव छू धूल आँखों में चढ़ाए। मैंने कहा,

'अब तो खुश हो गई न ?'

सोनिया बोली, 'अपनी राधा से पूछो, मैं नाराज तुमसे कब थी।'

दोनों मुस्कराती हुई चली गईं। उनके जाते ही मैंने रम्मी से पूछा,

'क्यों रम्मी, जल तो न गई ?'

वह मुस्कराकर बोली, 'नहीं रे, इतनी पागल हूँ।'

रुककर बोली, 'तूने उनके सामने मुझे राधा क्यों कहा ?'

'अरी चल भी, कभी सारी दुनियाँ के सामने कहूँगा।'

'बेहया कहीं का।' वह मुस्करा पड़ी। ......

"यहाँ तो चूड़ीहारिन पहनाती है, कुछ चूड़ियाँ पहन ले ना ?'

"चल पहन लूँ ।'

चूड़ीहारिन नाजुक चूड़ियों को रम्मी की कलाई पर चढ़ाती जाती थी और रसीले मजाक करती जाती थी, रम्मी मारे खुशी के रस में सराबोर हो रही थी ।

एकाध छींटे मुझपर भी पड़ जाते थे ।

चूड़ीहारिन के मजाक को न कहूँ सो ही भला ।

अब रम्मी ने मेरे लिए एक 'माउथ-आर्गन' खरीद दिया व मैंने उसको चिढ़ाने के लिए रबर की गेंद ।

चलते-चलते हमने थोड़ी सी मिठाइयाँ खरीदीं व बुआ के पास आ गए जो हमारा इन्तजार करते-करते उकता रही थीं और गुस्सा हो रही थीं ।

ये मिठाइयाँ खरीदने में भी मजा आ गया । हम फल की पट्टी से गुजर रहे थे मिठाई पट्टी में जानें के लिए । दोनों ओर फल टोकरियों में तथा लकड़ी के रैक में सजे थे । गुजरते हुए रम्मी ने पूछा बड़े-बड़े आम देखकर,

'क्यों रज्जू, फज़ली आम लेगा ?' मुस्कराई ।

'नहीं रे'

'लँगड़े लेगा ?'

'उहुँऽ ?'

'तो क्या लेगा ?'

'मुझे तो अमिया चाहिए सो भी कच्ची ।'

हम दोनों हँसे वह बोली, 'जिन्दगी भर कच्ची थोड़े रहेगी अमिया रज्जू, फिर कच्ची तो खट्टी होती है ।'

'अगर आदत ही खट्टी की पड़ जाय तो ।'

इतने में हम बेल के सामने से गुजरने लगे । वह बोली, 'बेल लेगा ?'

'वह तो गनेश के लिए छोड़ दिया है' हम दोनों मुस्करा पड़े । लीची के सामने आकर बोली, 'लीची लेगा ?'

'वह तो घर में ही है ।'

'तो क्या लेगा ?'

ओह, रम्मी कितनी शैतान हो गई है ।

मिठाई पट्टी में आकर उसने संतरों की साइज के लड्डू देखे मोतीचूर के, बोली,

'मोतीचूर के लड्डू लेगा ?'

मैंने कहा, 'हाँ' ।

'वे तेरे हाथ में न आयेंगे' हँसी ।

'लेकर देखने में क्या है ?'

हमने कुछ बर्फियाँ, कुछ मोतीचूर के लड्डू व कुछ पेड़े लिए व चल पड़े बुआ के पास ।

बुआ ने पूछा, 'तुम दोनों ने कुछ खाया-पिया ?'

रम्मी झट से बोली, 'नहीं, कहाँ ?'

वह गनेश के साथ मिठाई खाने की बात बुआ को नहीं बताना चाहती थी ।

'तो तुम दोनों बैठो मैं लाती हूँ ।'

'मैं लेकर आया हूँ बुआ ।' मैंने कहा ।

'तो फिर तुम दोनों खाओ मैं पानी लाऊँ' और बुआ झोले से लोटा लेकर चल पड़ीं कुएँ की ओर । मैंने कहा,

'बुआ तू नहीं खायगी ?'

'नहीं रे, तुम दोनों खाओ ।'

बुआ चली गई । हम दो रह गए 'कनैल' की छाया में मंदिर के पीछे । इतने हो-हल्ला, शोर-गुल के बीच इस एकान्त में साथ-साथ एक दूसरे को पाकर हम दोनों बेहद प्रसन्न हुए । हमारी आँखें चमक उठीं ।

रम्मी बोली मुस्कराकर,

'देख रज्जू, इस समय तेरे साथ यहाँ मिठाई खाने की बात इतनी अच्छी लगती है कि लगता है यह रहेगा नहीं ।'

'क्या रे ?'

'कुछ भी नहीं । ले मिठाई ।'

और उसने बर्फी का एक टुकड़ा मेरे मुँह में खिलाया । मैंने आधा काटा शेष उसने अपने मुँह में डाल दिया ।

पानी बिना सूखी बर्फी रम्मी को गले अटकने लगी। मुझे मजा आ गया। मैंने उसे उस नाई की कथा सुनाई जो गर्मियों में किसी मालिक के घर सत्तू खाने बैठा, रास्ते का थका-मारा, भूखा, नाई 'सत्तू' की बड़ी-बड़ी गोलियाँ बनाकर गले में फेंक-फेंक निगलने लगा। एक अटक गई। नाई ने लोटे का सारा पानी पी डाला पर गोली न तो नीचे गई पेट में, न बाहर।

रम्मी बोली, 'फिर ?'

'फिर क्या ? उसका मालिक उठा व एक मुक्का दिया नाई की गर्दन पर वह गोली झट से बाहर आ गई।'

रम्मी मारे हँसी के लोट-लोट गई। बोली, 'तो तू दे दे मेरी गर्दन पर मुक्का पर मैं बरफी बाहर नहीं, भीतर उतारना चाहती हूँ।'

हम दोनों फिर हँसें। इतने में बुआ आ गई जल लेकर। उसने हँसते-हँसते पिया तो पानी गले में सरक गया। बुआ बोलीं,

'जल्दी कर। घर में हमारी चर्चा हो रही है तभी यह पानी सरका।'

मैं हँस पड़ा। रम्मी का जूठा जल पिया तो बुआ ने घूर के ताका।

अब हम तीनों घर की ओर चल पड़े। रास्ते भर मैं नया 'माउथ-आर्गन' रह रहके बजाता आया। जब भी अचानक रम्मी के कान के पास बजा देता वह चिहुँक पड़ती व खिलखिलाकर हँस पड़ती।

मेला पीछे छूट गया। हमारी जिन्दगी की खुशियों का मेला।

तब से मैं लगातार चल रहा हूँ और जितना ही चलता हूँ मेले से दूर होता जा रहा हूँ। वह मेला, जिसमें रम्मी के साथ आइसक्रीम खाई थी, बर्फियाँ खाई थीं, बन्दर-बन्दरिया का नाच देखा था, फोटो खिचवाई थी व माउथ-आर्गन ली थी।

न अब आयगी वह कजरी तीज।

न वह मेला।

न रम्मी, न मैं।

एक मधुर-स्मृति, एक दर्दीली याद शेष हैं, केवल मधु के छींटे।

जो कभी मिटते नहीं।

और रह रह के वह असम्बद्ध माउथ-आगन की आवाज जो कान में गूँज-गूँज जाती है !

# १५

मेला आया, मेला गया भी।

कजरी तीज आई जीवन की अनन्त खुशियाँ लिए। एक सुवास मीठी-मीठी जीवन के वातावरण में घोल गई। और वह चली गई एक मधुर सूना-पन छोड़कर जिसकी याद तक दर्दीली बनकर रह गई।

गाँव से आए एक सप्ताह हो गए मेले के बाद। सोचता हूँ परसों शनिवार है, गाँव जाऊँगा रम्मी हमारे पथ में आँखें बिछाए बैठी होगी। हम दोनों, खूब घुल-मिलकर बातें करेंगे। जी करके हँसेंगे, हँसायेंगे, छेड़ेंगे ·······क्या नहीं करेंगे।

लाइब्रेरी से चुन-चुनकर विद्यापति के, बिहारी के, मतिराम के, देव के पद कापी में नोट किये हैं रम्मी को सुनाने के लिए। उसे यह भी बताना है कि संसार का आठवाँ आश्चर्य कोई 'मोसोलियम' यानी राजा-रानी की समाधि है, जो भाई-बहन थे व इतना प्यार करते थे एक दूसरे को कि व्याह कर लिए।

रम्मी को यह बताना है, महात्मा बुद्ध के पूर्वजों में से किसी ने पाँच बेटे पाँच बेटी को घर से निकाल दिया वन में। ये राजकुमार–राजकुमारी वनों में विचरते-विचरते फले-फूले, बड़े हुए।

आर्य-रक्त की रक्षा तथा आपसी प्यार के कारण हरेक ने एक-एक बहन से शादी कर ली। उनके इस काम की पवित्रता में 'शक' हो गया पंडितों को और वे 'शाक्य-वंश' कहलाए।

इसी प्रकार की कितनी ही बेसिर-पैर की बातें अलूल जलूल मन में घूम रही थीं और मैं शाम को क्लास से निकलकर आ रहा था कि गनेश मेरे पास आकर बोला,

'रज्जू, तुझे दुलरिया ने बुलाया है' मैंने अकचकाकर पूछा, 'कहाँ ?'

'वह मेरे घर आ गई, तीन दिन हुए।'

'अच्छा' चकित होकर मैंने पूछा।

'अभी चलेगा ?' गनेश बोला,

'हाँ, ये किताबें तो रख लूं।'

हास्टल में पुस्तकें रखकर मैं गनेश के साथ उसके घर गया। रास्ते में उसने बताया किस प्रकार उसने मजे किए उस रात को मेले के कैम्प में। बोला,

'हम व दुलरिया रात भर नौटंकी देखे व पिछली रात को लौटकर तम्बू में आए तो सुक्खू हमारी राह देख रहा था। उसे तम्बू से बाहर कर हम दोनों.........।'

हम दोनों हंस पड़े। वह बोला,

'यार तुम तो मेले से यूं भागे जैसे गधे के सिर से सींग।'

'सींग थे इसीलिए भाग गए न ? गधे के साथ रहने से लाभ ?'

गनेश कट गया। बोला,

'तुम दोनों भी रात को मेले में रहते तो मजा आ जाता।'

'हाँ' मैंने चुपचाप कहा।

'रम्मी भी तो तैयार हो गई है।' मैं कुछ न बोला। वह कहता गया,

'तूने जरा दरस-परस का मौका तक न दिया, ले भागा घर।'

मैं क्या उत्तर देता ऐसी शिकायतों का ? छन भर मे हम उसके घर पहुंचे। दुलरिया बड़े प्यार से मिली। यहाँ तो पूरी बहू बनी बैठी थी, सिर पर आँचल दिए थी।

'बोल रज्जू, ठीक तो है ?'

'हाँ रे' मैंने कहा।

'गाँव कब जायगा ?'

'शनिवार को।'

'मुझसे मिल के जाना।'

'अच्छा।'

उसने गनेश को तथा मुझे जलपान कराया, कुछ मिठाइयाँ, कुछ नमकीन। फिर आम की कटी हुई फाँकियाँ।

रम्मी की याद दिल में तड़प कर रह गई।

जलपान समाप्त होने पर गनेश ने धोती कुरता बदलकर स्पोर्टिंग शर्ट व हाफ पैंट पहन ली व बोला,

'अच्छा रज्जू, मैं तो चला, आज मिशन स्कूल की टीम से मैच है। तुम दोनों बातें करो जी भर के भला।'

मैंने कहा, 'ठीक।'

जाते-जाते वह व दुलरिया दोनों मुस्कराये। वह बोला, 'देख रज्जू, मेरे माल में तू हाथ न लगाना, समझे ? वैसे 'दरस-परस' की छूट है।' हम तीनों मुस्करा पड़े। दुलरिया बोली,

'छि: छि: भाई-बहन के बीच कैसी बात करते हो।'

'भाई-बहन। बोल यह तेरी....'

हम सभी मुस्करा पड़े। गनेश चला गया। अब दुलरिया ने प्यार से मेरा एक हाथ पकड़ एक सोफे पर बिठा लिया। वह भी उसी पर बैठ गई। आँचल उसने सिर से नीचे खिसका दिया।

मैंने पूछा, 'तू कब आई यहाँ ?'

'रविवार को।'

'बड़ी जल्दी रे ?' चकित होकर मैंने कहा। वह मुस्कराई। बोली, 'तुमसे कहा नहीं था, कजरी तीज के बाद तीन-चार दिन के भीतर चली जाऊँगी। गनेश बाबूजी से लिखवाकर दिन भेज झट से जाकर ले आया।'

'तुझे कल न पड़ी, गनेश बिना ?'

हम दोनों मुस्कराए। वह बोली,

'क्या करती ? तुझे रम्मी से ही फुरसत न थी।' दुलरिया बड़ी शरारती है। मैंने पूछा,

'मेले की रात तू घर न लौटी ?'

'वाह क्यों लौटती, मालधनी मिल गया तो माल सौंप दी। सड़ाने से लाभ ?' वह मुस्कराई।

'क्या किया उस रात को ?' मैंने जिज्ञासा की।

'रात भर तो नौटंकी देखा किए अमर सिंह। जब पिछली रात कैम्प में लौटे तो सुक्खू को बाहर भगाकर हम दोनों सो गए।'

'रमनथवा से फिर भेंट हुई ?' मैंने पूछा।

'क्या बताऊँ उसकी बात। कैम्प में सबेरे-सबेरे उठकर गनेश जब बाहर 'जंगल' गया और सुक्खू भी कहीं चल गया था तो जाने कहाँ से रमनथवा धमक पड़ा।'

'फिर ?' मैंने आश्चर्य से पूछा।

'मैं तो एकदम से डर गई। दिन भर की थकी थी फिर रात भर जगी थी। देह चुर-चुर हो रही थी और वह आकर हाँथ-पांव पड़ने लगा।' वह मुस्कराई।

'किसलिए ?' मैंने पूछा।

दुलरिया मुस्कराई। बोली,

'किसलिए बताऊँ तुझे ?'

मैं भी उसके साथ मुस्कराता रहा। फिर बोला,

'चर्खी पर तो वह खूब पहुँचा था।'

'हाँ रे, बड़ा ढीठ है।'

'तुझे बहुत बुरा लगा ?' मैंने पूछा

'पहले-पहल, बाद को नहीं।' दुलरिया बोली।

'तो उसे भगा क्यों दी ?'

'गनेश भी तो आनेवाला था।'

'तेरा रूख देखकर ही वह रात भर टोह में था और मौका पाकर पहुँच गया सबेरे-सबेरे।'

'क्या पता। हो भी सकता है।'

दुलरिया मुस्कराई। मैं भी। फिर बोली,

'सोनिया कहती थी तूने मोनिया को चूड़ी पहनाई ?' वह हंसी।

'पहनाई तो दोनों को ? उसने अपना नहीं कहा ?'

'नहीं तो, कहती थी तू 'मोनिया को .... ... .....।'

'अपनी राधा बनाया है ? यही न' मैं मुस्कराया।

'हाँ।'

'सोनिया बड़ी पाजी है।'

'पर है बड़ी काम की।'

देर हो गई थी। अँधेरा हो चला था। मैंने कहा, 'अच्छा, अब चलूं।'

'कभी कभी आते रहना रज्जू, मन लगा रहेगा।' उठते-उठते मैंने पूछा, गाँव का कोई नया समाचार?'

'अरे हां तुझे तो बताना ही भूल गई।'

'क्या रे?' चकित होकर मैंने जिज्ञासा की।

'शनिवार को रम्मी के गांव से आदमी आया था उसे लिवा ले गया। जाने से पहले तेरे लिए बहुत रोती थी।'

'रम्मी चली गई?' भर्राई आवाज में आँखें फटी-फटी सी लेकर मैंने कहा और उसके सोफे पर धम्म से बैठ गया। दुलरिया भी जो विदा देने के लिए खड़ी थी मेरे बगल में बैठकर मेरा सिर संभालने लगी। बोली,

'रज्जू, उसका बाप ओवरसीयर से एस० डी० ओ० हो गया। रेलवे में अफसर। वह अब बहुत बड़ा आदमी हो गया। रेशमा उसी के पास अब रहेगी पढ़ेगी-लिखेगी, तुझे खुश होना चाहिए, तू रोता है?'

मुझे तो लगा जैसे सहस्र बिच्छुओं ने एक साथ ही डस लिया। कुछ देर चुप रहा। फिर नयनों से टप-टप आंसू टपकने लगे।

मैं सिर को थामे था दोनों हाथों में सो दुलरिया ने अपनी गोद में थाम लिया व सहलाने लगी। मेरे नयन अब बरसने लगे। मैं सिसक-सिसक कर रोने लगा फिर फूट-फूट कर।

दुलरिया की गोद में अपना सिर गाड़कर जाने मैं कब तक रोता रहा, वह कब तक मेरी पीठ सहलाती रही।

मुझे कुछ न सूझता। मैं क्या कहूँ? क्या करूँ? लगता, धरती डूब गई, आकाश उड़ गया, शेष कुछ न रहा, नहीं-नहीं – एक भयानक खोखलापन, एक विश्वव्यापी सूनेपन का अनुभव हुआ।

मुझे लगा मैं रम्मी बिना जिऊँगा ही नहीं। रम्मी से अलग जैसे मेरा कोई अस्तित्व ही न हो। रो-धोकर, किसी तरह अपने ऊपर थोड़ा काबू करके मैं दुलरिया के घर से विदा हुआ।

जाते समय उसने अपनी कसम देकर बचन लिया कि मैं कुछ उल्टा सीधा काम न कर बैठूं। बाहर आया उसके घर से तो सड़कें वीरान व सूनी हो गई थीं, कहीं-कहीं म्यूनिसीपैलिटी के कालिख से भरे टिमटिमाते लैम्प उस कालरात्रि के निविड़ अन्धकार से लड़ने का असफल प्रयास कर रहे थे, पर लगता था, अन्धकार उन्हें निगल जायगा।

मैं होश में तो था नहीं। सिर में सहस्र बिच्छुओं सी दंशन की पीड़ा हो रही थी। पाँव जिधर ही ले चलते उधर ही चला जाता।

चलते-चलते मैं गंगा के किनारे पहुँचा। गंगा का भरा पाट, सावन-भादों का। हरहराता हुआ सर्पाकार दैत्य सा जल अन्धेरे में फुफकारता बह रहा था। तट पर खड़ा रहा। खड़ा रहा बड़ी देर तक एक टक जल को देखता। जी में आया कितनी ही बार, कूद पड़ूं जल में छुट्टी लग जाय इस जीवन की। रम्मी बिना तो जीना ही व्यर्थ है, जीवन की कल्पना ही बेकार है। जाने आशा की किस क्षीण-धुंधली रेखा के बल पर इतनी बड़ी निराशा में भी वैसा कर न सका।

दुलरिया ने क्या कहा?

'जाने से पहले तेरे लिए बहुत रोती थी।'

हाय, रम्मी, तू रो-रो के प्राण दे देगी अपने अभागे रज्जू के लिए। मैं तुझे खूब जानता हूँ, तेरे रग-रग को पहचानता हूँ। तेरे पोर-पोर में, रग-रग में रज्जू व्याप्त है। तूने इतना प्यार क्यों किया? क्यों किया? क्यों?

उस काली रात में एक विशाल प्रश्न सूचक चिन्ह गंगा के काले पाट पर बन गया। और घिर आये बादल आकाश में। बिजली कड़की, बादल गरजे, और छहर-छहर पानी बरसने लगा। मैं एक लकड़ी की 'सिल्ली' पर चुप-चाप बैठ गया और भींगने लगा। भींगता रहा, भींगता रहा। मेरे जलते मस्तिष्क को इससे कुछ शान्ति मिली, शीतलता मिली।

जब पूरी तरह भींग चुका तो चुपचाप भारी कदम उठाता हास्टल की ओर चला। पर हास्टल का फाटक तो बन्द था। लोहे के सीखचों का फाटक। मैंने उसे ताका व उछलकर ऊपर से कूदकर पार हो गया अन्दर। कमरे में पहुँचकर चारपाई पर मुर्दे सा सो पड़ा। गीले कपड़े बदलने तक का होश न रहा।

सबेरे हास्टल सुपरिण्टेण्डेंट आए देखने। मुझे तेज बुखार में डिलीरियम हो गया था। स्कूल के मेडिकल अफसर (असिस्टेण्ट सिविल सर्जन) भी आए। मेरे कपड़े बदल दिए गए। अस्पताल में ले जाने की उन्होंने सलाह दी पर मैंने जाने से इन्कार किया व रोने लगा। तब कहीं छुट्टी मिली।

अस्पताल से नर्स आकर दिन में दो बार देख जाती। डाक्टर भी एक बार घूमते-घूमते आ जाते।

पर मेरी बीमारी की दवा उनके पास कहां थी? जब-जब याद आता, 'इस बार मैं भींगूंगी रज्जू। बुखार मुझे आयेगा तुझे नहीं।' तो मैं तकिए में मुँह डाल सिसक-सिसक कर फूट-फूट कर रोने लगता। नर्स बेचारी को कुछ भी समझ में न आता। बाईस-तेईस वर्ष की बड़ी सुन्दर व करुणामयी नर्स थी। मेरे सिर को गोद में लेकर सहलाती रहती। मैं रोता रहता। पर उसे सूझती कुछ न थी क्या करे।

अकेला होने पर मैं और भी रोता। रम्मी की एक-एक बात याद करके रोता। इस बुखार व डिलीरियम से भी मुझे प्यार हो गया। मैंने घर में किसी को कोई खबर तक न दी।

तीसरे दिन शनिवार को गनेश आया मेरे पास, शायद दुलरिया ने भेजा था। मुझे गांव जाना था न। मगर मेरी बीमारी देखकर वह तो दंग रह गया। जाकर दुलरिया से बोला। वह एकदम से घबराकर गनेश के साथ मेरे बोर्डिंग में आ गई देखने।

यह है दुलरिया जो अपनी जिद के सामने किसी की कुछ नहीं सुनती। उसके सास-ससुर ने परदे के नाम पर जरूर मना किया होगा उसे। पर वह सुनती किसकी है?

हास्टल के लड़के चकित हो उसे एकटक देखने लगे। बहुत से मेरे कमरे में जमा हो गये। सब जान गये वह मेरी बहन है गनेश से ब्याही है। गनेश ने कमरे से इस भीड़ को चलता किया।

केवल दुलरिया रह गई मेरे पास। तब हम बातें करने लगे।

मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई दुलरिया बोली,

'यह क्या कर लिया रज्जू?'

'कुछ भी तो नहीं रे।' मैं क्षीण मुस्कराया। दुलरिया के बड़े-बड़े नयन

मोती बरसाने लगे, जो टप-टप मेरी छाती पर गिर पड़े। मैंने कहा,

'तू रोती है दुलरिया ?'

और उसी के आँचल से उसके आँसू पोंछे। वह बोली, 'मैं परसों ही डर गई थी। जानती थी तू कुछ न कुछ जरूर करेगा। तभी कसम दिलाई पर इतने पर भी तू न माना।'

'मैंने कुछ न किया दुलरिया, कुछ भी नहीं।' आँसुओं के बीच वह बोली,

'तो तू भींग कैसे गया ? बारिश तो तेरे जाने के दो-ढाई घण्टे बाद आई, जब हम सो रहे थे। तू कहाँ चला गया मेरे घर से ?'

'कहाँ बताऊँ री ? जहाँ कदम ले गये मैं चला गया।' मेरे नयन से भी आँसू झरने लगे। मैंने कहा,

'याद है दुलरिया तुझे जब मैं रम्मी के साथ आम के बाग में भींगा था व बुआ लंगटू बाबा की सेवा कर रही थीं।'

वह हंसी दर्द बनकर रह गई। मैं फिर सिसक सिसक कर रोने लगा। दुलरिया के नयन फिर भरने लगे। उसने मेरी पीठ बराबर सहलाना शुरू किया। बोली, 'यूं घबराते नहीं रज्जू ! धीरज रख मेरे भइये'।

'रम्मी फिर मिलेगी। हम सभी फिर वैसे ही हँसेंगे। इतना घबराते हैं कहीं ?'

'अब तो क्या मिलेंगे दुलरिया ?' बड़ी निराशा से मैंने कहा, 'रम्मी बिना मैं तब तक जिऊँगा ही नहीं।'

'तुम दोनों जितना प्यार करते थे एक-दूसरे को उससे मैं बराबर डरती थी कि एक दिन यह हो के रहेगा।'

'तो तुमने मुझे सावधान क्यों नहीं किया ?'

'रंग में भंग क्या करती रे ? सोची जब तक सुख मिलता है ले लेने दूं फिर दुःख तो आयेगा ही। उसे कौन रोकेगा ?'

'पर यह भी कोई बात हुई ? छोटे-छोटे सुख के लिए सौ गुना दुःख उठाना हजार गुना ?'

'यही होता है मेरे भइया, एक-एक सुख की कीमत हजार दुखों में देनी पड़ती है। एक-एक मुस्कान की कीमत सहस्र-सहस्र आँसुओं की बूंदों से चुकाते हैं। तू अभी बच्चा है, जीवन क्या जाने ?'

'तब तो बड़ा कठोर है यह जीवन रे ?'

मैं बड़ा उदास होकर बोला। कुछ देर हम दोनों मौन रहे फिर मने कहा,

'अब तू घर जा दुलरिया। हास्टल के लड़के अकचका कर तुझे देखते हैं।'

'मैं किसी की परवाह करती हूं रे ? चली जाऊँगी तू घबरा नहीं। पर तू मेरे घर क्यों नहीं चलता ?'

'यहीं ठीक है, डाक्टर बराबर आता है, नर्स भी।'

'पर मेरे घर चलने में क्या हर्ज है, मैं बराबर तेरे पास रहूंगी। तू जल्दी अच्छा हो जायगा। बराबर हम तू रम्मी की बात करेंगे, तेरा जी बहला रहेगा।'

उसकी आखिरी बात से मैं ललचाया पर मेरा तप भंग हो जायगा वहाँ जाने से। मैंने फिर इन्कार कर दिया। इस पर दुलरिया बोली,

'तुझे इस बार लंगटू बाबा नहीं लगे।' उसके चेहरे पर मुस्कान थी।

'फिर' ? मैंने पूछा।

'इस बार भूत प्रेत नहीं, बल्कि 'परी' लगी है ?'

'कौन सी रे' ? मैं चकित हुआ।

'रम्मी।'

हम दोनों मुस्करा पड़े। मैंने पूछा,

'दवा ?'

'पता करके आऊँगी।'

वह चली गई। जाते-जाते रोज आने का वादा करती गई।

दुलरिया। मेरी सूनी जिन्दगी का एकमात्र स्नेह-सूत्र।

मैं फिर अकेले अंधेरी रात में व सूने दिन में तड़पता, छटपटाता रहा। और यह दिल था कि रट लगाए था, 'रम्मी ! रम्मी........रम्मी !'

## १६

जब मैं बीमारी से उठा, तो काफी कमजोर हो गया था—कमजोर, तन से, मन से। कहना मुश्किल था कौन बेसी कमजोर था।

क्लास फीका लगता, पढ़ाई फीकी लगती। पोजीशन लाने की साध जाने कहाँ दफन हो गई। शाम को खेलना बन्द कर दिया।

सूनी-सूनी सन्ध्या में चुपचाप टहलता-टहलता गंगा के तीर तक जाता। वहाँ घण्टों बैठा रहता। टक-टक जल को ताकता, उसकी धार को ताकता और लगता जैसे कहीं कुछ नहीं देख पाता।

अनन्त जलराशि इस पार से उस पार तक। उसके पार क्या होगा? रम्मी? मैं कैसे तैर कर जा सकता हूँ? क्या कर सकता हूँ? मुझे यकीन आ जाता, 'बिल्वमंगल' ने जरूर पार किया होगा, 'रामबोला' ने भी पार किया होगा। प्यार में शायद इतना जोश तो होगा ही, ताकत हो या न हो।

और मैं? मैं क्या करता हूँ?

सूनी-सूनी, फटी-फटी आँखें लिए चला आता जब आकाश में तारें काना-फूसी आरम्भ कर देते।

एक दिन नदी तीर बैठा था कि कहीं से डमरू की 'डिम-डिम-डिम' की धीमी आवाज सुनाई दी। ये डमरू, बन्दर नचाने वाले, नचाते समय बजाते हैं, भीड़ इकट्ठा करने के लिए बजाते हैं। इसी डमरू के ताल पर बन्दर-बन्दरिया नाचते हैं।

फिर तो क्या था डमरू की चोट से मेरे मन का भरा हुआ पका घाव फूट पड़ा और बह चला, बह चला सीमाहीन नयनों की राह।

'डिम-डिम-डिम-डिम....डिम-डिम-डिम-डिम'

कान में सुनाई दिया मदारी की आवाज मेले की—

'बन्दर भाई चले ससुराल,
लाल चुनरिया ले के हाथ।'

बन्दर का शीशे में मुँह देखना फिर लाल एकरंगे के कपड़े का एक टुकड़ा तह करना, उसे बगल में दबाकर चलना ससुराल।

और रम्मी का मेरे कन्धे पर हाथ रख कर खिलखिलाकर हँसना। हँसते-हँसते लोट-पोट जाना।

'देख रज्जू, देख, तेरी शादी हो जायगी तो तू भी यूँ ही लाल चुनरी तहकर ससुराल जायेगा।'

'धत्' 'ही-ही-ही' 'खी-खी-खी'....।

रम्मी कितनी मीठी हँसी हँसती है। उसके दाँत चम-चम अनार के दाने से चमकते हैं। हँसती है तो फूल बरसते हैं सोन जूही के।

रम्मी कितना दर्द बो गई?

मैं कैसे जिऊँगा अब?

'डिम-डिम-डिम....डिम-डिम-डिम....डिम-डिम।'

'बानर भाई पहुँचे ससुराल
दई चुनरिया मेहरी हाथ
झमकी चुनरिया मेहरी लेय;
छम-छम नाचे छुअन न देय।

डिम-डिम-डिम-डिम....डिम-डिम-डिम...डिम-डिम–।

बंदरिया लाल चुनरी लेकर 'छमाछम' नाचने लगी। बानर खुश हो गया। मैंने रम्मी की ओर देखा। उसने लाज से आँखें नीची कर लीं। बोली—

'उधर देख ना? नाच उधर होता है या इधर?'

मैं मुस्करा कर नाच देखने लगा।

अब बन्दरिया भागा-भागी करने लगी, बन्दर उसका पीछा करने लगा। बन्दरिया छूने नहीं देती। अन्त में बानर उसके पाँव पड़ा तो बन्दरिया ने उसके कमर में हाथ डाल नाचना शुरू किया।

मैंने रम्मी की ओर फिर ताका तो झेंपती हुई बोली, 'तू भी अपनी बन्दरिया के साथ यूँ ही नाचेगा।'

'और तू अपने बानर के साथ नहीं नाचेगी' ?

'सो तो रोज नाचती हूं रे ।'

मदारी आगे बढ़ा । बन्दर ने प्रस्ताव रखा बांदरिया को ससुराल चलने के लिए, सास ने बुलाया है । बांदरिया ने इन्कार किया बोली,

'कजरी तीज करके चलूंगी ।'

'नहीं रे तेरे बिना मन न लगेगा ।'

'तू जा मैं नहीं जाती ।'

दोनों का हठ बढ़ने लगा । बाँदरी भागने लगी फिर गुस्सा हो गई और तमक कर चुनरी फेंक दी ।

'आग लगाऊँ तेरी चुनरी आज
मैं नहीं जाऊँ तेरे साथ ।'

डिम-डिम-डिम, डिम-डिम-डिम, डिम-डिम-डिम,

'पल-पल बानर खुनसत जाय,
रहि रहि तमकि उठे, तड़पाय ।

बन्दर दाँत पीसने लगा, कटकटाने लगा, उछलने लगा और तपक कर उसने डण्डा चला दिया बनरिया पर, फिर उछलकर लात मारी ।

मैं शरम से गड़ गया । रम्मी ने झेंप से सिर नीचे कर लिया ।

हम दोनों को बीती घटना की याद आ गई जब मैंने उसे लात मारी थी ।

जब बन्दर का गुस्सा शान्त हुआ तो वह पछताया फिर लगा बानरिया को मनाने पर वह तो मान किए बैठी थी भाग-भाग जाय ।

इस मनौवल पर रम्मी खूब हंसी, खूब हंसी । बन्दर ने कान पकड़ा कि अब कभी न मारेगा । जीभ निकाली । जमीन पर नाक रगड़ा । बांदरिया के पाँव छूकर सिर टेक दिया । वह सिर उठाए ही नहीं ।

देखने वालों को हंसते-हंसते पेट में बल पड़ गया । अब तो वह तभी उठेगा जब बानरिया उठायगी । रम्मी बार-बार मुझे अंगूठे से कोख में छेड़ती ।

किसी-विसी तरह बांदरिया का दिल पसीजा । उसने दोनों हाथ से बांदर का सिर उठाया । बांदर ने खड़े हो बानरिया को छाती में कस लिया बाँह

में। देखनेवाले रस में नहा उठे। बानर ने बार-बार बानरिया का मुंह चूमा। देखनेवाले तरसते रह गए।

हमारी व रम्मी की आँखें मिलीं और मुस्कान के साथ नत हो गईं।

अब बानरी ने लाल चुनरी पहन ली व बानर के कमर में हाथ डालकर नाचती-नाचती ससुराल चल पड़ी। नाच गोल-गोल, गोल-गोल।

बंदरों के गले की घंटी—टुन-टुन, टुन-टुन, टुन-टुन।

बानर लियो बानरिया मनाय
दोनो मिल घर चले पराय।

डिम-डिम, डिम-डिम, डिम-डिम, डिम-डिम——।

मैं खुश था। रम्मी निहाल थी। मदारी के सामने पैसों का ढेर लग गया। बन्दर दम्पत्ति घूम-घूमकर जो कोई पैसा फेंकता सलाम करते साथ-साथ।

रम्मी को यह दृश्य इतना अच्छा लगा कि उसने दो आने पैसे आठ बार में फेंके व बांदर दम्पत्ति ने आठ बार सलाम किया, सभी हंसते रहें, मदारी मुस्कराता रहा। इतने पैसे एक विटिया से। उसने भी हमें सलाम किया। बोला, 'हुजूर जोड़ी सलामत रहे।'

छिः पगले! कौन सी जोड़ी?

बानर-बानरिया की? रज्जू-रम्मी की।

फिर वही डिम-डिम-डिम-डिम———डिम-डिम———।

नई भीड़ नया खेल। मदारी की 'डिम-डिम-डिम'

कान में गूंजी, मैं रो-रो मरा, फूट-फूटकर रोया नदी के किनारे। 'रम्मी-रम्मी-रम्मी' दिल पुकारा पर कौन सुने उसकी आवाज?

कहाँ थी रम्मी!

डमरू के ताल पर सारा जग नाचता है बन्दर सा। शंकर ने नाचा तो उनके 'डिम-डिम' से 'सरगम' का सारा संगीत-शास्त्र पैदा हो गया। वह ताल, वह लय, वह सुर, वह तान——सब कहाँ से आए?

शंकर के डमरू से, पार्वती ने डमरू बजाया होगा। शंकर उसके ताल पर नाचे होंगे, 'डिम-डिम-डिम।'

डमरू के ताल पर नाचे बांदर–बांदरिया।

डमरू के ताल पर नाचे महादेव–शैलजा।

डमरू के ताल पर नाचे, कौन?

रज्जू–रम्मी––रम्मी–रज्जू।

डिम-डिम-डिम-डिम–––डिम-डिम-डिम-डिम––।

मुझसे यह सहा न जायगा। लगता है मैं रोते-रोते मर जाऊँगा। रम्मी मेरी दुश्मन है, जान लेने को आई, लेकर चली गई।

चाणक्य की विष-कन्या?

छि: मेरे प्यार की पुतली रम्मी।

× × ×

एक दिन सबेरे-सबेरे भोर होते ही मैं चल पड़ा नदी-तीर घूमने। सड़क के किनारे एक सूरदास खंजड़ी लिए बड़ी लय के साथ गा रहे थे,

'कौन गाए मल्हार रे,

बिरहिन के द्वारे।'

उषा काल, आर्द्र वेला उसमें मोटे दर्दीले स्वर में सूरदास की यह पुकार हृदय चीर गई मेरा। लगा यह सूरदास खंजड़ी लेकर मेरे सामने नहीं बल्कि रम्मी के घर के सामने गा रहा है,

'बिरहिन के द्वारे।
कौन गाए मल्हार रे?
बिरहिन के द्वारे।'

यह दर्दीला भजन सूर गाता है और रम्मी रो-रो मरती है, छटपटा–छटपटा कर मरती है, सिर धुनती है, पछताती है।

मेरी आँखें भर आईं। मन व्यथा से भर उठा, मूक व्यथा। सूर ने बार-बार दुहराया,

बिरहिन के द्वारे।
बिरहिन के द्वारे।
कौन गाए मल्हार रे!

इतना निर्दयी कौन हो सकता है ? कौन ?

रज्जू के सिवा और कौन होगा।

विरहिन रम्मी रो-रोकर छटपटाएगी, सिर धुनेगी, जान दे देगी पर यह रज्जू है जो बराबर मल्हार गाता जायगा।

सोच-सोचकर मैं सिसकने लगा। भाग आया नदी-तीरे से।

एक दिन शाम को जी न लगा तो चल पड़ा दुलरिया की ओर। क्या पता उसे समाचार रम्मी का कोई मिला हो ?

कैसी यह आशा थी, बेसिर पैर की।

चौक पार करके फलों के बाजार से गुजरने लगा और कान में बराबर आने लगा,

'क्यों रज्जू, फजली आम लेगा ?'

मैंने अकचका कर पीछे देखा। कहाँ थी रम्मी ?

'लंगड़े लेगा ?'

'वेल लेगा ?'

'लीची लेगा ?'

'क्या लेगा ? कटहल लेगा ?'

मैं एकदम से तड़प उठा। सिर झनझनाने लगा।

किसी की खिलखिलाहट सुनाई दी। मधुर स्निग्ध हंसी रम्मी की। घूरकर देखा,

कहाँ थी रम्मी ? कहाँ थी वह हँसी ?

'मुझे तो अमिया चाहिए सो भी कच्ची।'

'कच्ची तो खट्टी होती है रे ?'

'ही-ही-ही — — — खी-खी-खी — — —।

मैं दुलरिया के घर पहुँचते-पहुँचते विह्वल हो गया। वह मेरा मुँह देखकर एकदम से चकित रह गई। बोली,

'रज्जू लगता है, कोई तेरे तन का सारा रस सोख रहा है, चूस रहा है।'

'नहीं री, ऊँवा में तप के मजबूत हो रहा है।'

मन में कहा, रम्मी के प्यार का रस उसी के विरह के आँवे में सूख कर समाप्त हो जायगा।

शेष बचेगा क्या कुछ ?

'लगता है रम्मी सचमुच तुझे परी की तरह लगकर सता रही है।' दुलरिया मुस्कराकर बोली। वह मुझे हँसाना चाहती थी शायद।

मैंने कहा, 'परी बन के लग भी जाती तो अच्छा रहता दुलरिया, मैं अकेले तो न जूझता। कोई तो बराबर साथ होता।'

हम क्षीण मुस्कान मुस्कराए। मैंने कहा,

'कुछ पता किया रम्मी का ?'

'नहीं रे, मैं तो भूल ही गई, अच्छा पूछूंगी।'

इतने में मैं मारे व्यथा के तड़प कर गरज उठा,

'तुझसे ऐसी आशा नहीं थी दुलरिया। छोड़ भी, मरनेवाले को मरने दे तेरी बला से। तू गनेश के साथ अपनी रास रचा।'

मैंने मारे क्रोध के बड़ी चोट लगने वाली बात कह दी पर दुलरिया थी जो उसे भी पी गई व आँखों में आँसू भर बोली,

'नहीं मेरे रज्जू, भूल हो गई, माफ कर दे, मैं कल ही – – –।'

'रहने भी दे। अब क्या करेगी किसी से पूछ के।'

मैं उदास मन क्रोध रोकता व आँसू पीता बैठ गया सोफे की कुरसी पर। कुरसी की बाँह पर बैठती हुई दुलरिया बोली, मेरे गले में बाँह डालती हुई,

'सुन मेरे भइया—यूं गुस्सा नहीं करते, धीरज से काम ले। मैं जरूर इस बार पता करूँगी। गनेश के बाबूजी, रम्मी के बाप के दोस्त हैं। वे पता उनका जानते होंगे।'

मुझे कुछ-कुछ आशा बंधी। मैं शान्त हुआ फिर भी खीझ पूरी उतर न पाई थी। मैंने उसका हाथ अपने कन्धे से हटाते हुए कहा,

'अब इस बात को भूल ही जा तो भला।'

'अच्छा रह तुझे थोड़ी मिठाई खिलाऊँ तो तेरा मन हरा हो।' वह मुस्कराई। मैंने कहा, 'मैं तेरी मिठाई का भूखा नहीं हूं दुलरिया।'

'अच्छा देख रज्जू, तू बहुत खिन्न-भिन्न करेगा तो मैं सचमुच नाराज हो जाऊंगी, हां।' वह गुस्से से बोली और चली गई मिठाई लाने। एक प्लेट में बादाम की बर्फियां व रसगुल्ले लेकर आ गई व मेरे बगल में बैठकर बोली,

'ले अब उठा।'

'पहले तू तो खा।'

'मैं खा लूंगी, पहले तू।'

'नहीं पहले तू।'

उसने वरफी का एक टुकड़ा मेरे मुंह में डाला मैंने एक टुकड़ा उसके मुंह में डाला। लगा, उसका मह रम्मी का मुंह सा लगा। मेरे मुंह की बरफी मुँह में ही रही। आँखों से आँसू झरने लगे। दुलरिया का मुँह चलते-चलते रुक गया। यह क्या?

रम्मी कहीं लखनऊ में थी। इतना मैं अन्दाज कर चुका था। पर कहाँ?

पहले तू, नहीं पहले तू।

सिर चकराने लगा। मिठाई धरी की धरी रह गई। दुलरिया ने फिर हठ नहीं किया।

जब मैं अपने को कुछ संभाल सका तो पूछा, 'छोड़ इस वखेड़े को दुलरिया। सुना गांव का कोई समाचार मिला?'

इस विषय परिवर्तन से वह खुश हुई। बोली,

'गाँव तू बीमारी के बाद से नहीं गया क्या?'

'नहीं।'

'क्यों रे? चाची व बुआ क्या सोचती होंगी।'

'क्या जाऊँ? जहाँ रम्मी नहीं, दुलरिया नहीं।'

'दुलरिया तो तेरे पास ही है भैया, रम्मी भी कभी न कभी मिलेगी ही। यूं ढाढ़स थोड़े खोते हैं? चाची रोती होंगी। सुना बुआ भी अपनी ससुराल चली गईं।'

'अच्छा हुआ री। मेरी दुनिया ही सारी डूब गई।'

'पर डूब तो सचमुच अपना सारा गाँव गया है। कल सुक्खू आया था।' बाबूजी डिब्रूगढ़ में हैं, माँ अकेली हैं, किसे भेजूं? गनेश के जाने से कोई लाभ न होगा। मेरा मन छटपटाकर मरता है, कुछ समझ में नहीं आता क्या करूँ, क्या न करूँ।'

सारा गाँव जलमग्न है। गंगा मैया के बाढ़ का प्रकोप। दीपन ठीक कहता था, 'गंगिया छोड़े तब ना।'

मुझे एक जोर का धक्का लगा। मेरे दिमाग के सोचने की दिशा बदली। मैंने झट से कहा,

'कह तो फिर मैं चला जाऊँ ?'

'जा न ? इससे अच्छा और क्या होगा ? तेरे जाने से मुझे पूरा संतोष हो जायगा।'

'फिर मैं कल ही सबेरे की गाड़ी से चला जाऊँगा।'

'यहाँ से कुछ खाने-पीने का सामान लेता जायगा ? घर के चक्की-चूल्हा तो पानी में होंगे। लोग खायेंगे क्या ? वैसे मैंने सुक्खू के हाथ थोडा बहुत भेज दिया है।'

'फिर रहने दे सामान। जो कुछ करना होगा वहीं करेंगे।' और मैं उठ खड़ा हुआ, यह कहता हुआ,

'अच्छा अब मैं चलूं। मेरी बात का बुरा न मानना दुलरिया। तू भी पराई हो जायगी तो मैं ....।'

'नहीं रे मेरे भइया।' उसने मेरा मुंह दोनों हाथ से पकड़ कर चूम लिया। बोली,

'गंगा मैया तेरी रक्षा करें।'

## १७

मैं रात भर सोचता रहा, दुलरिया के यहाँ से आने के बाद कि क्या करना चाहिए। ऐसे संकट-काल में गांव की रक्षा तो होनी चाहिए। सम्भव हो तो 'जवार' की भी रक्षा होनी चाहिए। लोगों के पास खाना नहीं होगा, खाना पकाने के लिए स्थान सूखा न होगा। खेत, बाग-बगीचे, सभी में पानी भरा होगा।

चिउड़ा चाहिए व सत्तू—'रेडीमेड' खाना। मूसा व 'बिचाली' चाहिए जानवरों के लिए। पहुँचाने के लिए नावें चाहिए। बच्चों के लिए दूध व बीमारों के लिए दवा चाहिए। पता नहीं यह बाढ़ का प्रकोप कितने दिन रहे। इतने सारे सामान मैं पाऊँगा कहाँ से? इसी उधेड़ बुन में ऊब-चूब होता रहा रात भर,

यदि सच-सच कहें तो मेरे हारे- थके सूने मस्तिष्क व दिल को एक दिशा मिल गई – नई दिशा सोचने की, काम करने की, इधर कई दिनों से - बल्कि हफ्तों से, पंगु बन गया था, जैसे तन-मन दोनों को 'लकवा' मार गया हो। रम्मी की जुदाई के गम में।

बीमारी से अच्छा होते ही जो पहली बात दिमाग में आ रुकी वह थी संसार की निस्सारता, जीवन की निस्सारता, प्यार की निस्सारता। बार-बार एक ही बात सोचता, इस जिन्दगी को किस भट्ठी में झोंक दूं?

गंगा की लहरों को सौंप दूं? चलती ट्रेन की पटरियों पर सिर रख दूं? 'लैब' से पोटैशियम सायनायड प्राप्त करने की चेष्टा करूँ?

पर जाने वह कौन-सी जीवन की धुंधली आशा क्या करूँ?–रेखा थी जो निरन्तर टिमटिमाती रही व इस प्रकार के किसी भी फैसले पर पहुँचने से रोकती रही।

क्या मन के सहस्त्र तहों के नीचे रम्मी से अभी मिलने की आशा जी रही थी ? कौन जाने ? कौन कहे ?

यही आस अटक्यो रह्यो,
अलि गुलाब के मूल।
अइहें बहुरि वसन्त ऋतु,
इन डारन वे फूल।

पर यदि ऐसी किसी आशा का क्षीण दीप टिमटिमा रहा हो अन्तस्तल के घोर अन्धकार में, तो भी मैं इतना जरूर कहूँगा कि मन व मस्तिष्क के 'संज्ञान' मात्र को भी यह मालूम न था अचेतन या अर्धचेतनवास्था में रहा हो, तो कुछ पता नहीं, हो सकता है। संभव है।

अपना सर्वनाश कर डालने, पूर्ण रूप से स्वयं को मिटा डालने का विचार ज्यों-ज्यों धीमा पड़ने लगा उसका स्थान दूसरे विचार ने लिया, वह यूँ था।

जब इस तन-मन का कोई मोल ही नहीं जो रम्मी बिना अधूरे व व्यर्थ हैं, धरती के बोझ मात्र, तो इनको मिटा डालने के बदले, इनका कोई उपयोग कर डालना कैसा ?

जैसे बासी अन्न खराब हो जाने पर फेंक देने के बदले गोरू को डाल देना बेहतर। इस विचारधारा के आते ही मैं सिर पर कफन बाँध कर घूमने लगा। शहीदाना जोश जागा।

जो तन-मन रम्मी के प्यार को सँभाल न सके वे व्यर्थ तो हैं ही, उनको बेकार लकड़ी सा किसी और भट्ठी में झोंक कर खाना पकाना कैसा ? किसी का तो खाना पक जायेगा, किसी का जाड़ा दूर होगा ? वह चाहे जो कोई हो।

मन व मस्तिष्क की ऐसी ही अवस्था के बीच यह बाढ़ व बाढ़ पीड़ितों की सहायता का मसला, हमारे प्रश्न का 'रेडी आंसर' बनकर आ गया।

अजी, जब शहीद ही होना है, तो राइफल का 'बोर नम्बर' जानने से क्या लाभ ?

सवेरे-सवेरे सोकर उठा तो तन-मन में एक नया जोश, एक नई स्फूर्ति महसूस हुई। नहा-धोकर कपड़े बदल मैं 'रायजी' के पास गया। वे ही इस

सेवा-समिति का गठन कर रहे थे ! मैंने अपने गाँव व आस-पास के गाँवों की हालत उन्हें बताई व अपनी सेवा अर्पित की ।

रायजी बड़े कर्मठ व्यक्ति थे । खुल के कांग्रेस में काम तो नहीं करते थे, पर हर सेवा-कार्य में आगे रहते थे । वहाँ के समाज में उनका आदर भी था । उन्होंने झट से बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिये एक अपील निकाली जो बनारस व प्रयाग तथा दिल्ली, कलकत्ते के पत्रों में प्रकाशित हुई । पर उसके भरोसे हम बैठ नहीं सकते थे । हमें तो तुरन्त कुछ करने की आवश्यकता थी, हमें तत्काल मदद की दरकार थी । उन्होंने किसी सेठ की मोटर माँगी व दिन भर हम चार आदमी नगर का चक्कर काट आये । रायजी व मेरे अलावे समिति के सेक्रेटरी महेशजी तथा उपाध्यक्ष क्षितीशजी साथ-साथ चक्कर काट रहे थे ।

दिन भर की दौड़-धूप के बाद हमने पाँच हजार रुपया नकद, पन्द्रह हजार का वचन, सौ कम्बल, डेढ़ सौ धोतियाँ, दो सौ साड़ियाँ, पचीस मोटिया थान और दो डाक्टरों की सेवाएँ मुफ्त में प्राप्त किया ।

एक लोकल कार्य-समिति का भी गठन हुआ जिसकी बैठक रात को आठ बजे रायजी के घर पर हुई । इसमें दस मेम्बर चुने गये जिनमें एक मैं भी था । मैं समिति का उप सचिव या सहायक-मंत्री बनाया गया ।

मेरे जिम्मे काम मिला कि दूसरे दिन, दिन भर में कम से कम पच्चीस स्वयंसेवक विद्यार्थियों में से भर्ती करूँ । उपाध्यक्ष को आटे, सत्तू व चिउड़े, गुड़, नमक का प्रबन्ध दिया गया । महेशजी ने प्रचार व जन-सम्पर्क का काम लिया । रायजी एक डेलीगेशन लेकर दूसरे दिन जिले के कलक्टर व कमिश्नर से मिलने गये ।

दूसरे दिन शाम को हमारी कार्य-समिति फिर बैठी । दिन भर के काम का लेखा-जोखा किया गया । कलक्टर ने दस नावें तथा पांच बैग दवाएँ तुरन्त देने का वादा किया । रात होते-होते दवा के बैग हमारे पास आ गये । नावें गन्तव्य स्थान के लिए खुल गईं जहाँ-जहाँ जाने के लिये रायजी ने आदेश दिया । खाद्य-पदार्थ भी तीन-चार रोज की जरूरत भर क्षितीशजी ने जुटा लिया ।

अखबारों की अपील से बड़ी सहायता मिली। दोपहरी होते-होते पचास वालेंटीयरों के नाम मेरे पास आ गये। मुझे जरूरत थी केवल पच्चीस की। मेरे इस एक रात में नेता होने पर सभी हैरान थे, गांव का छोकरा व इतना तेज ? पर काम भी तो गाँव का ही था।

हमारी कार्य-समिति इस आशातीत सफलता पर बड़ी प्रसन्न हुई। स्वयसेवकों का नायक बनकर मैं चल पड़ा तीसरे दिन सबेरे की ट्रेन से। दुलरिया से मिलने की संध्या के बाद इस आयोजन के करने में दो दिन का वक्त लग गया।

हमारे साथ दोनों डाक्टर व क्षितीशजी चले खाद्य-पदार्थ ट्रेन में लाद दिया गया। प्लेटफार्म पर हमें विदा देने जिले के कलक्टर, एस० पी०, डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चैयरमैन, म्यूनिसीपैलिटी के चेयरमैन, जिला कांग्रेस के सभापति और अनेक विशिष्ट व्यक्ति पधारे।

पत्र संवाददाताओं ने हमारी फोटो ली जो दूसरे दिन के पत्रों में छपी। हमारी फोटो अलग से निकली 'उत्साही युवक' करके, फूल-हार व मालाओं से भरी हुई गर्दन व छाती, शहीदाना मुस्कान चेहरे पर।

हमारी ट्रेन जब हमारे स्टेशन पहुँची तो यह जत्था उतर पड़ा। सारे सामान भी उतार लिए गये।

स्टेशन मास्टर ने हमारे लिए हर प्रकार की सुविधा दी, फर्स्ट क्लास का प्रतीक्षालय हमारा कार्यालय बना। दो कैम्प भी कम्पाउन्ड में डाल दिये गये।

पर जब सबने खड़े होकर रेल के ऊँचे बाँध पर से बाढ़ का दृश्य देखा तो हैरान रह गये, कितनों की हिम्मत पस्त होने लगी। जहाँ तक दृष्टि जाती बस जल ही जल नजर आता। कहीं-कहीं खेतों के पेड़ बबूल व आम के बगीचे दिखाई दे जाते ! चींटी के बहते छत्ते सा गांव टीलों पर नजर आते। जो बहुत ऊँचे थे वे तो द्वीप बन गए थे वरना बहुधा जलमग्न थे।

गिरे हुए घर की लकड़ी व मवेशी बहुधा बहते नजर आते। वैसे मैं तो इस प्रकार की बाढ़ का आदी था पर इस बार की प्रचण्डता देखकर मेरा दिल भी एक बार डूबने लगा।

नष्ट करने के लिए समय न था। काम की जरूरत थी। काम, तुरंत काम। मैंने क्षितीशजी की सलाह से एक छोटी सी कार्य-विधि यानी प्रोग्राम बना लिया।

दो नावों पर जिसे स्टेशन मास्टर के जरिए पास के गांव के मुखिया ने दी थी, खाद्यान्न, दवाएँ एक डाक्टर व पाँच-पाँच स्वयंसेवक केन्द्र पर छोड़ दिए गए वहाँ सूचना, आफिस व सेवकों की सेवा के लिए।

दस स्वयंसेवकों को लेकर मैं रेलवे लाइन पर मीलों तक जमा नर-नारियों मवेशियों की सेवा में निकल पड़ा। क्षितीशजी नावों पर गए।

बड़ा ही कारुणिक दृश्य था सारा। लाइन पर पड़े लागों में से बहुतों को मैं पहचानता था। पर्दानशीन बहुएं भी अनेक थीं, बच्चे, बूढ़े, स्त्रियाँ-कोई अन्त न था। जवान मवेशियों को संभालने में थे पर कोई कुछ कर न पाता था सब अपंग से लगते।

आदमी व जानवर सबके चेहरे पर 'भुखमरी' विराजमान थी ! चार-पाँच स्त्रियों को इस लाइन पर ही बच्चा पैदा हुआ था। छोटे बच्चों के लिए दूध नहीं था। रह-रहकर वर्षा होती और सभी भींग जाते। फिर जल्दी सूखना कैसा।

फसल नष्ट हो चुकी थी सारी। इसलिए बाढ़ उतरने पर भी जीने-खाने की कोई उम्मीद न थी।

घोर निराशा व भुखमरी का यह दृश्य देखकर मेरी छाती भर गई। मैंने बच्चों के दूध व बीमारों की दवा पहले भेज दिया। फिर अन्न बाँटने का काम जारी किया। किसी को भी दो दिन से बेसी की खुराक न दी जाती।

इतना ढेर-सा हमारे पास था भी कहाँ।

इस अनन्त जलराशि में डूबे सैकड़ों गाँवों का क्या होगा ? मैं क्या कर सकता हूँ। कितना बड़ा है यह काम ? कितनी छोटी है मेरी शक्ति। सोच-सोच कर सिर फटने लगता।

इस रेलवे लाइन पर अन्न-वितरण करते समय लाइन में खड़े मिल गए हमारे दासा पाँड़े व दीपन भी। हमें देखकर थोड़ा झेंपे, पर खुश ही हुए।

दीपन बोला, 'यही रज्जू बेटा तो एक लायक पैदा हुआ जवार-पथार में। वंश का नाम उज्ज्वल करेगा।'

दासा बोले, 'अरे तो बेटा किसका है? पाँड़े वंश के मुखिया का। बाघ का बेटा बाघ ही होगा कि सियार होगा।'

खैर वे अनाज लिए, गए। मवेशी के चारा के लिए मैंने सूचना फैला दी कि स्टेशन पर जाकर जवान लोग जरूरत भर लाएँ। उसकी व्यवस्था केन्द्र वाले स्वयंसेवकों को दी।

स्त्रियों की पंक्ति में दासा पाँड़े की माँ भी थीं—भारतमाता के बन्धन व मूक व्यथा की सजीव प्रतिमा। उनके मैंने चरण छुए व आखें सजल हो गईं।

आगे बढ़ने पर औरों के साथ-साथ सोनिया व मोनिया भी मिलीं। मोनिया के पाँव पर कुदाली से क़टने का निशान देखकर रम्मी की याद एक बार बुरी तरह कौंध गई।

सोनिया बोली, 'रज्जू भइया? तुमने तो आज हम सबको उबार लिया। आज तीन दिन से यहाँ घर भर में एकादशी चल रही है। जरा देखो, अपनी राधा की हालत।'

मैं लजा गया। यह सोनिया बड़ी बदमाश है। फिर सोचा। जाने दो स्वयंसेवक क्या जानते हैं वह कौन है, सोचेंगे राधा इसका नाम होगा।

सोनिया-मोनिया का आँचल भी चिउड़े-सत्तू से भर दिया। धनिया ने भी आँचल फैला दिया, पर खड़ानन का पता न था। मेरे घर के लोग लाइन पर न आए थे। दुलरिया के घर के भी नहीं। मैं जानता था। सवाल इज्जत का था, शान व गरूर का। मेरी माँ अपने घर के छत पर से भी बाढ़ में बह जाना पसन्द करेगी पर न तो किसी के घर जाएगी न लाइन पर खुज़े में डेरा डालेगी।

दुलरिया की माँ का भी यही हाल था। चौबे टोली से मँगरू की भवह व झगरू की पतोहू भी न आई थीं। वे भी न आए थे।

पर वे लोग थे कहाँ? जल में।

जब तीसरा पहर भी ढल चुका तो पिता जी एक नाव लेकर आए। मैंने उनके चरण छुए।

आशीर्वाद देकर वे बोले,

'गाँव में खबर फैल गई कि तू ढेर सा अनाज, कपड़े, दूध, दवा और वालंटीयर लेकर शहर से आया है और सबको अन्न बांट रहा है। यकीन न पड़ा इसलिए देखने आ गया।'

'मैं लेकर नहीं आया हूँ बाबूजी, हमारे उपाध्यक्ष क्षितीशजी लेकर आए हैं। मैं तो केवल सहायक मात्र हूँ। चलिए, आपको उनसे मिला दूं।'

बाबूजी हिले नहीं। मूछों से भरे रोबीले चेहरे पर चमकती रोबीली आँखों से घूरकर मुझे देखे व बोले, 'जा उन्हीं को बुला ला।'

मैं क्षितिशजी को बुला लाया। वे हमारे पिताजी से मिलकर बड़े खुश हुए और उन्होंने मेरी तारीफ के पुल बाँध दिए। पिताजी गंभीर भाव से चुपचाप सुनते रहे। फिर बोले,

'आप अन्न सदाबरत ही बाँटते हैं या बेचते भी हैं?'

'हम अन्न बेंचते नहीं।'

'तो जो आपका सदाबरत नहीं लेंगे वे क्या भूखों मरेंगे?'

क्षितीशजी चकराए। ऐसे बीहड़ आदमी से उनको पाला नहीं पड़ा था। मेरी ओर ताके। मैंने कहा, 'जो कोई हमारे अनाज का पैसा देना चाहे उसे लेने में हमें क्या एतराज है? हम उसी पैसे का फिर अन्न मंगा लेंगे।'

क्षितीशजी को यह युक्ति जंची।

उन्होंने झट से हामी भर ली व चैन की साँस लिए। पिताजी ने कहा,

'ये सौ रूपये हैं, इनके चीउड़ा, सत्तू व चावल जो कुछ भी हो दे दीजिए हमारे गाँव के लिए।'

पहले तो क्षितीशजी ऐसे ताके जैसे किसी 'ब्लैक मार्केटीयर' से पाला पड़ा हो, पर जवार भर का सरपंच जानकर उन्होंने कहा,

'अभी तो हम पचास रूपये का दे देंगे फिर और आने पर कल-परसों में मिल जायगा।'

'ठीक। आप इत्मीनान रखियेगा आप के अन्न का दुरूपयोग न होगा।'

शायद पिताजी ने उनकी आँखें पढ़ ली थीं।

जाते-जाते पिताजी कहते गए, 'अगर किसी मदद की जरूरत हो तो कहने में संकोच न कीजिएगा। हमलोग तो इस बाढ़ के आदी हैं। जन्म से ही जूझते आये हैं बसर करना भी जानते हैं।'

क्षितीशजी से कहकर मैं भी नाव में पिताजी, के साथ घर गया। मां से मिलकर बड़ी खुशी हुई। माँ ने तीन दिन से खाना न पकाया था पर उसके चेहरे पर इस एकादशी से तेज ही फैला था, गरूर से ऊँचाई उठी थी, कहीं झुकाव, शिकन व शिकायत न थी।

पता चला कि एक दिन लकड़ी के तख्त पर लोहे का चूल्हा रखकर उसने पिताजी के लिए कुछ पकाने का प्रयत्न किया पर तख्त में आग लग गई और वह जलता-बहता जाने कहाँ चला गया।

एक रात को माँ रते-मरते बची, एक फूस के घर का किवाड़ निकल कर बह चला। रात को उसकी आँख खुली तो आँगन में इस काले किवाड़ को पानी में तैरते देख माँ ने समझा घड़ियाल है। वह देर तक तो चुपचाप देखती रही कि अब घड़ियाल हमला करता है। पर वह एक ओर आँगन के कोने में चला गया।

दिन होने पर जब उसने देखा कि यह तो काला किवाड़ है तो हँसकर पिताजी से कथा सुनाई। जब पिताजी ने पूछा,

'तुम रात को चिल्लाई क्यों नहीं ?'

तो माँ बोली, 'वाह चिल्लाती तो आप द्वार पर से आँगन में आते और वह घड़ियाल मुझे खाने के बदले आपको खा जाता तो। भला ऐसी भूल करती ?'

मैं सोचता ऐसी माँ का बेटा होने में कितना गर्व है। पर वह योग्यता कहाँ मुझमें ?

रात को छतों की खपरैलों में साँप चलते, चूहे भी इकट्ठे हो गये थे। उनकी दौड़-धूप होती। साँप चूहों को पकड़ते। आखिर भगवान ने पेट तो सबको दिया है, उसे किसी न किसी तरह भरना है। माँ के पलंग पर से कितनी ही बार सर्प इधर से उधर रेंगते रात को चले गये। माँ हँस के कहती है, 'रज्जू आपद्काल में सब अपना धर्म पहचानते हैं। वे कभी काटते नहीं। फिर मैं तो बराबर 'जय तक्षक जनमेजय' मंत्र का जाप करती रहती हूँ। भला मुझे काटेंगे ये ?'

घर के कुत्ते व बिल्ली ने भी बैर बिसार दिया था दोनों जो यूँ बराबर लड़ते थे, इन दिनों एक ही घर की मचान पर चुपचाप पड़े थे। शायद कई दिनों के भूखे थे। मुझे देखकर टुक-टुक ताकने लगे तो माँ ने उनको सान के थोड़ा-सा सत्तू दिया। जिन्दगी उनकी आँखों में चमक उठी।

बुआ वाले घर में मैंने उस पलंग को देखा जिस पर बुआ व रेशमा के साथ मैं कजरी-तीज की रात को सोया था। पलंग चार-चार ईंटों पर रखा था इसीलिए तैर कर वह नहीं रहा था। दीवार पर तीज की पूजा के रंगे गये फूल दिखाई दिये, रेशमा के हाथ के छाप भी।

मन एक अनजान व्यथा से भर उठा।

नाव लेकर मैं दुलरिया के घर की ओर चला। अपने घर से पीछे बगिया में वह लीची के पेड़ का जोड़ा देखा जिसने हमारी सारी प्रेम-कहानी देखी-सुनी थी। हम दोनों ने उनको बाँट लिया था। एक मेरा था एक रम्मी का। वे दोनों साथ थे इस जल-प्लावन में भी। पर हम कहाँ?

रम्मी के हाथ का डाला हुआ झूला भी अभी तक यूं ही झूल रहा था। किसी ने उसे उतारा नहीं। कौन उतारे। झूले का पटरा पानी में गोते खा रहा था व रस्सियाँ पेड़ की डाली से बँधी उसको थामे थीं, इस बाढ़ में।

मुझे कौन थामे? जब रम्मी ही नहीं।

कजरी तीज की गोधूलि में इस झूले पर किये प्यार की याद कसकने लगी। मैं विह्वल होने लगा। तब तक हमारी नाव दुलरिया के घर के सामने लग गई। मैं उतरकर पानी नापता उसकी माँ के पास गया। समाचार पूछा। काकी को जब अनाज के लिए पूछा तो बोली,

'कल सुबह थोड़ा लाया तो रे। अभी नहीं चाहिए रहने दे।'

जब मैंने कहा, 'काकी पैसा दे देना, अनाज तो रख लो।' तब उन्होंने पाँच रुपये देकर थोड़ा अन्न रख लिया।

जब मैंने कैम्प में चलकर रहने को कहा या शहर में तो बोलीं, 'यह बाप-दादे की हवेली छोड़कर कहाँ जाऊँ रे? मैं इसमें बहू बनकर उतरी थी। अब तो मेरी लाश ही इसमें से निकलेगी।'

मैं दंग रह गया।

इतनी शान, इतना गुमारू, इतना हठ।

तभी तो दुलरिया इतनी हठीली है।

वहाँ से मैं चौबेटोली भी गया व मंगरू व झगरू के घर अनाज दे आया रूपया लेकर। खड़ानन ने भी रुपये देकर अन्न लिए। एक बार जी में आया पूछूं, इन तीनों से, इस बाढ़ में तो खूब सुअवसर है, रस देने का, रस लेने का। कुछ करते-धरते हैं या नहीं।

पर क्या मैं पूछ सकता था।

मुस्कराकर रह गया।

मन की सारी बातें जुबान पर थोड़े ही लाते हैं। ऐसा करे तो रोज घर-घर झगड़ा हो। जीना दूभर हो जाय।

महादेव काका के द्वार पर नाव लगते ही काका ने 'अँकवार' में भर लिया। बोले, 'बेटा, तू कृष्ण कन्हैया है, डूबते गोकुल-वृन्दावन को तूने बचा लिया उँगली पर गोवर्द्धन उठाकर।

काका की आँखो में आँसू थे। काका तीन-चार दिन से खाये-पीये न थे। इधर मेरा कुछ और ही हाल था। मैं बार-बार सोचता, काका ठीक कहते हैं—गोकुल, वृन्दावन, जलप्लावन, इन्द्र का प्रकोप, नन्हीं सी उंगली पर गोवर्द्धन पहाड़.....सब तो ठीक काका, पर वह राधा कहाँ है जिसकी मुस्कान ने उंगली में इतना जोर भर दिया कि गोवर्द्धन टिका रहा।

कहाँ है वह राधा? बोलो ना?

राधा, रम्मी? रम्मी – राधा?

मेरे मन की पुकार जोर पकड़ने लगी। आँखों से आँसू झरने लगे। काका क्या जानें ये मेरे आँसू आनन्द के थे या विरह के।

गोकुल की रक्षा थोड़ी बहुत तो हो रही थी, पर बालुका राशि पर स्थित वृन्दावन जहाँ रास रचाया था वह तो भयानक जल के गर्भ में सोया था, ऊपर से दैत्याकार-आवर्त गों-गों करता बहता था।

क्या लाभ यह सोचने से?

गया, गया गोकुल, गया वृन्दावन।

राधा के साथ सब कुछ चला गया।

अब यह कृष्ण-कन्हैया इस भूमि में पाँव न धरेगा। कभी नहीं। यहाँ कदम-कदम पर काँटे हैं, दर्द के काँटे बोये हुये, जो हर घड़ी, हर पल चुभेंगे। निकालेगा कौन ?

बेचारा कृष्ण जीवन भर यही काँटे निकालता रहा और निकालते ही निकालते किसी के तीर से उसके प्राण-पखेरू उड़ गये।

क्या मैं भी यहीं जीवन भर करूँगा ?

और मेरी राधा कभी न मिलेगी ?

कभी नहीं। कभी नहीं।

घड़ी भर रात गये मैं कैम्प पहुँचा तो वहाँ ढेर से काम अभी पड़े थे। यानी 'नाइट शिफ्ट' करना था। प्रेस को समाचार देना और सहायता की अपील करना, तार भेजना, प्रेस रिपोर्टरों के प्रश्नों का उत्तर देना – यह काम मेरे जिम्मे था। खास-खास लोगों के नाम पत्र लिखकर शहर से सहायता माँगना व नगर-कार्यालय से पत्र-व्यवहार क्षितीश जी ने ले लिया।

जब यह काम बारह बजे के आस-पास निबटा तो हमने एक छोटी सी गोष्ठी की, कार्य-समिति की मंत्रणा। पहला प्रश्न यह था कि स्वयंसेवक और चाहिये, दूसरे दिन सबेरे सरकारी दस नावें पहुँच जाने वाली थीं। कुछ स्थानीय स्वयंसेवकों को भी भरती करने का प्रश्न आया, पर मैं इसे प्रोत्साहन नहीं देना चाहता था क्योंकि उनके स्वार्थ भी तो उलझे थे, स्कूल के विद्यार्थियों का कोई स्वार्थ नहीं था वे पवित्र सेवा-भाव से काम करते थे। अन्त में तय हुआ कि सबेरे तीन बजे की गाड़ी से जाकर मैं पच्चीस स्वयंसेवक और लाऊँ, गाँव के स्वयंसेवक पहले दस लिये जायेंगे 'टेस्ट' के तौर पर। मिला जुलाकर देखा जायगा।

शहर से और रसद, और रुपये, और कपड़े व दवा लाना मेरा काम था। रूपये अभी हम बाँटते नहीं थे, क्योंकि गाँवों में मुफ्त का रुपया लेने की आदत बड़ी खराब है। 'मुफ्ते माल दिले बेरहम'। मगर जो न तो मुफ्त अन्न लेना चाहते थे मारे स्वाभिमान के और न उसके पास पैसे थे, केवल उनको समुचित अन्न खरीदने भर को हमने पैसे उधार दिये।

दिन भर का थका-मांदा व रात भर का चूर जब मैं तीन बजे सबेरे की ट्रेन में बैठा तो लगा चलो जब तक शहर पहुँचते नहीं, तब तक तो मन व

मस्तिष्क आराम कर लें और यह शरीर भी थोड़ा हाथ-पांव पसार ले।

रेल लाइन पर दोनों ओर बाढ़ग्रस्त लोंगो की जमात खुले में इधर-उधर सोई थी, कोई-कोई जाग भी रहे थे। मैं यह कारुणिक दृश्य देख रहा था और जी भर-भर आता था। आकाश साफ था, तारे क्रिसेंशियम के फूल से खिले थे।

मेरे मन में जिज्ञासा जागी। इस समय रम्मी क्या करती होगी? दुलरिया क्या करती होगी? वह तो गनेश के गले में बाहें डाल सोई होगी। सोनिया क्या करती होगी? तब तक ध्यान आया कि ट्रेन उसी स्थान से गुजर रही है जहाँ सोनिया ने डेरा दिया है। मैं बाहर टक-टक देखने लगा। मुझे मालूम हुआ कोई पुरुष फुस-फुस बातें करता है। स्त्री-पुरुष, मैंने 'टार्च' फेंका जो बड़ा जबर्दस्त था, रात के सफर के लिए ले लिया था पर यह क्या?

रमनथवा व सोनिया फुस-फुस बातें करते हैं मैं टार्च उनके मुँह पर संभाले रहा ताकि वे मुझे देख न सकें। रमनथवा की आवाज भी सुनाई दी,

'पाजी कहीं का।'

जब ट्रेन काफी आगे बढ़ गई तो मैंने टार्च बन्द कर दिया। अब सोचने लगा। हे भगवान, तूने यह कैसा आकर्षण दे दिया जो इन आफत की घड़ियों में भी प्यार अपने मधुर-सूत्र का ताना-बाना जोड़े बिना नहीं रहता। यह तो मजार पर पिकनिक हुई। मजार के फूलों को चुनकर प्रणय-माल तैयार किए जाते हैं।

फिर याद आया, सोनिया ने कहा था, 'भइया, हम तीन दिन से कुछ न खाए' ठीक तो है आज उसे खाना मिला, पेट भरा तो प्रणय की सूझी। यह इन्सान क्या है? भूख व 'सेक्स' का पुतला। इसे मात्र भोजन व रमन चाहिए। महादेव काका भूख से कितने विह्वल थे।

पर इन दोनों भावनाओं में कौन प्रबल है? कह नहीं सकता। मैं अभी बहुत छोटा हूँ यह सब समझ पाने के लिए।

फिर विचारधारा पलटा खाकर रम्मी पर रुक गई। रम्मी क्या करती होगी? आँखें मूदे लखनऊ के किसी सुन्दर कमरे में पलंग पर सोई होगी। ओह, रम्मी की मुदी आँखें सोने पर कितनी अच्छी लगती हैं सचमुच मालूम होता है, दो बन्द कमल-कली हों।

'पहिल बयरि सम, पुनि नवरंग'

उसकी छाती भी उठती-गिरती होगी। क्या रम्मी हमारा सपना देखती होगी? क्या उसे पता होगा कि उसका भोंदू रज्जू उसका कान्ह इस जल प्लावन में गोवर्धन उठा रहा है उंगली पर सो भी राधा की मुस्कान बिना।

रम्मी! यह उंगली टूट जायगी, जरूर टूट जायगी क्यों कि उसे तेरा, तेरे प्यार भरे मुस्कान का बल प्राप्त नहीं। मुझे उंगली टूटने की चिन्ता नहीं, चिन्ता इस भयानक बर्बादी की है।

जब ठंडी हवा का झोंका जरा-सा लगा तो पलकें लग गईं व मीठे स्वप्न आने लगे कि कैम्प के सामने रम्मी व मैं हाथ में हाथ डाले खड़े हैं इस महासमुद्र की बिभीषिका को देखते हैं व रम्मी कह रही है,

'रज्जू तू आगे बढ़, मैं सदा तेरे साथ हूँ चाहे जहाँ रहूँ, मेरे आँचल की छाया सदा तेरे सिर पर रहेगी। तू मेरी बात मान भइये, आगे बढ़।

## १८

सवेरे-सवेरे चार बजे मैंने रायजी को जगाया। वे भी बारह बजे सोये थे। भोर की उस भावुक वेला में मुझे देख उनका हृदय स्नेह-मात्र से भर गया। बोले, 'बेटे तू सचमुच बड़ा आदमी होगा, बहुत बड़ा सेवक, इस वेला में तू आ गया।'

मैंने रायजी को सारे काम का विवरण दिया व आगे के काम की जरूरतें बताईं। काम की दुरूहता व सहायता की विशेष आवश्यकता बताई।

सेठ रामनारायण ने अपनी कार इस काम के लिए रायजी को दे रखी थी, सो सवेरे-सवेरे ही पाँच बजते-बजते हम दोनों काम-धन्धे पर निकल पड़े। दो घंटे के भीतर-भीतर खाद्यान्न, कपड़े, दवाइयाँ, दूध वगैरह स्टेशन पहुँचाए गये।

अपने स्कूल सात बजे जाकर उन पच्चीस स्वयंसेवकों को मैंने स्टेशन आने का आदेश दिया जिन्होंने नाम दिया था पर अगले दिन मैंने स्वीकार नहीं किया था ।

यह भी मैंने बता दिया कि जो आठ बजे तक स्टेशन नहीं पहुँचेगा उसे इस संकट में फिर 'सेवा' का सुअवसर न दिया जायगा ।

मैंने रायजी से कहा कि सेठ रामनारायण से मिलकर कलक्टर के जरिये एक अनाज की 'फ्रेयर प्राइस शाप' यानी सस्ते गल्ले की दुकान खुलवा दें ताकि पैसा देकर लेनेवालों के नाम से हमारी छुट्टी मिले । वैसे वहाँ भी एक सप्ताह से बेसी का राशन किसी को न दिया जाय व बनियों से सावधान रहा जाय ।

मैं यह भूल गया कि सेठ रामनारायण स्वयं ही एक बहुत बड़े बनिया हैं ! पर उनकी बात और थी ।

कार पास में ही थी, एक बार जी ललचाया कि दुलरिया की ओर से चक्कर मार आऊँ, क्या पता उसके ससुर को रम्मी के बाप का पता मालूम हो ? क्या पता ।............क्या पता रम्मी ।

कुछ पता नहीं । समय नहीं था । मैं गया नहीं । जा नहीं सका । मन में जाने कौन एक बार ठेलता घर जाने के लिए दूसरी बार मेरा हाथ पकड़ खींच लेता था, रोक लेता था ।

मैं इसी दुविधा में आठ बजे स्टेशन पहुंचा । वहाँ और कोई नहीं, हाँ रायजी व महेशजी थे जो सारा सामान गाड़ी में रखवाने के प्रबन्ध में व्यस्त थे । मैंने झट से स्वयंसेवकों को 'फाल-इन' कराया व गिनती ली । पूरे पच्चीस थे, कोई पिछड़ा न था उनके चेहरे पर काफी उत्साह था । तीन-चार तो मुझसे भी छोटे थे । उनकी जिन्दगी खतरे में डालते मुझे भय लगा । मैंने उन्हें चलने से मना किया पर वे ऐसी रोनी सूरत बना लिए कि मुझे मजबूर होकर उन्हें लेना ही पड़ा ।

इतने में प्रेस वाले आ गए । उन्होंने ताजे समाचार-पत्र मेरे हाथ में रख दिए, जिन्हें देखने की फुरसत मेरे पास न थी । उन लोगों ने 'रसद' की फोटो रायजी तथा महेशजी के साथ ली फिर मेरी फोटो स्वयंसेवकों के साथ ली ।

दो-चार सवाल उन्होंने पूछे, जिनके उत्तर में मैंने बाढ़-पीड़ितों की सहायता के काम की गुरुता तथा अपने साधनों की लघुता पर जोर दिया। सहायता करने वालों की भूरि-भूरि प्रशंसा भी की।

ये सारी बातें एकाएक मेरे भीतर कहाँ से आ गईं मैं नहीं जानता। सारे काम प्रौढ़ की तरह करता था पर उत्साह व उत्सुकता बच्चों की ही थी कोई निरन्तर कान में कहे जाता,

'रज्जू तू आगे बढ़, मेरे आँचल की छाया..................।'

जब ट्रेन चल पड़ी तो हम सबने मिलकर समाचार पत्रों को देखना आरम्भ किया। कल की फोटो हमारी अकेले व ग्रुप के साथ आई थी। मुख्य पृष्ठ पर हमारे समाचार थे, बाढ़ के दृश्य थे। दर्दनाक वर्णन थे। एक नाव डूबने तथा तीन व्यक्तियों के लापता होने का समाचार था। हम सन्न रह गए। उत्साह हमारा टूट गया।

फिर एक-एक करके पन्नों को उलटा। उनमें भी मेरी तस्वीर थी, स्वयं-सेवकों की तस्वीरें थीं। एक बार लड़का मेरे कन्धे पर हाथ रखकर मेरे कान के पास मुँह कर देखने लगा। मुझे लगा, रम्मी ने कन्धे पर हाथ रखा व पीछे से देख रही है। मैंने मुड़कर देखा। लड़के ने हाथ खींच लिया

वह क्या जाने मेरे मन की।

क्या रम्मी भी इन पत्रों को देखेगी ? पढ़ेगी ?

क्या वह देखेगी उसका रज्जू .... .... ....

क्या रम्मी .... .... .... क्या रम्मी भी .... .... .... ?

कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं। वह स्टेशन आया, सामान उतारा। क्षितीश जी हमारा इन्तजार कर रहे हैं। रमनथवा भी स्टेशन पर दिखाई देता है।

सामान उतरा, नये स्वयंसेवक उतरे। पुरानो से मिल रहे हैं, कल के अनुभव की चर्चा करते हैं। क्षितीशजी नगर का ब्यौरा ले रहे हैं। सामान एक ओर संजोए जा रहे हैं।

मुझे जरा सा खाली पाते रमनथवा पास आया, बोला, रज्जू भइया, मैं भी किसी काम आ सकता हूं ?

'क्या चाहिए तुझे ?' मैंने हँस के कहा।

'कुछ भी नहीं, मुझे कोई काम दो !'

'कौन सा काम दूं, रसद बांटेगा ?' मैंने पूछा।

'क्यों नहीं, जहां कहो, जैसे कहो, बांट दूंगा'

'सारी रसद सोनिया के घर तो नहीं दे देगा ? मैं, मुस्कराया। वह भी बोला,

'सोनिया-मोनिया का आंचल तुम्हीं तो कल भर रहे थे।'

'अच्छा ठीक फिर आ जाओ। 'तुम्हें दीयरा' जाना पड़ेगा। नदी पार, दो भयानक धाराओं के बीच, कोई जल्दी तैयार नहीं होता जाने को।'

'मैं जाऊंगा भइया, दुर्गा को भी ले लूं ?'

'तुम जानो' कोई गड़बड़ी होगी तो तुमसे पूछूंगा।'

'वह उतना बुरा नहीं रज्जू .... .... ....।'

'कहा न तुम जानो।'

हमारा नावों का बेड़ा फिर तैयार हुआ। गांवों से दस स्वयंसेवक ले लिए गये। हर नाव पर तीन हमारे व दो गांव के स्वयंसेवक रखे गए। दस नावों का गन्तव्य स्थान तय हो गया। राशन लद गया, आदमी तैयार हो गए। अब वे छूटनेवाली थीं कि दस बजे गाड़ी आ गयी। सोचा गया देख लूं इस गाड़ी से भी कोई माल या खबर आई हो, कोई व्यक्ति आया हो।

कुछ और रसद आई थी तथा रायजी स्वयं पधारे थे हमारा उत्साह बढ़ाने व काम का निरीक्षण करने।

इनके अतिरिक्त एक और महत्वपूर्ण जोड़ा पधारा था। महत्वपूर्ण केवल मेरे लिए, सबके लिए नहीं।

दुलरिया गनेश को लेकर आई थी।

मैं झट से उसके पास गया ! गनेश से थोड़ा अलग होकर वह मुझसे बातें करने लगी।

'तू क्यों आयी दुलरिया ?'

'आई तूझे प्यार व आशीष देने रज्जू। मैं जानती नहीं, तू अपने सुकुमार कन्धों पर कितना बड़ा बोझ ले बैठा है ? सारे नगर में तेरी ही चर्चा हर किसी की जुबान पर है। आज सवेरे के अखबार तेरी फोटो व खबरों से भरे हैं। इतना बड़ा भाई पाकर भला मैं दूर रह सकती थी ? '

कुछ रुककरबोली, 'काश रम्मी आज होती। तेरा उत्साह, तेरा बल कितना वैसा होता, सौगुना, हजार गुना।'

यूँ तो मैं चुपचाप उसके उद्‌गार सुनता रहा पर रम्मी के नाम पर मैंने आँखें उठाकर उसे देखा। मन बार-बार पूछ रहा था 'देख तो कोई टोह मिली ?···· ····पूछ तो कोई पता मिला ? देख तो············पूछ तो········ देख तो············पूछ तो '।

मुझे बड़ी उत्सुकता से ताकते देख दुलरिया बोली,

'रम्मी का पता मैं अभी तक मालूम न कर सकी रज्जू, मुझे बहुत अफसोस है।'

हताश मन मैंने पूछा, 'बाबूजी से पूछा था ?'

'पूछने का मौका ही नहीं लगा रे, तू तो जानता है उनसे थोड़ा परदा करना पड़ता है।'

मैंने उसका हाथ अपने हाथ में लेकर पूछा,

'दुलरिया मेरी कसम—मेरी देह की कसम खाकर कह कि तुझे पूछने का मौका अभी भी नहीं मिला।' वह एकदम से घबरा गई। हाथ छुड़ाते हुए बोली,

'सच-सच कहूँ तो मैंने उनसे पूछा था रज्जू, तुझसे आखिरी मुलाकात से पहले ही पूछ चुकी थी। पर उनको इससे अधिक कुछ भी नहीं मालूम कि वे लोग लखनऊ में ही रहते हैं। हवाई पते पर कह तो कुछ लिखकर देखूं। मैं तुझे निराश नहीं करना चाहती थी। इसलिए तेरे इतना बिगड़ने पर भी आखिरी बार मैंने नहीं कहा।'

'पर इस झूठी आशा दिलाने से क्या होगा दुलरिया ? बालू फांकने से पेट भरेगा ?'

'पेट नहीं भरेगा, बालू की सोंधाई तो मिलेगी।' हम क्षीण मुस्कराए। उसने कहा,

'ये ले एक सौ एक रुपये। अपने सहायता-कार्य में कहीं लगा देना।'

'चल क्षितीशजी को दे। मैं तेरा परिचय भी उनसे व रायजी से करा दूं।'

और उसका हाथ पकड़े मैं क्षितीशजी के पास पहुँचा जो ढेर से वालंटीयरों से घिरे थे। मैंने परिचय कराया,

'यह दुलरिया मेरी बहन, ये गनेश इसके पति।'

'क्षितीशजी हमारे सहायता-कार्य के कर्णधार व उपाध्यक्ष। ये रायजी हमारे अध्यक्ष।'

रायजी तथा क्षितीशजी बड़े विनीत भाव से मिले। बोले, 'मिलकर बड़ी खुशी हुई। जैसा भाई वैसी ही बहन। क्यों न हो।'

स्वयंसेवक घेरकर इस जोड़े को चकित भाव से देख रहे थे। इसी समय दुलरिया एक सौ व एक रुपये का नोट बढ़ाते हुए बोली,

'ये लीजिए क्षितीशजी, आपके सहायता-कार्य के लिए। मैं दूसरी गाड़ी से शाम तक लौट जाऊँगी।'

क्षितीशजी गद्‌गद् होकर धन्यवाद दिए। इसी समय कलक्टर के भेजे दो मोटर लंच भी आ गए। इसलिए बड़ी सुविधा हो गई।

नावों का बेड़ा चल पड़ा अपने सहायता-कार्य पर। तब क्षितीशजी ऐक मोटर लंच लेकर निकले अग्रिम व्यवस्था व निरीक्षण के लिए। दूसरे पर मैं निकला।

दुलरिया ने पूछा, 'मैं भी तेरे साथ आ सकती हूँ रज्जू ?'

'आ तो सकती है पर खतरे से खाली नहीं है, गनेश से पूछ ले।'

गनेश बोला, 'खतरा कहो नहीं है, उसका मन है तो ले जा, मैं क्षितीशजी के मोटर लंच पर चला।'

इस प्रकार हमारा ग्रुप अलग-अलग चल पड़ा। पहले हमलोग उस गाँव में गए जहाँ नाव तुरन्त पहुँचनेवाली थी। वहाँ के मुखिया से मिलकर बँटवारे का स्थान, तरीका व रेट तय किए। गाँव के सैकड़ों लोगों ने हमें घेर लिया।

कितनी श्रद्धा थी उनकी आँखों में।

प्यार व आशीष टपकता उन आँखों से।

भीड़ में किसी को फुसफुसाते सुना,

'जवाहर–विजयलक्ष्मी से लगते हैं दोनों।'

दुलरिया तो इस बात से फूली न समाई। उसके चेहरे पर नैसर्गिक आभा छा गई। बोली,

'रज्जू, तूने रस का असली मर्म पा लिया है।'

'सो क्या री ?'

'यही सेवा। कष्ट में पड़े लोगों की सेवा। इससे बड़ा सुख और कहाँ मिलेगा ? कितना प्यार है इन सैकड़ों आँखों में तेरे लिए। मुझे भी तेरे साथ होने से थोड़ा-बहुत मिल जाता है, काश..........।' वह फिर चुप लगा गई व उदास हो गई। मेरे मन ने पूरा किया उसके अधूरे वाक्य को,

'काश, रम्मी साथ होती।' सचमुच, हम तीनों मिलकर क्या नहीं कर डालते। लोग देखते ये तीनों भाई-बहन कितने उत्साह से खटते हैं और कहाँ तक जान-जोखिम में डाल सकते हैं।

सचमुच। हम क्या नहीं कर सकते थे ?

इन्द्र का कोप है, जल-प्लावन है, गोविन्द है, गोवर्द्धन है, ग्वाल बालों की लकड़ी भी है, पर एक राधा की मुस्कान के बिना गोविन्द की उँगली पर गोवर्द्धन थर-थर काँपता है, कहीं गिर न जाय।

सारे गोकुल का जीवन उँगली में अटका है,
राधा की मुस्कान में अटका है।
राधा ? जिसका 'पता' तक मालूम नहीं।

हमलोग एक-एक करके दस गाँवों में गए जहाँ रसद बाँटनी थी। हर जगह का समा लगभग एक ही सा था। हमारा हृदय श्रद्धा व प्यार के मार से गद्गद् हो चुका था।

अब हम दस और गाँवों में गए जहाँ दूसरे दिन रसद बाँटनी थी। वहाँ भी समुचित व्यवस्था किए। इन स्थानों पर दस मिनट की मीटिंग भी कर लिए, जिनमें मैंने लोगों बो ढाढ़स बँधाया व 'सारा देश साथ है इस दुःख में' इस पर जोर दिया। लोगों की आँखों में 'भुखमरी' के बदले आशा चमक उठी। आशा, जीवन का मोह। जीवन का प्यार।

ढेर से स्त्रियों व पुरुषों ने मेरा पाँव भी छुआ व बूढ़ी स्त्रियों ने दुलरिया

को चूमकर आशीष दिया,

'बेटी, दूधों नहाओ पूतों फलो।'

अब हम अपने गाँव आए। दुलरिया अपनी माँ से मिली फिर मेरी माँ से। और हमलोग लौटकर स्टेशन आ गए। दुलरिया की ट्रेन का समय हो रहा था।

गनेश क्षितीशजी के साथ पहले ही आ चुका था व क्षितीशजी के साथ खाना खा चुका था। दुलरिया भूखी थी, मैं भूखा था। मैंने पूछा,

'दुलरिया कुछ खायगी नहीं?'

'नहीं रे, मेरा तो पेट इस प्यार व श्रद्धा से भर गया है। आज उपवास ही अच्छा। इतने बड़े दिन जिन्दगी में बार-बार नहीं आते रज्जू?'

'अच्छा-अच्छा, बातें न बघार। मेरे तो पेट में चूहे कूद रहे हैं, न खाऊँ तो अगला काम न हो।'

एकाएक वह उछल पड़ी। बोली, 'अरे रज्जू मैं तो भूल ही गई थी तेरे लिए कुछ फल व मिठाइयाँ लाई हूँ। थोड़ी-सी पूड़ी-सब्जी भी होगी, चल तुझे अपने सामने खिला तो दूँ, अभी गाड़ी में आधे घंटे की देर है।'

हम दोनों एक कैम्प में गए। बस दुलरिया व मैं, गनेश भी आकर शामिल हो गया। दुलरिया ने मेरे मुंह में खिलाना शुरू किया। मैंने भी उसके मुँह में मिठाई डाली। जब केले डाले तो दोनों हँस पड़े।

यह खाना जल्दी ही समाप्त हो गया। प्यार भरा दुलरिया का खाना जाने कितनी शक्ति दे रहा था।

प्लेट फार्म पर सभी स्वयंसेवक तथा सैकड़ों लोगों ने दुलरिया को विदा किया। किसी ने जाने कहाँ से माला खोजकर उसे अर्पण किया। सारी भीड़ के सामने दुलरिया ने मेरा गाल चूम लिया व बोली,

'रज्जू, तू आगे बढ़ मैं सदा तेरे साथ हूँ।'

हमारी आँखें छलछला आईं व उसकी भी।

ट्रेन धीरे-धीरे प्लेटफार्म से खिसकने लगी।

दुलरिया का हिलता हाथ व कलाई की घड़ी चम-चम चमकती रही देर तक।

## १८

दुलरिया आई व चली गई, पर उसके आने से मुझे एक प्रकार का साहस मिला। एक बल जो पहले मैं महसूस नहीं कर रहा था। मुझे सचमुच लगा कि मैं बिल्कुल अकेले नहीं। वैसे रम्मी होती तब तो बात ही और होती।

पर क्या पता ? शायद तब मैं इस काम में कूदता भी नहीं।

जिस शाम को दुलरिया चली गई उसी रात को एक बड़ी भयानक दुर्घटना हो गई। पानी के निरन्तर घिरने व बढ़ने से तंग आकर किसी गाँव के तीन-चार आदमियों ने रात को रेलवे लाइन का बाँध एक निर्जन स्थान पर काट डाला।

जल बड़े जोर के साथ 'हो-हो-हो' करता वह निकला। सामने पड़ने वाले एक गाँव के बीच से यह धारा निकली। गाँव के बीस-पच्चीस घर आधी रात को धराशायी हो गये। लगभग पच्चास व्यक्ति सोये में ही बह गये। बँधे मवेशी अनगिनत बह चले। घरों के सामान नदी में तैरने लगे, लकड़ी, बक्से, चारपाई जो कुछ भी बह सकता था बहने लगा। जो कुछ डूब सकता था डूबने लगा।

त्राहि-त्राहि मच गई।

आवागमन का एकमात्र साधन रेलगाड़ी सो भी बन्द हो गई। हमारे हाथ पाँव फूल गये।

अब क्या हो ?

दुर्बुद्धि। दैवी प्रकोप।

हमने अपना कैम्प तुरन्त अपने स्टेशन से उठा लिया व उस स्टेशन ले गये जहाँ तक नगर से ट्रेन आ सकती थी।

हाँ, हमारी नावों व स्वयंसेवकों ने बहुत काम किया। वे दिन-रात उस गाँव के लोगों की रक्षा व मदद में जुट गये। पाँच नावें उधर व पाँच अन्य स्थानों के लिये लग गईं। मोटर लंच दोनों, प्रेसवालों व अधिकारियों को ही लाने-ले जाने दिखाने में व्यस्त हो गये।

मेरा सारा समय सामान का जुगाड़ करने, सेवा-कार्य करने वालों की समुचित व्यवस्था व वितरण करने व प्रेस तथा अधिकारियों को दिखाने व समुचित सूचना देने में बीतने लगा। मैं एकाध बार मन ही मन खिन्न हो जाता क्योंकि मेरी पब्लीसिटी बहुत हो रही थी जब कि असली काम हमारे स्वयंसेवक करते जिनका कहीं नाम नहीं, कहीं फोटो नहीं। असली सेवा वे करते जो गुमनाम अनाज, कपड़े, रुपये भेज देते। सैंकड़ों, सहस्रों दानी-दाता जिनका कहीं नाम न होता।

सेवा का यह व्यंग्य !

बचपने की यह लालसा कभी-कभी जाग उठती, क्या रम्मी इन पत्रों को देखती होगी। क्या वह समझेगी यह उसी का रज्जू है?

धीरे-धीरे सहायता सारे देश से पहुँचने लगी। धन प्राप्ति के साथ-साथ 'सेवकों' की भी संख्या बढ़ चली। कितनी ही संस्थाओं के वालंटीयर जुट गये। सेवकों में आपसी स्पर्धा, फोटो खिंचवाने की चिन्ता, सेवा कम मटरगस्ती बेसी आदि की भावनाएँ जोर पकड़ने लगीं।

रसद व वस्त्र के बँटवारे भी अनेक लोगों द्वारा उनके केन्द्र पर होने लगे। पक्षपात घुस गया, बड़े घरों में बेसी गरीब व लुटे हुये घरों में कम सामान पहुँचने लगा। लाइन पर पड़े परिवारों में शहरी स्वयंसेवकों की प्रेमिकाएँ निकल आईं।

सब कुछ, इतना बड़ा काम हो गया था, इतना पसर गया था हमारे लाख चाहने पर भी काबू न आता।

एक दिन मुझे पता चला कि रमनथवा का साथी दुर्गा एक बोरा चिउड़ा चौबे के घर डाल आया है, मेरे मन में चोर समाया फिर रमनथवा ने सोनिया के घर भी पहुँचाया होगा, पर ऐसा कोई प्रमाण न मिला।

ज्यों ही बाढ़ का पानी उतरा व लोगों की सहन-शक्ति के भीतर विपदाएँ आ गईं, मैंने रायजी से कहकर इस काम से अपना हाथ खींच लिया।

रायजी बोले, 'वेटे तेरे जैसा सेवक मुझे नहीं मिला आज तक, पर तू यूँ हाथ क्यों खींचता है ?'

"रायजी धक्कमधुक्की की मुझे आदत नहीं। अब लोगों का कष्ट सीमाहीन नहीं। उसकी 'सीमा' बँध गई है। अब जिस टाइप की सेवा की जरूरत है वह करने की मुझमें न तो इच्छा है, न शक्ति। जिनमें है वे तो फील्ड में पहुँच ही गये हैं, मुझे छुट्टी दीजिए।"

इस घटना के कुछ ही दिन बाद सरकार ने बीज व तक़ावी वितरण का काम अपने हाथ में ले लिया। कितना बचा सामान व रुपया किस संस्था के हाथ लगा और उसका फिर क्या हुआ, इसका लेखा-जोखा मेरे पास नहीं। उसमें मेरी रुचि भी नहीं थी।

सेवा-समिति का काम समाप्त होने से पहले रायजी ने एक अभिनन्दन-समारोह आयोजित किया जिसये हमारे सारे स्वयंसेवक बुलाए गए। मेरा तथा मेरे साथियों का गौरव-गान हुआ। मैं फूल-हार में डूब गया। दुलरिया मेरे पास बैठी थी। उसे रायजी ने विशेष तौर से आमंत्रित कर बुलाया था :

कमी केवल एक थी।
रम्मी नहीं थी।
जल-प्लावन से उबारने वाले कान्ह की राधा।

दूसरे दिन दुलरिया के उत्साह का अन्त नहीं था। उसने अखबारों से हमारी सभी फोटो व समाचार तथा अपनी फोटो भी (मेरे साथ कल वाली) काट-काट कर एक बड़ा अल्बम बना लिया था जो हर किसी को दिखाती थी। शाम को नगर के कुछ विशिष्ट लोगों को चाय पर आमंत्रित कर उसने यही किया।

यानी मैं रातों-रात बात की बात में नेता हो गया।

अब मैं फिर पढ़ने-लिखने में जुट गया वही क्लास, वही पुस्तकें, सूनी संध्या। जब कभी मन नहीं लगता मैं दुलरिया के पास पहुच जाता। उसका स्नेह पहले से भी दूना हो गया था। अब वह मुझे निरा 'रज्जू' नहीं बल्कि

'कुछ' समझने लगी थी। उसके मेन्टलपीस में मैंने वह तस्वीर देखी। जो मेले में गनेश ने हम तीनों की खिचवाई थी। देखी व देखता रहा। मन में एक व्यथा उठी, एक हूक, पर रोया नहीं।

इन कुछ महीनों में इतना रुदन, इतना हाहाकार देख चुका था कि आँसू जैसे मेरी आँखों में सूख गये थे। मैंनें रम्मी के पता-ठिकाना की चर्चा बिल्कुल बन्द कर दी। उसकी भी चर्चा कम ही करता।

हाँ, अपने कमरे में दरवाजा बन्द कर वह फोटो घंटों देखा करता जो जो हमने मेले में खिंचवाई थी एक दूसरे के हाथ दिए। रम्मी कितनी मीठी हँसी हँसती थी।

उसने कितने भोलेपन से कहा था,

'वह तो गनेश की तरह मेरा आँचल ठीक नहीं करेगा?'

कातिक आया। हल-बैल, बीज का शोर मचा, गंगा का सारा जल सिमट कर जाने कहाँ चला गया। सैकड़ों मील भूमि सुन्दर चिकनी मिट्टी लिए गंगा के गर्भ से निकल आई। किसानों के चेहरे पर मुस्कान छा गई। बच्चों की तरह महीना भर पहले का दुःख-दर्द सब भूल गए। बोने की धुन सवार हो गई।

"हल-बैल-बीज" की पुकार उठने लगी।

मुझे लगा इसी सुन्दर मिट्टी की पैदाइश के लिए वह प्रसव-पीड़ा थी भादों में। जैसे माँ सुन्दर बेटे का मुँह देखते ही छन भर पहले की मरणान्तक पीड़ा भूल जाती है, वही हाल इन गाँव के लोगों का था।

दीयारे में जमीन की नाप शुरू हो गई। चार अंगुल जमीन पर उलझन बढ़ने लगी। भाले माँजे जाने लगे। नोक सबकी तेज हो गई। लाठियों को तेल पिलाया जाने लगा। बेकान के सीधे भालों में 'कान' गढ़ा जाने लगा।

नया नवाद, हल-बैल-बीज।

पूनमछपरा से खबर आई-नए नवाद पर भाले निकले, एक मरा सात घायल अस्पताल आए हैं। उनको देखने मैं सदर अस्पताल गया पर इन मामलों से मैं दूर ही रहा।

गाँव के लोग नए 'नवाद' में एक दूसरे की गरमी उतार रहे थे व खद ठण्ड हो रहे थे।

कातिक के महीने में गंगा नहाने वालों की भीड़ बढ़ने लगी। गंगा का जल अभी भी काफी मटमैला था। पर इसे देख उस रूप की कल्पना नहीं की जा सकती थी।

दीप जले, आकाश चढ़े, आकाश-दीप।
आलो भाई, चालो भाई
दीप जरैं, मन भरैं,
रज्जू के, भैरो बाबा
रक्षा करैं, रक्षा करैं।
कौन कहे ? कौन कहे ?'

एक शाम जब अनेक घरों से दीप आकाश में चढ़कर जगमगाने लगे तो कागज के आँचल में टिमटिमाते यूँ लगते जैसे रम्मी के आँचल का दीप चमका था। कौंपा था और मैं बिलख-बिलख कर महीनों बाद रोने लगा, अकेले, चुपचाप अँधेरे के सूनेपन में स्कूल के फील्ड के एक कोने में।

कोई पूछनेवाला नहीं, कोई चुप करानेवाला नहीं, कोई आँचल से आँसू पोंछनेवाला नहीं।

एकाएक लगा जैसे पीछे से कोई कह रहा हो,
"चुप रह रज्जू, मैं तो सदा तेरे साथ हूँ, ले,
आलो भाइ, चालो भाई
दीप जरैं, मन भरैं
रज्जू - रम्मी के भैरो बाबा,
रक्षा करैं, रक्षा करैं।

अपने भ्रम पर मैं स्वयं ही मुस्कराया। अपने आँसू स्वयं ही पोंछे व मुस्कराकर सोचा।

क्या मैं पागल हो रहा हूँ ?
क्या रम्मी की परी सचमुच मुझे लगी है ?
दुलरिया ने यही तो कहा था।

कार्तिक का महीना, दिन धीरे-धीरे खिसकने लगे, धूप प्यारी लगने लगी, रातें मोती भरने लगीं, कातिक की रात, थोरी-थोरी सिसियाती-सम हो

चली। चन्दा मामा ने भी अपना खेत तारों से बो दिया, अमावस तक चम-चम चमकते आकाश में चांद के बीज़ निकल आए तारों के रूप में, तिल धरने को जगह न रही।

धरती ने होड़ लगाई व दीपावली की तैयारी करने लगी। रम्मी ने कहा था,

'देख रज्जू, चन्दा मामा के आँगन में तारों के दीप जल गए। आ हम भी अपने आँगन में दीप जलाएँ।

जाड़े की रात, कातिक में हल्का-हल्का-सा जाड़ा, भोर होने से बहुत पहले ही रात के तीसरे पहर में स्त्रियों का झुण्ड गंगा-स्नान को जाने लगा और वे गीत गाते जातीं। 'पीड़िया' के गीत और कौन-कौन से।

एक दिन भोर में तीन-साढ़े तीन बजे उठ बैठा, व नियमानुसार पुस्तक निकालने से पहले लालटेन जला, रम्मी की उस तस्वीर का दर्शन किया जिसमें वह मुस्करा रही थी मेरे साथ। इसी समय रात के सन्नाटे को चीरती हुई मधुर कंठ की मधुर ध्वनि आई,

कान्हा बँसिया बजावै ला,
कदम तर ठाढ़।

गीत लम्बा था जिसका यह अंतरा था। लड़कियाँ शायद दो दल में बँटकर गाती चलती थीं। जब एक समाप्त करैं,

हो, कान्हा बँसिया बजावै ना,
कदम तर ठाढ़।

तो दूसरा इसे दुहरावै,

कान्हा बँसिया बजावै ना,
कदम तर ठाढ़।

इस गीत के सुनते ही मेरे हृदय पर आरे चलने लगे, उन्होंने ज्यों-ज्यों इसे दुहराया मेरा जी भरता आया, दिल चिरता गया। जब वे दूर चली गईं व केवल क्षीण- ध्वनि हवा में तैरती आने लगी,

कान्हा बँसिया बजावै ना,
कदम तर ठाढ।

तो मेरे नयन झरने लगे। झरते रहे, झरते रहे। फिर मैं सिसक-सिसक कर रोने लगा लिहाफ में सिर डालकर। मन बार-बार यही कहता,

हाय रम्मी, तू कितना सताएगी मुझे ?

कब तक ?

दीवाली आई पर मेरा मन इतना उदास रहने लगा कि मैंने निश्चय किया दीवाली पर गाँव न जाऊँगा। दीवाली को जाने कितनी स्मृतियाँ रम्मी के साथ लिपटी पड़ी थीं, क्या मैं उससे जूझ सकता था ? जूझकर पार पा सकता था ?

जब आकाश तारों से जगमगा उठता तो मैं बहुधा कमरे की खिड़की से देखा करता और एक साँझ को देखा मैंने पहर भर रात गए 'मार्ग शीर्ष-मण्डल' को। याद आया। रम्मी कहा करती थी,

'देख रज्जू' वो रहा बुआ का पलंग। पलंग के चार पाए चार कोनों में देखता है ?'

'हाँ'

'तो बोल बीच में क्या है।'

'बीच में तीन जने सोए हैं पलंग पर।'

'ठीक, बोल तो वे कौन-कौन हैं।'

'बता दूं ?'

'हाँ।'

'ठीक, ठीक ?'

'ठीक-ठीक।'

'एक बुआ।'

'हाँ।'

'एक मैं।'

'हाँ।'

'और एक तू।'

'ही-ही-ही', 'हा-हा-हा' हम दोनों हँस पड़ते। वह बोलती, 'नहीं रे। यूं सोए हैं, सुन।'

'हाँ।'

'पहले मैं ।'

'हां ।'

'फिर बुआ ।'

उहुँऽ ।'

'फिर तू ।'

'ना–ना–ना, नहीं–नहीं–नहीं, यूं नहीं ।'

और हम दोनों लड़ते कि आकाश के इस पलंग पर हम तीन किस प्रकार सोये हैं ।

सोए हैं आज भी आकाश के पलंग पर, मगर कहां है बुआ, कहाँ गई रम्मी ?

रज्जू अकेले झँख मारता है ।

मैंने खिड़की बन्द कर दी । मन मूक व्यथा से भर उठा ।

मैंने दुलरिया से साफ-साफ कह दिया, दीपावली में गाँव पर न जाऊँगा । वह जानती थी कि जब से रम्मी गाँव से चली गई मैं लगभग गांव जाता ही नहीं था । बाढ़–वाढ़ के काम में व्यस्त रहने से भी जाना कम ही हो पाया । पर अब तो कोई बात न थी, बोली,

'देख रज्जू, चाची तेरी बाट जोहती होंगी । बुआ नहीं, रेशमा नहीं, तू भी नहीं, चाची का मन कितना उदास होगा ? वे तेरी माँ है रज्जू, माँ । चाची कभी कुछ कहती नहीं, बोलती नहीं, इसके माने यह नहीं कि वह तुझे प्यार नहीं करती, तेरे लिए तड़पती नहीं । तू गाँव जायेगा तो तेरे घर में उजाला हो जायगा, सच्ची दीवाली होगी, मेरे घर में भी उजाला हो जायगा । क्या पता, बाबूजी आए हों । तू जानता है वे तुझे कितना प्यार करते हैं, माँ तुझे जितना चाहती है । नहीं, नहीं, यह न होगा, तू जा गाँव, तुझे जाना ही पड़ेगा ।

एक साँस में सारी बातें दुलरिया कह गई । मैं चुपचाप सुनता रहा । मन में गुनता रहा, 'हर किसी को अपने अपने प्यार की पड़ी है, कोई मेरे दिल के घाव को नहीं देखता जो कदम-कदम पर ठेस लगने से लहू-लहुआन हो जाता है । मेरा प्यार रात-दिन रोता है, तड़पता है, खीझता है, पल भर को चैन नहीं,

पर किसी को इससे क्या ? ससार अपनी चाल से चला जा रहा है, घावों को मसलता, कुचलता, दिलों को रौंदता। दुनिया को किसी के 'दिल' के लिए फुर्सत नही।'

मैंने कहा, 'तू ठीक कहती है दुलरिया, सभी ठीक कहते हैं। वेठीक केवल एक मैं वोलता हूँ। हर किसी को अपनी-अपनी पड़ी है, कोई मेरे भीतर पैठ के नहीं देखता, जहाँ रात-दिन सूनापन 'भाँय-भाँय' करता है, मेरा दुःख किसी को दिखाई नहीं देता, कोई समझ नहीं पाता। सोचता था, एक तू है जो समझती है, पर तू भी दुनियादारी की बातें करने लगी।'

बड़े प्यार से बोली, 'नहीं मेरे राजा नहीं। तुझसे इस जनम तो क्या सौ जनम में, मैं दुनियादारी की बातें नहीं करूँगी। तू दुनियादारी के लिए बना ही नहीं। पर सोच जरा चाची की बात। तू तो दुनिया भर का दुःख-दर्द बूझता है, महसूस करता है, उनके लिए छटपटाता है, और मां का दर्द तुझे नहीं महसूस होता ?'

मन ने कहा, 'मथुरा जाकर कान्ह ने यशोदा का दर्द कब जाना। जब राधा छूटी तो सारा जग छूटा, गोकुल छूटा, वृन्दावन छूटा।'

मैंने प्रत्यक्ष कहा, 'यही तो रोना है दुलरिया, मैं सबका दर्द बूझूं, समझूं, तड़पूं, छटपटाऊं और मेरा दर्द ! मेरा दर्द कोई नहीं समझता ? पता तक नहीं, एक चिट्ठी तक नहीं, दो बोल तक के लिए तरसना ? मिलने दे इस बार रम्मी को। पकड़कर गला घोंट दूंगा, छुट्टी लग जायगी। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

मेरे क्रोध का अन्त नहीं था। दुलरिया ने प्यार से मेरे केश व पीठ सहलाई और झर-झर नयन झरने लगे। मैं छटपटाने लगा। वह बराबर कहती रहीं, 'यूं नहीं घबराते भइया। वह फिर मिलेगी। हम सभी फिर मिलेंगे। वैसे ही खायेंगे, खेलेंगे, हँसेंगे, तू धीरज तो धर।'

मैंने जोर से कहा, 'नहीं, नहीं, नहीं। रम्मी नहीं आएगी, नहीं मिलेगी। मैं अब मर जाऊँगा दुलरिया रम्मी बिना और वह मेरा मरा मुंह भी देखने न आएगी जिन्दा कौन कहे।'

हाय जालिम ! तूने इतना प्यार क्यों किया ?

क्यों ?

## २०

धीरे-धीरे दुलरिया ने दीपावली पर गाँव जाने के लिए मुझे राजी कर लिया। मैं इस शर्त पर राजी हो गया कि 'भैया-दूज' को लौट आऊँगा दुलरिया के पास।

बोली, 'तू दीवाली करके सबेरे यहाँ आ जाना। फिर भैयादूज को मैं अपने राजा भैया को तिलक करूँगी, मिठाइयाँ खिलाऊँगी अपने हाथ से।'

मैं मुस्कराया। बोला, 'पर मेरे पास उपहार देने के लिए कुछ भी नहीं दुलरिया।'

'उपहार, तू तो धरती का सबसे बड़ा उपहार है रे, भगवान ने अपना एक बड़ा अंश पूरा का पूरा निकाल कर तेरे तन में रख दिया। बहुत से लोग इस नगर में कहते हैं तू भगवान का अवतार है। आदमी नहीं देवता है, तू क्या जाने।'

मैं मुस्कराया। बोला, 'किसका अवतार रे, राम का ?'

वह भी जोश भूल मुस्करा पड़ी, 'नहीं रे कृष्ण का।'

हम दोनों एक दूसरे का अर्थ समझ हँस पड़े।

मैं दीवाली पर गाँव गया। मकई व धान की फसल बह जाने से वहाँ भी बरबादी का ही नजारा था। 'हल-बैल बीज' की पुकार मची थी। सबको अपनी-अपनी लगी थी। दासा व दीपन ने मुझे घेरा कि मैं गाँव भर को नहीं तो कम से कम उनको तकावी दिलवा दूं। उनका विश्वास था कि मेरे कहने पर तहसीलदार तकावी दे देगा। पर मैं इस झंझट से दूर रहना चाहता था, दो दिन के लिए तो गाँव गया था फिर किस बूते पर यह रोग बेसाहता, फिर गाँव में औरों को भी तो तकावी चाहिए।

बावूजी से इस विषय पर साहस करके वात किया तो पता चला, तकावी ता खेत के रकबे के हिसाव से बँट चुकी है, दासा व दीपन भी लाए हैं, असल में वे बेसी चाहते हैं, वैल-बीज के लिए नहीं, पेट भरने के लिए।

समस्या सचमुच टेढ़ी लगी। और यह समस्या केवल दीपन व दासा की न थी बल्कि सारे गाँव की थी।

मैंने पूछा, 'और जिनके खेत नहीं हैं वे? उनको क्या मिला? वे कैसे जियेंगे?'

बाबूजी गम्भीर होकर बोले, 'वे भूखों मरने के लिए स्वतंत्र हैं, उनको कोई रोकेगा नहीं। सरकार तकावी उसी को देती है जो तकावी का कर्ज सूद के साथ लौटा सकें। लौटा सकने की कूबत खेत के रकवे से नापती है, समझे। फिर यह तकावी पेट भरने के लिए तो बँट नहीं रही है। खेत वोने के लिए, बैल-बीज के लिए वँटती है। खेत में उपज होगी तो तकावी वसूल हो जायगी। 'मारा' पड़ेगा तो भी वसूल होगी, सूद के साथ।'

'और उपज होने तक लोग जियेंगे कैसे?'

'सो तो वे ही जानें। इस देश में छत्तीस करोड़ लोग बसते हैं बेटे, आधे भी दो जून भरपेट रोटी नहीं खाते। मिलती ही नहीं, खाँय कहाँ से? जितने लोग हैजा, प्लेग से नहीं मरते उससे दस गुना वेसी 'भुखमरी' से मर जाते हैं, सो भी झट से नहीं, धीरे-धीरे, बरसों तक घिसटने के बाद मरते हैं, सरकार क्या करे? उसकी भी शक्ति की सीमा है ना? सदाबरत खोल देगी तो उसका खजाना कितने दिन चलेगा?'

मुझे गम्भीर देख बाबूजी बोले। उनके कथनानुसार मैं चुप रहा। पर सारी दोपहरी इस समस्या को गुनता रहा।

'पेट – भुखमरी, पेट – भुखमरी, भुखमरी – पेट।'

इस उलझन को लेकर मैं थोड़ी देर के लिए सारी दुनिया को भूल गया। चाची से भी जाकर दुलरिया के घर मिल आया। दुलरिया के बाबूजी उसी दिन शाम को आने वाले थे।

जब दोपहरी ढली व किसी काम में मन न लगा तो खेतों में घूमने निकल गया। हरी-हरी 'डीभी' निकल रही थी। कहीं-कहीं तो कोमल 'अँखुए' मिट्टी

का आँचल हटाकर नन्हें बच्चे-सा झाँकते थे, जैसे पल भर मुस्कराकर फिर आँचल में छिप जानेवाले हों।

मटर की बाढ़ चने व गेहूँ से तेज होती है। बैलों को जल्दी हरियाली मिल सके इसलिए बाबूजी ने पाँच बीघा मटर पहले 'बावग' में ही बो दिया था। जब टहलते-टहलते मैं उस खेत में पहुँचा तो क्या देखता हूँ कि सोनिया-मोनिया दोनों बहन मटर के 'साग' खूँट रही हैं। मुझे देख कुछ भयभीत हो उन्होंने 'खूँटना' बन्द कर दिया व अकचका कर मुझे टक-टक ताकने लगीं।

सोचती होंगी, मैं मना करूँगा। गाँव के नियम के अनुसार तो भद्दी-भद्दी गालियों से पहले उनकी खातिर करनी चाहिए, बिना छीले बाँस को उनके तन के सभी अंगों तक पहुँचाने की कसम खानी चाहिए। तब सारे साग छीन लेना चाहिए और उन्हें रोते-कलपते घर विदा करना चाहिए।

पर मुझसे यह सब कहाँ संभव था? वैसे उनको भी इतने की आशा मुझसे न थी। हाँ, नई-नई 'डीभी' को बरबाद न करने के लिए मैं मना करूँगा, ऐसा वे सोचती होंगी।

जब मैं पास पहुँचा तो सोनिया मुस्कराकर बोली, 'आ गए रज्जू भइया?'

'हाँ री।'

'कब आए?'

'आज सबेरे।'

'अभी रहोगे दो-चार दिन तो?'

'नहीं रे, परसों चला जाऊँगा।'

'क्यों, इतनी जल्दी क्यों? रम्भी बहन बिना मन नहीं लगता?'

'क्या पता?'

'तुम उदास बहुत लगते हो भइया। शायद सोचते बहुत हो।'

'मैं क्या सोचूंगा री?'

'यह, हम गरीबों का दुःख-दर्द, और क्या?'

'मैं उतना अच्छा नहीं सोनिया।'

'फिर रम्भी बहन की बात सोचते होंगे।'

मैं चुप रहा। वह बोलती गई,

'तुम कजरी तीज के मेले के बिहान चले गए। उस शाम को दुलारो बहन के घर मैं गई थी तो देखा रम्मी बहन की आँखें रोते-रोते सूज गई थीं। मैंने दुलारो बहन से पूछा तो बोलीं, 'जब से रज्जू गया है इसने एक पल रोना बन्द न किया।' और तीसरे दिन वे चली गईं।

मेरी आँखें डबडबा आईं। मैं दूसरी तरफ देखने लगा।

लगता है सोनिया को अपनी भूल मालूम हो गई। उसने झट से पूछा,

'अच्छा 'सहर' में दुलारो बहन से भेंट होती है भैया?'

'हाँ रे, उससे तो कल ही मिलकर आया हूँ।'

'वे भी तुमको बहुत मानती हैं भैया।'

'और तुझे नहीं मानती?'

हम दोनों मुस्कराए। बात गहरे में उतर रही थी। एक बार जी में आया पूछूं, रमनथवा ने कितने बोरा चिउड़ा उसे दिया? चोरीवाली रात वह चिल्ला क्यों पड़ी? उस रात जब मैंने टार्च फेंका था तो वह रमनथवा के साथ क्या घुस-फुस कर रही थी? दुर्गा फिर आया या नहीं? दुर्गा की निगाह उस पर है या मोनिया पर? मेलेवाली रात रमनथवा रात भर कहाँ रहा? सोनिया मेले में कहाँ रात को ठहरी थी? ऐन मौके पर सवेरे रमनथवा कैसे दुलरिया के पास पहुँचा?

इस प्रकार के बहुत सारे प्रश्न थे। बहुत-सी बातें थीं पर क्या एक भी मेरी जुबान पर आती?

मैंने पूछा, 'तू दीवाली के बर्तन मेरे घर इस साल नहीं लाई?'

'शाम को लाऊँगी भैया, दिन को साग के लिए इधर आ पड़ी।'

'अभी साग 'सरेह' में हुई कहाँ है जो खोंटती फिरती है?'

क्षीण मुस्कान के साथ बोली, 'है तो नहीं भइया, और होगी भी तो कौन खोंटने देता है? खेत में लात रखते ही सब 'बांस-मूसर' करने लगते हैं। यह तो तुम्हारा खेत है, इसलिए चली आई कि कोई बोलेगा नहीं। न आती तो आज रात को खाती क्या?'

मुझे ऐसा लगा जैसे किसी ने अनजाने छाती में घूंसा मार दिया हो। सोनिया की यह हालत। मैंने धीरे से पूछा, 'क्या तेरे घर में अनाज नहीं?'

'अनाज तो भैया, अनाजवालों के घर नहीं। कपूर की तरह उड़ गया फिर मेरे घर में कहाँ से होगा। मेरे पास न तो जर न जमीन, न खेत, न खलिहान। हम मजूर आदमी ठहरे, मजूरी करके पेट भरते हैं. इधर तीन महीने से मजूरी भी कहाँ मिली। किसके पास पैसा है जो मजूरी कराये। धान की सोहनी गई तब से धेले का काम नहीं किया, पेट कैसे चलेगा ? मकई होती, धान होता, कोदों होता तो कुवार में काटते, पीटते, बनिहारी मिलती तो मेरे घर मे भी चिउड़ा होता, चिउरी होती, 'दारा' होता, 'दारा' की फाटी' होती। क्या नहीं होता ?'

मेरा मन व्यथा मे भर उठा। मूक-व्यथा जिसकी कोई दवा नहीं। सोनिया की कहानी हमारे गांव में घर-घर की कहानी थी। क्या धनी, क्या गरीब, क्या खेतवाले, क्या मजूर।

मैं सोचने लगा, दीपन ठीक कहता है, जाड़े में दो महीने 'सागा-साहु' भार उठाते हैं दो महीने 'गादा-साहु'। फागुन लगते-लगते तो नया अन्न आने ही लगता है खेत से। गांव के लोग अगहन-पौष 'साग' पर काट देते हैं, मटर खेसारी, चने, सरसों के साग पर, आदमी जानवर में कोई फर्क नहीं रह जाता। फिर पौष लगते-लगते मटर खेसारी के हरे-हरे 'दाने' आने लगते हैं। दो महीने पौष-माघ उसी पर कटते हैं।

मैंने पहले कभी इन बातों को सोचा भी न था। सोचता था, मेरा घर खुशहाल है, दुलरिया का घर खुशहाल है, रेशमा का घर खुशहाल है, बस सारी दुनिया खुशहाल है।

आज लगा यह कल्पना कितनी थोथी थी। सोचने लगा जब बड़ा होऊँगा तो हिन्दुस्तान के घर-घर को अनाज से भर दूँगा। कोई पेट की भूख से न मरेगा और चाहे जैसे मरे।

'फाटी' पर याद आ गई एक रम्मी की बात परसाल की। 'फाटी' मकई के सत्तू की भूसी को कहते हैं जो सफेद-सफेद, हल्की-हल्की-सी होती है। इसफगोल की भूसी-सी और मुँह की साँस से भी उड़ पड़ती है।

रेशमा यही फाटी आँचल में लेकर गुड़ के साथ खाने निकली। मेरे पास आई तो मैंने पूछा,

'क्या है रम्मी ?'

'तिल के लड्डू।'

वह जानती थी कि मुझे तिल के लड्डू बहुत पसन्द हैं। मैंने कहा,

'मुझे भी दे।'

'उहुँऽ।'

'दे ना ?'

'जा के माँग ले माँ से, मैं क्यों दूँ अपना ?'

'देगी सीधे से या ?'

'अच्छा ले।'

उसने कहके आँचल पसार दिया व खिलखिलाकर हँस पड़ी। मैं गुस्से में आ गया इस 'फाटी' को देखकर। यह भूसी मुझे पसन्द न थी। मुझे शरारत सूझी, मैंने आँचल में एक फूंक मारी व सारी फाटी फट से उड़कर उसके मुंह, नाक, गाल व बालों में भर गई। काले-काले उलझे केश, श्वेत चमकते 'फाटी'-कणों से भर गए जैसे बर्फ पड़ी हो या उसके केशों पर गरी कुतर कर किसी ने डाल दी हो।

उसने मेरा पीछा किया, मैं भागा। लीची के पेड़ तले मैं पकड़ा गया। उसने मेरी कलाई पकड़कर उमेठी व गुड़ का टुकड़ा मेरे मुँह में ठूंस दी। गुड़–जो मुझे काफी अच्छा नहीं लगता। जब उसने मेरा हाथ छोड़ा तो अपने मुँह में गुड़ का आधा टुकड़ा काट दूसरा आधा मैंने उसके मुंह में ठूंस दिया। यह कोई आसान काम न था मेरे लिए, सो भी रेशमा-सी चीमड़ लड़की।

आज वह फाटी रस-हीन हो गई व गुड़ की मिठास दर्द बन कर रह गई।

मैंने सोनिया से पूछा,

"मुझे भी साग खिलाएगी ?"

"क्यों नहीं भइया, तुझे अच्छा लगेगा ?"

"मुझे मटर का साग बहुत पसन्द है।"

" तो लो ना" उसने आँचल पसार दिया। उसका भरा यौवन निखर आया। सोनिया सचमुच हसीन थी। मैंने एक निगाह डाली व आंखें नीची कर लीं। मैंने साग देखकर कहा,

'ये तो एक कली तीन पत्ते, चार पत्ते हैं सोनिया ?"

वह मुस्कराई, बोली, "हम [illegible] हैं न भइया, एक कली एक पत्ते से हमारी गुजर नहीं होगी। तुम्हारे लिए अलग से चुन देती हूँ। क्या लोगे ? एक कली एक पत्ता या एक कली दो पत्ता ?"

वह हँसी, मैं भी हँस पड़ा ! सोनिया कितना महीन मजाक करती है। मैंने कहा,

"मुझे तो एक कली एक पत्ता पसन्द है।"

चाय की पत्तियाँ चुननेवाली लड़कियों में यह मज़ाक कितना चलता है, "एक कली दो पत्ते, एक कली तीन पत्ते, एक कली चार पत्ते।"

उसने मोनिया से कहा, "देख मोनिया जल्दी-जल्दी रज्जू भइया के लिए लिए थोड़ा सा साग चुन दे तो, एक कली दो पत्ते, बेसी नहीं।"

"दो पत्ते नहीं सोनिया एक कली एक पत्ता।"

वह हँसी, बोली, "तुम्हें तो भइया सच पूछो तो दो कली एक पत्ता चाहिए पर ऐसी मटर है किस खेत में ?"

हम दोनों हँस पड़े। आज पहले-पहल पता चला कि सोनिया की बुद्धि कितनी तेज है, तन ही नहीं उसका मन व मस्तिष्क भी सुन्दर है। मैंने कहा, "मगर बिना नमक-मिर्च के तो साग मैं खाता नहीं।"

सोनिया बोली, "सो तो तुम्हारी राधा भी नहीं खाती। बड़ी ठेस वाली है। है रे तेरे पास नमक-मिर्च ?"

मोनिया धीरे से बोली, "जूठी है।"

उस बन्द कली को यूँ धीरे से खुलते देख एक बार सोचा कह दूँ, 'जूठी ही सही दे दे।' फिर सोचा 'छि: यह कौन रम्मी है ?'

मैं चुप रहा। सोनिया बोली, "फिर जा दौड़के घर से नमक व हरी मिर्च ला, कोई अँचार हो तो लेते आना।"

मैंने कहा, "मेरे घर चली जा सब मिल जायगा।"

और मोनिया आँचल कमर में खोंस हिरनी सी छलांग मारती भागी मेरे घर की ओर उसी कुदाली से कटे पंजे पर।

सोनिया हमारे लिए साग खोंटने लगी, मैं भी साग खोंटने लगा। साग टूंगने लगा और मेरे कान में गूँजने लगा,

मटर के सग्गा
बड़ मिठ लग्गा,
रज्जू बेटा,
चाम लपेटा;

रम्मी चिढ़ाया करती थी। मैं भी जोड़ता था,

मटर के सग्गा
बड़ मिठ लग्गा;
रम्मी बिटिया
चाम चिमटिया;

टूँगते-टूँगते मैंने पूछा, "गाँव में कोई नया समाचार सोनिया?"

"कौन कौन सा सुनाऊँ तुम्हें? तुम तो-महीनों का समाचार नहीं जानते होगे?"

"बात तो कुछ ऐसी ही है।"

"महादेव पण्डित के घर का सुने हो?"

"क्या?"

"पण्डिताइन के भादों में छठीं लड़की पैदा हुई। पण्डित बड़े नाराज हुए इतनी लड़कियों का दहेज-तिलक कहाँ से लाएँगे। सब खेत व घर बेच दें तो भी इनकी शादी न होगी। शादी न होगी तो जगहँसाई होगी, मुँह में कालिख पुतेगी। उन्होंने पहले से ही धमकी दे रखी थी कि इस बार लड़की होगी तो तुझे घर से निकाल दूँगा।"

"फिर?" दुःखी मन मैंने कहा।

"लड़की जिस रात को हुई उसी रात दोनों में कुछ बोलचाल हो गई। पण्डित तो दइया भी न बुलानेवाले थे कोई और खबर कर आया। तीसरे दिन रात को, छोटी-बड़ी सब लड़कियों को लेकर वे दोपहर रात गए पानी लाँघती-लाँघती नदी की ओर चलीं डूबने। भला उस भादों के दरियाव में उनका कहीं थाह मिलता?"

मैं एकदम से घबरा गया। बोला, 'फिर?'

"वह तो कहो कि खड़ानन पण्डित अहिरटोली से भूत झाड़कर आ रहे थे, सो उन्होंने देखा व टोका। पण्डिताइन को तो न पहचाने, पर बच्चों को पहचान लिए व घेर-बाँध कर लाए।"

मेरा मन और भी भारी हो गया। सोचा था सोनिया मिल गई तो थोड़ा चहक लेंगे जी बहल जायगा, यहाँ लेने के देने पड़े। सोचने लगा हमारे देश की यह कैसी रीति है ? घर में खाने का ठिकाना नहीं, पर चाहिये ढेर सा तिलक-दहेज। प्रकृति का, भगवान का साधारण नियम, हर लड़के को एक लड़की चाहिए, हर लड़की को एक लड़का चाहिए। फिर अपने-अपने पसन्द की क्यों नहीं चुन लेते ? इसमें ऊपर से लेना-देना कैसा ? क्या कोई जानवर है जो खरीदते-बेचते हैं।

पर शायद हैं। उससे भी बदतर हैं।

पण्डिताइन ठीक करती थी।

इस समस्या का दूसरा हल क्या था उसके पास ?

मोनिया मेरे घर से नमक, हरी मिर्च, आम व अमरा के अँचार लेकर आ गई। बड़ी खुश थी, दौड़ने से हाँफ रही थी। मेरे सामने आने से पहले उसने कमर से आंचल खोलकर छाती पर डाल लिया।

जब मेरे पास आकर नमक, मिर्च, अँचार देने लगी तो सोनिया आँचल में एक कली एक पत्ते, दो पत्ते वाले साग लेकर आ गई। पर खाने के बदले मैंने कहा, 'मोनिया पसार आँचल।'

उसने आँचल पसारा और मैंने अपने दोनों हाथ में भरे टूँगे हुए साग को उसके आँचल में डाल दिया व बोला, 'इसे तू खाना, मेरा टूँगा साग, नमक व मिर्च के साथ, अँचार के साथ भला।'

और उसके सहमे सकुचाए गाल पर एक चपत जमाकर चल दिया चुपचाप।

दोनों अवाक् मुझे ताकती रह गईं।

कुछ दूर जाने पर सुना, सोनियां कह रही थी, 'अजीब है यह रज्जू भैया, किसी का दुःख-दर्द सुनकर इतना दुखी हो जाता है कि........।'

'नहीं रे, रम्मी बहन की याद आ गई होगी, वे होतीं तो उनके हाथ साग भी खाते व नमक, मिर्च, अँचार भी लेते। मेरा दौड़ना बेकार गया।'

मैं उनकी बातें सुनने के लिए धीरे-धीरे चलने लगा। सुना सोनिया कह रही थी,

'चल घर चलें। धन्य तेरे भाग्य जो उन्होंने अपने हाथ का टूँगा साग तुझे दिया। गाँव के लोग सच कहते हैं ये कोई अवतार······ ?'

'पर मैंने क्या दिया रे ?' मोनिया बोली।

अब तक मैं दूर निकल गया था। मन बार-बार कहता था, 'मैं सब कुछ पा गया, मोनिया, बिना तेरे दिए ही। मुझे स्नेह चाहिए और बस। और कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।'

## २१

दीवाली आई। पिताजी ने छः-सात मजूर लगा दिए थे सफाई पर तीन-चार दिन से। आज वे जल्दी-जल्दी पुताई कर रहे थे। घर के सारे सामान तितर-बितर पड़े थे।

मेरा मन रम्मी के इधर-उधर बिखरे सामानों को देखकर रो पड़ा। बार-बार सोचने लगा—घर-घर में दीवाली है, मेरे घर में – घर में तो क्या मन में अँधेरा छाया है।

मैंने सोनिया – मोनिया को रख लिया था घर के सामान सँभालने में मदद करने के लिए। मेरे जिम्मे भी काम हो सकता था। बहुत हो सकता था, पर मेरा रुख देखकर माँ ने कुछ भी करने को कहा नहीं।

मैं बुआ वाले कमरे में चुपचाप एक मोढ़े पर बैठा टुकुर-टुकुर हर सामान को इधर से उधर हटाये जाते देखता। बोलता कुछ भी नहीं था। बहुत साहस कर एक बार सोनिया ने कहा,

'भैया, यूं चुप क्यों हो ?'

'क्या करूँ री ? क्या बोलूँ ?'

'रम्मी बहन············।'

'उसका नाम मत ले मेरे सामने, मैंने तेज होकर कहा।

इतने में एक वृद्ध भिखारी दर्दीली आवाज में एकतारा पर गाता चला आया। उसका स्वर परिचित था। परिचित मुझे, परिचित रम्मी को। वह सदा भीख लेने से पहले कहा करता,

'दोगे तो भी चलेगा,
नहीं दोगे तो भी चलेगा,
चलना तो है ही।'

रम्मी पूछा करती, 'नहीं देंगे तो कैसे चलेगा बाबा ?'

वह बोलता, 'भगवान चलायेंगे बिटिया।'

'भगवान कहाँ रहता है बाबा ?'

'अभी तो तेरे हाथ में है रानी बिटिया।' और हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़ते। जब वह चला जाता तो मैं कहता,

'रम्मी तेरे हाथ में भगवान हैं ना ?'

'हाँ, बाबा कहता तो था।'

'तो ला मैं भगवान को चूम लूँ।'

'और अगर भगवान ने चपत जमा दी तो ?'

'ही-ही-ही—खी-खी-खी' हम दोनों हँस पड़ते।

बड़े दर्दीले गीत मोटी भर्राई आवाज में यह भिखारी गाया करता। दीवाली वाले दिन गा रहा था,

कौन गली गये श्याम ?
झूठा धीरज आस दिलाकर,
अजब अचानक बाँह छुड़ाकर,
गए वो हम रह गए हाय,
दो टूक कलेजा थाम।
कौन गली गए श्याम ?

मेरा कलेजा सचमुच टूक-टूक होने लगा। गीत से जल्दी छुट्टी पाने के लिये मैंने अंजुली चावल से भरी व बाबा को भीख देने गया। उसने भीख लेते-लेते पूछा,

'आज रानी बिटिया कहाँ है भैया ?'

'भगवान के पास चली गई बाबा।'

मेरे मुँह से निकल पड़ा। भिखारी अवाक् रह गया। झोली उसकी फैली की फैली रह गई। मैं चावल डालकर घर में भागा व फूट-फूटकर रोने लगा। सोनिया सब कुछ समझ गई व मेरे पास आ अपने आँचल से आँसू पोंछने लगी। उसने भिखारी को मेरा दिया हुआ उत्तर सुन लिया था।

बोली, 'भइया धीरज रखो, ऐसा नहीं कहते।'

और वह भिखारी था जो दूसरे गीत की कड़ी गाता दरवाजे से जा रहा था,

'माई री मोरी
राधा चुराई बाँसुरिया।'

सोनिया का टेक व आश्वासन भरा प्यार पाकर मैं और भी रो पड़ा। जी भरके रोता रहा। मोनिया काम करती रही व बार-बार चकित होकर मुझे ताकती रही।

दोपहरी के बाद जब वे दोनों बहन आईं तो खँचिया भर-भरके सिर पर बर्तनों के ढेर लेती आईं। मोनिया की खाँची खिलौनों से भरी थी, सोनिया की अन्य बर्तनों से। उनको ये खबर नहीं कि इस घर में अब खिलौनों से खेलने वाला न रहा। युग-युग से बँधे दस्तूर के हिसाब से देती आई हैं और देती रहेंगी।

माँ ने बर्तनों को सहेजना शुरू किया व ब्यौरा लेने लगीं। एक छोटी-सी हड़िया पर माँ को शक हुआ शायद टपकती हो। पानी भरवाकर उसमें रखवा दी, फिर उठकर जाती हुई बोली,

'रज्जू, तू इन खिलौनों का हिसाब ले ले।'

खिलौने? वही तो खिलौने जिन्हें पर-साल लेते-देते रम्मी के साथ मैंने लूट मचा दी थी। मैं कहता,

'रम्मी, तेरी गुड़िया की नाक टेढ़ी है।'

'और तेरे घोड़े की टाँग टेढ़ी नहीं है?'

'यह सिपाही दे दे, मेरे घोड़े की लगाम पकड़ेगा।'

'नहीं रे, फिर गुड़िया की पालकी के साथ कौन जायगा?'

मोनिया खिलौने निकाल-विकाल कर रखने लगी, धीरे-धीरे मीठी आवाज में बोलती जाती,

'दो हाथी, पांच घोड़े, पाँच सवार, दस सिपाही, दो ऊँट, दो पीलवान, तीन पालकी, बारह कहार, एक गुड्डा, एक गुड़िया, दो बांदियाँ ........।'

'ये सब क्या होगा री ?'

'रम्मी जीजी के लिए है।'

'कहाँ है रम्मी ? कहाँ है रम्मी ?' मैं चिघाड़ उठा। हाथ से खिलौनों को पटक दिया व एक पालकी दो घोड़े टूट गए। पानी से भरी हँड़िया को देखा, लगा उसमें 'घी' है। मारा लात से वह ढेर हो गई, पानी बिखर गया। मैं उठकर कमरे में चला गया।

एक दीवाली को ऐसी हँड़िया में 'खराया' हुआ पानी-सा घी रम्मी दासा के घर से ला रही थी तो आँगन में हड़िया उसके हाथ से छूट पड़ी थी व घी बिखर गया था। उस दिन बुआ ने रम्मी को पीटा था। उसी की स्मृति ताजी होते ही मेरा दिमाग गरम हो गया। जल उठा।

रम्मी, रम्मी, रम्मी।

मेरी जान लेकर रहेगी यह रम्मी।

माँ यह शोरगुल सुनकर भीतर से आई। आँगन में यह कुकाण्ड देखी व मेरे पास आ मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोली,

'यूँ गुस्सा नहीं करते मेरे लाल। इन दोनों को कितनी चोट पहुँचेगी। फिर रम्मी क्या सोचेगी यह सब सुनेगी तो ? और यहाँ आएगी तो क्या देखेगी, कि तूने उसके दीवाली के खिलौने तोड़ दिये ?'

मैं भीतर ही भीतर चहका। आशा की एक रेखा खिंच कर रह गई, जल की रेखा सिमिट भी गई। मैंने कहा, 'अब वह नहीं आयेगी माँ, कभी नहीं।'

'तू क्या जाने, मैंने सुना है पूनो तक वे लोग आने वाले हैं लखनऊ से। रेशमा के बाल उतारने हैं व गंगा 'ओहारना' है।

'पर यहाँ तो नहीं आएगी ?'

'क्या पता, आ भी सकती है।'

फिर तो क्या था मैं मारे खुशी के उछल पड़ा व दौड़कर गया सोनिया-मोनिया के पास जो अवाक् हाथ पर हाथ धरे बैठी थीं। संभाल-संभाल कर एक-एक खिलौनों का हिसाब लेने लगा। जब सब निबट गए तो मैंने कहा, उत्साह में भरकर,

'सोनिया हमलोग घर में वृन्दावन सजाएँ व रास-लीला बनाएँ तो कैसा ?'

'बहुत अच्छा भैया।' वह खुश होकर बोली।

'तुम दोनों मेरी मदद करोगी ?'

'क्यों नहीं' दोनो बोलीं।

'जल्दी-जल्दी भाग तो न जाओगी ?'

'नहीं।'

मैं जल्दी-जल्दी खिलौनों को घर में ले जाने लगा। मेरे इस परिवर्तन से वे दोनों खुश हो गईं। सोनिया ने मोनिया को भेजा वृन्दावन के लिए गाएँ, ग्वालबाल, ग्वालिनें वगैरह लाने के लिए। राधा-कृष्ण की जोड़ी व बाँसुरी जरूरी थी। मैंने भूसे को हरे रंग में रँग के वृज-भूमि बनाया, पहाड़ तथा फूलों-वनों का सृजन रंग-बिरंगे कागजों से किया।

वे दोनों निरन्तर दौड़-दौड़कर मेरी मदद करती थीं। काम करते-करते बीच में सोनिया ने छेड़ा,

'रज्जू भइया ?'

'क्या रे ?'

'तुम्हारी राधा आनेवाली है ?'

'मेरी राधा यह क्या बैठी है।' मैंने हँसकर मोनिया की ओर संकेत किया। हम तीनों हँस पड़े। वातावरण में मिठास घुल गया। सोनिया बोली,

'सच-सच बोलो।'

'सुनता तो हूँ।'

'कब तक ?'

'क्या पता।'

'फिर भी ?'

'पूनो तक।'

सोनिया मुस्कराई मोनिया भी। सोनिया धीरे से बोली,

'तभी यह वृन्दावन सज रहा है, पूनम की रात में, चांद की चाँदनी में रास रचाओगे।'

'धत्।'

वृन्दावन सज गया। रास-लीला का दृश्य भी जचा दिया। तब रम्मी के खिलौने एक शीशे की आलमारी में सजाने लगा।

सोनिया बोली, 'अभी तो तुम इनको तोड़ रहे थे भैया ?'

'हाँ री, मन की गति कोई जानता है ?'

'अब क्यों सजाने लगे ?'

'सोचता हूँ रम्मी आए तो यह न कहे कि उसके न रहने पर रज्जू ने उसकी गुड़िया का अनादर किया, उसके हाथी, घोड़े, पालकी बिखर गए। उसके भालू, शेर भाग गए। मैं चाहता हूँ वह जब भी आये ये गुड्डे-गुड़िया, ये पालकी, ये बाराती, ये हाथी-घोड़े, उसका इन्तजार करते रहें। यह वृन्दावन उसकी राह में आंख बिछाए रहे। दो दिन, चार दिन, दस दिन, चाहे दस युग में वह आए, यहां आंखें बिछी रहें उसके लिए।

'और अगर रम्मी जीजी कभी न आएं ?'

मोनिया बोल गई। अनाड़ी है, बेकार में ठेस दे दी। रंग में भंग हो गया। मैं बरस पड़ा,

'कभी न आए ? .... .... ....' फिर मैंने धीरे-धीरे मन में कहा , तो ये प्रान चले जायेंगे उसके पास।'

दोनों चुप हो गईं।

हमारी दीवाली सज गई सोनिया-मोनिया के करते। सैकड़ों दीपों से घर-आंगन जगमगा उठा। वृन्दावन मुस्करा उठा। मेरे अन्तर में भी आशा का एक दीप जल गया।

घड़ी भर रात गए जब वे दोनों जाने लगीं अपने घर तो मैंने दीवाली की मिठाइयों से उनके आँचल भर दिए।

आज मैं मारे खुशी के क्या न करता। सोनिया बोली,

'मिठाई खिलाओगे नहीं भैया, अपनी राधा को ?'

मैं मुस्कराया। वृन्दावन की जगमग ज्योति कमरे में बिखर रही थी, उसी के प्रकाश में मैंने मोनिया का दमकता मुख देखा व थाल से एक लड्डू लेकर कहा, 'खोल दे मुँह, तू भी क्या कहेगी।'

और उसके खुले मुँह में लड्डू ठूंस दिया। हम तीनों खिलखिलाकर हँस पड़े। अब मैंने कहा,

'तू भी आ सोनिया, खोल मुँह।' और उसके मुँह में भी एक लड्डू ठूँस दिया। मैंने कहा, 'यह दीवाली है।'

हम तीनों फिर हँसे। पर जाने से पहले उन दोनों ने हठ किया कि मैं भी मुँह खोलूँ व मुँह खोलते ही दोनों ने बर्फी का एक-एक टुकड़ा शालीनता से मुँह में डाल दिया। बोली,

'यह दीवाली है।'

'रज्जू भइया युग-युग जियो' सोनिया बोली।

'तुम्हारा प्यार' मोनिया मुस्कराई।

मैं इन मधु के छींटों से तर हो गया।

माँ ने मेरी आरती उतारी।

## २२

धीरे-धीरे पूरा साल खिसक गया पर रम्मी का कुछ भी पता मुझे न चला। एक दिन राय जी पधारे मेरे होस्टल में मुझे खोजते-खोजते और बोले, 'देख राजेश, पूनो के मेले में स्वयंसेवक चाहिये, तुमको यह काम करना पड़ेगा। मन ने कहा, रम्मी इस मेले में आ सकती है।' मैंने लाखों की सेवा का भार उठा लिया। उनमें एक रम्मी भी हो सकती थी।

मैंने सौ स्वयंसेवकों की टोली का गठन करने का वचन उन्हें दे दिया व सूचना वगैरह पत्र में दे देने को कहा। रायजी पांच सौ, हजार के फेर में थे, पर यह रोग मेरे वश का नहीं था। मेरे अनुभव ने बताया था कि बहुत से आदमी होने से काम कम 'शो' बेसी होता है, अनुशासन ढीला पड़ जाता है और सेवकों की ही 'सेवा' में सारा समय निकल जाता है।

मैंने अपनी टोली को घाट सौंपे जहाँ लाखों की संख्या में नर नारी स्नान कर स्वर्ग में सीट सुरक्षित करने वाले थे, चाहे इस धरती पर नरक ही क्यों न भोगते हों।

रम्मी से मिलने की कोई तरकीब नहीं सूझ रही थी। दुलरिया के साथ मैंने लम्बी मंत्रणा की और यह तय पाया कि उसके पिताजी रम्मी के पिताजी को आमंत्रित करें। मेले से लौटकर एक दिन कम से कम उनके साथ बिताने के लिए। यूँ भी कर सकते हैं कि दिन को मेले में रहें व रात शहर में बिताएँ।

दुलरिया ने इस आशय का एक पत्र अपने ससुर से लिखवाकर तथा एक स्वयं लिखकर रम्मी के नाम उसके गाँव के पते से डलवा दिया। इस प्रकार हमलोग पानी में जाल डालकर मछली का इन्तजार करने लगे।

मगर अभी तो यह भी पता न था कि जिस तालाब में जाल फेंका गया हैं उसमें मछली है भी या नहीं।

चतुर्दशी की रात को तीसरे पहर से ही स्नानार्थियों की भीड़ घाट पर आने लगी। तीन बजे सवेरे स्वयंसेवकों को कैम्प से समुचित आदेश के साथ विदा करके मैं मोटर लंच पर चक्कर काटने लगा। इस बार फिर कलक्टर ने दो मोटर लंच हमें दे दिया था। दूसरी लंच हमारे उपनायक के पास थी।

आकाश में दहकता चाँद, दूध सी चाँदनी, गंगा का निर्मल श्वेत श्याम जल कुछ इतना मोहक लगा कि इस चाँदनी में प्रभात वेला के स्नानार्थी देव देवी से लगे।

मगर गंगा की काली चिकनी मिट्टी पर घाटों में गँवार लोगों के जल गिरा देने या गीले कपड़े के साथ आने जाने से 'बिछलन' बढ़ गई। लोग धमाधम गिरने लगे। मैंने लंच में भोंपू से एलान किता कि हर घाट पर दो स्वयंसेवक बालू लाकर सीढ़ियों पर डालें।

हमारें स्वयंसेवक सचेत व चुस्त थे। उन्होंने घाट को सबेरा होने तक सूखा रखा पर सूरज निकलते ही भीड़ दस गुना बढ़ गई। अनुशासन कठिन होने लगा। सूरज का गरम-गरम लाल गोला पूरब में गगा के जल से निकला व स्नानार्थियों पर मुस्करा पड़ा। सभी निहाल हो गये। एक के बदले दो-दो, चार-चार डुबकियाँ मारने लगे।

मैं निरन्तर घाटों का चक्कर काट रहा था। कहीं भी कोई डूबने की दुर्घटना हो तो झट से पहुँच जांय।

पर वे आँखें जो निरन्तर रम्मी को खोज रही थीं स्नानार्थियों की भीड़ में। ऐसे मौकों पर कोई जनाना-मरदाना घाट तो होता नहीं। सब एक ही घाट पर नहाते हैं, एक परिवार के लोग साथ रहना पसन्द करते हैं।

पहली टोली जो तीन बजे से आई हो, आठ बजते-बजते विश्राम के लिए चली गयी। उसका स्थान दूसरी टोली ने लिया। ताजे स्वयंसेवक, पूरी चुस्ती व फुर्ती से काम करने लगे। घाटों की बिछलन तो इतनी बढ़ गई कि स्वयंसेवक की मदद बिना किसी का भी चढ़ना-उतरना मुश्किल होने लगा। स्वयंसेवकों को आज्ञा थी, बच्चे बूढ़े व स्त्रियों को सहारा देने का। पर यहाँ तो नवजवान लड़कियाँ भी हाथ ऊपर उठा स्वयंसेवकों का सहारा माँगतीं, वे बिचारे सहारा देते, उनकी बाँहें पकड़ कर सहारे से घाट के ऊपर ले जाकर छोड़ आते।

मैंने देखा कहीं-कहीं इस क्रिया में दोनों पक्ष खूब रस लेते। मुस्करा पड़ते, जानबूझकर भी फिसलने लगते। मैंने मन ही मन सोचा, जब यही सृष्टि का नियम है, मानव से देव तक, प्रकृति से पुरुष तक जीव से ब्रह्म तक तो मैं क्या करूँ।

सेवकों को इस प्रकार सेवा का उपहार कभी-कभी किसी की मधुर मुस्कान या गुदगुदी भरे स्पर्श से मिल जाता। बच्चे तो ऊपर पहुँच कर किलकने लगते। बूढ़े–बूढ़ी आशीष से भर देते। मैंने सोचा, चलो क्या यही कम है सेवा के बदले।

नौ बजते-बजते मेरा लांच जब सहस्त्रों नारियों के झुण्ड में चक्कर काट रहा था तभी एकाएक मन को संदेह हुआ किसी ने डुबकी मारी, रम्मी सा तन लिए। भ्रम-निवारण के लिए पास आया तो देखा पन्द्रह सोलह वर्ष की लड़की गीले कपड़ों में सूर्यनारायण को जल दे रही है। कमर बराबर जल में खड़ी होकर सूर्य की उज्ज्वल किरणों से उसका कमल मुख चमक रहा है। जल अँजुली में भरके उठाने से गीले कपड़ों में चिपकी उसकी सारी देह विकसित हो उठी थी, केशों से जल बूँद-बूँद रस-सा टपक रहा था।

मैं हैरान रह गया। लांच लेकर बिल्कुल पास चला गया। लड़की तेज पड़ी, 'हे दिखाई नहीं देता ? गंगा में और कहीं जल नहीं तुम्हारे लांच के लिए ?

'जल तो बहुत है देवी, पर ऐसे नहानेवाले नहीं।'

तमक कर बोली, 'तू कौन ?.... .... .... अरे रज्जू ! भैया !'

'हाँ रे रम्मी, तूने पहचाना नहीं ?

'कैसे पहचानती, तू कितना बड़ा हो गया, फिर यह सैनिकों के लिवास।'

'और तू बड़ी नहीं हुई ?'

'उहुँऽ।'

'किसके साथ आई है ?'

'बाबूजी के साथ व अम्मा भी हैं, वो देख।' उसने किनारे पर दिखाया।

'बुआ नहीं आई ?'

'नहीं, अच्छा तू चल हमें कपड़े बदलने दे।'

'ठीक, मैं पाँच मिनट में आया, तू ऊपर घाट पर मेरा इन्तजार करना। फिर न कहीं भाग जाना।'

वह मुस्करा पडी। बोली, 'देर करेगा तो क्या करूँगी।'

हमारी खुशी का कोई अन्त न रहा! जी में आता गंगा में कूद पड़ूँ व घसीट लूँ रम्मी को भी। दोनों हंस के जोड़े की तरह तैरते-तैरते चले जायँ अनन्त की ओर। न तो गंगा के धार का अन्त हो न हमारे तैरने का।

दिल जोर-जोर से धड़कता। मन को विश्वास न होता कि रम्मी मिली है, सचमुच।

मैंने अपने उपनायक से कहा कि मैं तथा मेरा लांच दोनों छुट्टी पर रहेंगे घंटे डेढ़ घंटे के लिए फिर हम आ जायेंगे। हमारे घर के लोग आए हैं।

फिर लौटकर रम्मी वाले घाट पर आया तब वह कपड़े बदलकर ऊपर जा चुकी थी। लांच रोककर ऊपर गया। बुआ व फूफाजी के चरण छुए। रम्मी चुपचाप खड़ी मुस्कराती रही। उसका यौवन और भी भर आया था। जार्जेट की श्वेत साड़ी पहने थी जिस पर लाल फूलों की किनारी लगी थी। ब्लाउज भी नन्हीं-सी चुस्त, लाल फूलों वाली थी। ढेर-सा वक्ष, गला व पेट तथा पीठ खुली थी। गले में हीरे की नेकलेस गजब ढा रही थी। कान के इयरिंग डोल-डोलकर उसके सौन्दर्य को दुगुना कर रहे थे। एक हाथ में काँच व सोने की ढेर-सी चूड़ियाँ व दूसरे में कलाई पर सोने की रिस्ट वाच थी। बिना सँवारे हवा व धूप में सूखने के लिए छोड़े गए काले-काले केश लहरा रहे थे व कमर को छू रहे थे। अब वह गाँव की गँवार रेशमा न थी। आँचल का पल्ला कमर पर घुमाकर छाती के बीच से लपेटती हुई कंधे के पार उसने कमर में खोंस लिया था जिससे कमर के ऊपर के तन के सौन्दर्य-प्रदर्शन में कोई बाधा नहीं पड़ती थी।

और उसकी आँखें कितनी बड़ी-बड़ी हो गई हैं।

लगता है कमल-कली रोज एक पंखुड़ी खोलती है। अब तो उन पर धार भी पड़ने लगी है।

मैं ठगा-सा देखता रह गया। जाने कब तक हम यूँ खड़े रहते अगर फूफाजी न कहते बुआ से,

'देख यही रज्जू है, जिसकी तस्वीरें वाढ़ पीड़ितों की सहायता के सिलसिले में रोज पेपर्स में निकलती थीं।'

'ओह, यही मेरा लाल है? अभी तो बच्चा है।' बुआ बोलीं।

'पर काम करने में तो बड़े-बड़ों के कान काटता है।' फूफाजी बोले।

'फिर अपना कान सँभाल के रखियेगा बाबूजी।' रम्मी बोली, सभी मुस्करा पड़े। क्या रम्मी के भी मजाक होते हैं, मैं तो निहाल हो गया। फूफाजी बोले,

'मैं इतना बड़ा आदमी नहीं जो यह मेरे कान पर हाथ साफ करेगा।'

हम फिर हँसे। मैंने कहा,

'चलिए न थोड़ा सा लांच पर आपको मेले का दृश्य दिखा लाऊँ।

'तू यहाँ फिर सेवा में है ना?

'जी हाँ।'

'कल फिर तेरी तस्वीरें पत्रों में देखी थीं, रेशमा लाकर दिखा रही थी।'

रेशमा ने मुस्कराकर आँखें नीची कर लीं, वे ही बोलते गए, 'मुझे तथा अपनी बुआ को तो छोड़ दे, गंगा के पानी पर ठंढक बेसी लगने का भय है, इनको थोड़ी सी बाई की शिकायत रहती है। चाहे तो रेशमा को घुमा ला! क्यों बेटी जायगी?' उन्होंने पूछा।

'कहीं इसने मेरा कान काट लिया तो?' रेशमा मुस्कराई।

'तू अपने को इतना बड़ा समझती है?' मैंने कहा।

और बात समाप्त हो गई। मैं उसका हाथ पकड़ मोटर लांच पर ले गया! जाते-जाते फूफाजी बोले,

'डिस्ट्रिक्ट इंजिनियर के कैम्प में आ जाना, मैं वहीं मिलूँगा।'

'अच्छा।' मैंने कहा।

और अब?

अब तो क्या? यह रम्मी है व मैं हूँ, यह लांच है वह गंगा का विस्तृत पाट है। किनारे-किनारे नहानेवालों की भीड़ है, उनमें दूर-दूर हम पानी पर फिसलते भाग रहे हैं, भाग रहे हैं, पर कहाँ?

हमारा लाँच गंगा की छाती चीरता हुआ सर-सर भागने लगा। जल की नन्हीं-नन्हीं सहस्र-सहस्र बूँदें मोती की लड़ियों सी हवा में चमक उठीं! छोटा सा इन्द्रधनुष हमारे पीछे-पीछे भागने लगा। सारा दृश्य इतना रागमय हो गया कि हमारी खुशी समा न पाती मुझमें।

रम्मी तथा मैं अगल-बगल में बैठ गये। उसका आँचल हवा की लहरों से फर-फरा उठता जिसे काबू में करना एक समस्या थी। अब हम धीरे-धीरे एक-दूसरे से खुलने लगे। थोड़ी देर तक तो यूँ मौन थे जैसे यकीन न पड़ रहा हो कि हम साथ हैं।

एकाएक हमारी आँखें एक साथ उठीं व हम मुस्करा पड़े। मैंने उसकी बाँह पर हाथ रखकर दो-तीन जगह उँगलियों से छुआ। वह मुस्कराती हुई बोली,

'अभी यकीन नहीं होता कि हम साथ हैं?'

'नहीं रे, देखता हूँ कोई छाया तो नहीं पास में बैठी है।'

वह मुस्कराई बोली,

'तू तो ऐसा भूल गया कि जैसे कभी की जान ही पहचान तक न हो।'

'और तू चुपके से भाग गई जैसे मुझसे कोई मतलब ही न हो।'

'भाग तो तू गया रज्जू, कजरी तीज के मेले के बाद एक दिन और ठहर नहीं सकता था? तू तो जानता था मैं तेरे लिए कितना परेशान थी, पर मुझे लगा तू मुझसे ऊब रहा था।'

मेरे कान को यकीन न पड़ा। यह मेरी रम्मी बोल रही है, अपने रज्जू से। मेरे तन में आग लग गई। मैंने बड़े क्रोध व क्षोभ के साथ कहा,

'देख रम्मी, ऊब तो तू गई थी जो तीसरे ही दिन अपने गाँव चली गई और मुझे खबर तक न दी। खैर, जाने दे मरने वालों को मरने दे अपनी किस्मत पर। तुझे क्या, बड़े शहर में है मेरे जैसे सौ रज्जू मिलेंगे, यह न सही वह सही।'

'देख रज्जू, तू गुस्सा न दिला, नहीं तो यहीं नाव पर से उलट दूँगी पानी में, हाँ। तीन-चार महीने में एक बार खोज खबर भी ली कि तेरी रम्मी मर गई या जिन्दा है?'

'और क्या, अपना पता ठिकाना सब छोड़ गई थी कि तेरा रज्जू बराबर नियम से खत डालता रहे ?'

'पता ठिकाना ? पता ठिकाना तुझे चाची से नहीं मिल सकता था ? तू एक बार जाकर चाची से मिल नहीं आ सकता था ? तुझ पर कोई रोक थी ? बाबूजी का पता पूछने में शरम आती थी ? झेंप लगती थी ? मुझे चिट्ठी लिखते हुए हाथ दुखते थे ?'

मैं भी इस व्यंग्य पर तड़पा, गोकि इसमें बहुत कुछ सच था व मेरा बुद्धूपन साबित होता था ।

'तो तूने कौन खत लिखकर अपने रज्जू को निहाल कर दिया, तू ही गाँव पर एक खत डाल देती । मेरे स्कूल का नाम जानती थी, क्लास जानती थी और क्या चाहिए था तुझे दो अक्षर लिखने के लिए ? अरे कह, मन हो तब न ? मैं व्यर्थ ही में .... .... .... ।

'बीमार पड़ा ? तड़पता रहा ? यही न ?' वह बोली ।'

मैं ताज्जुब में आ गया । रम्मी यह सब कैसे जानती है । मैंने खीझकर कहा,

'सब झूठ है, मैं नहीं बीमार पड़ा, मैं नहीं तड़पा तेरे लिए, तुझे किसने यह सब कहा ?'

'मेरे मन ने कहा, और कौन कहता रे ? कौन ? तू जानता है मैं चैन से पांव पसार कर सो रही थी व तू बाढ़ में जान से खेलकर सहायता कर रहा था ? तेरी रोज-रोज की खबर पेपर्स में निकलती थी । मैं सभी पत्रों को मँगाकर पढ़ती थी व रोज प्राण संकट में पड़े रहते थे, जाने कब क्या हो जाय ।'

'और तुझे छुट्टी मिले, यही ना ।'

हम यूँ ही लड़ते-झगड़ते नदी के उस पार बालू की चमचम चमकती रेत पर पहुँच गए जो बिल्कुल वीरान व सुनसान थी । कुछ दूर चुपचाप रेत पर चलते रहे फिर एक झाड़ी के पीछे धूप में बैठ गए बालू पर ही । बैठते ही वह बोली,

'मैं सब जानती हूँ तेरा गुस्सा यूं न उतरेगा । मैं अभी तेरी दवा करती हूँ ।'

और उसने मेरा सिर पकड़ कर झट से अपनी गोद में कर लिया व मारे चुम्बनों के लगी ढेर करने। इस भूख, इस प्यास का कोई अन्त ही न लगता था। उसके खुले केश मुझे ढँके हुए थे। हम यूँ ही जाने कब तक स्नेह-पाश में पड़े रहे। अंत में रम्मी बोली, 'अब चल देर हुई। बाबूजी इन्तजार करते होंगे।'

'चल चलें।'

'चलने से पहले एक वादा कर मुझे।'

'सो क्या ?'

'अब तो मेरे लिए अपनी जान जोखिम में नहीं डालेगा।'

'पहले तू वादा कर कि यूँ मुझे छोड़कर खिसक नहीं जायगी।'

'नहीं रे रज्जू, तुझे इस जन्म तो क्या सौ जन्म में भी छोड़कर मैं नहीं जा सकती कहीं।'

'तो खा मेरे सिर की कसम, मेरे प्यार की कसम।'

'ले' कहकर उसने मेरा सिर चूम लिया।

'तो ले मैं भी वादा करता हूँ, जब तक तू साथ रहेगी, तेरी धरोहर यह तन-मन मैं ट्रस्टी की तरह ठीक रखूँगा, पर जब तू साथ न होगी तो मेरा कोई ठिकाना नहीं, कोई दोष नहीं।' वह फिर बोली,

'तू जानता नहीं, जब तू मेले से लौटकर स्कूल चला गया, मैं फूट-फूटकर रोई। मेले की एक-एक बात याद कर रोती रही। वह बंदर-बंदरिया का नाच, वह 'डिम-डिम'। क्या कहूँ तुझसे। उसी दिन एक और घटना हो गई।'

'क्या रे ?'

'मेरे गाँव से आदमी बुलाने आ गया। मैं रो-रो मरी तेरे लिए। मुझे अपनी चिन्ता नहीं थी रज्जू। मैं यही सोच-सोचकर मरती थी कि जब तू आयगा तो मुझे खोजेगा घर में, बगिया में, लीची के पेड़ तले। और जब नहीं पाएगा तो रो-रोकर जान दे देगा।'

मैं चुपचाप उसकी दर्दीली दास्तान सुनता रहा। मैंने इतना ही कहा,

'मुझसे दुलरिया कहती थी तू बहुत रोई। सोनिया कहती थी तू जार-जार रोई, फूट-फूट कर रोई।'

'मोनिया नहीं कुछ कहती थी।' वह मुस्कराई।

'उसने दीवाली पर आशीष दिया है कि मेरा प्यार सफल हो।'

हम दोनों मुस्कराए। फिर वही बोली,

'मुझे लगता है चाची ने खबर भेजकर आदमी बुला लिया मेरे लिए। पर ठीक-ठीक कह नहीं सकती, क्योंकि मां बाबूजी के साथ लखनऊ जाना चाहती थीं और बाबूजी आए थे इसीलिए, पर मुझे भी ले जाना चाहते थे।'

'तो जब सब जानती है तो बुआ पर शक क्यों ?'

'जाने क्यों। खैर, गांव पर दस दिन रहकर हम लोग लखनऊ चले गए। यहीं पर इसी शहर के स्टेशन पर गाड़ी चढ़े। शायद उन्हीं दिनों तू बुरी तरह बीमार अपने बोर्डिंग में पड़ा था। काश, तुझे एक नजर देख पाती। पर तू तो जानता है, इस देश में लड़की की जुबान पर, हाथ, पाँव पर हमेशा ताला लगा रहता है।'

'पर तूने जाना कैसे कि मैं बीमार था ?'

'गनेश से।'

'गनेश से ?' मैं तो यूँ चकित हो गया जैसे हाथ की रस्सी साँप बन फुफकार उठी हो।

'उसको तेरा पता कैसे मालूम था ?'

'वह तेरी तरह भोंदू थोड़े है, हमलोग अभी लखनऊ गये भी नहीं थे तभी उसने मेरे गाँव के एक लड़के से जो उसी के साथ पढ़ता है, हमारे जाने का दिन पूछ लिया था। वह यहाँ स्टेशन पर हमलोगों से मिलने भी आया था। उसी ने बताया तेरी बीमारी के बारे में। मैं तड़प कर रह गई, पर कर भी क्या सकती थी। उसने बाबूजी से उनका पता भी पूछ लिया।'

मुझे लगा जैसे किसी ने आकाश पर चढ़ाकर धरती पर फेंक दिया। मैंने कहा,

'चल रम्मी, अब देर हो रही है, फूफाजी तेरा इन्तजार कर रहे होंगे। क्या पता गनेश भी आँखें बिछाए बैठा हो।'

उसकी आँखें छलछला उठीं। बोली तड़पकर,

'देख रज्जू मेरी बात तो सुन, मेरा इसमें कोई दोष था। मैंने कितने ही खत तुझे भेजे दुलरिया के लिफाफे में, तूने एक का भी उत्तर न दिया व जान देने चला गया गंगा मैया की बाढ़ में, मैं तड़प-तड़प कर मरती रही।'

मेरे मन ने कहा, 'तो दुलरिया भी इसमें शामिल थी। कितना बनती थी मुझसे, पता करूंगी। पता नहीं चला। धूर्त। धूर्त। धूर्त। सब धोखा देते हैं, सभी। किसी के पास सच्चा प्यार नहीं, किसी को उसका स्वाद नहीं किसी को उसकी जरूरत नहीं। बुद्धू केवल एक मैं हूँ। यही रम्मी, यही सर्पिणी है, मेरे प्यार की पुतली, प्यार का आदर्श। यही।'

मन हाहाकार कर उठा। सहस्त्र बिच्छुओं ने एक साथ ही दंशन कर लिया। हम लाँच में आये। मेरी आँखें अंगारे की तरह जलती रहीं। रम्मी के नयन सावन-भादों की तरह झरते रहे।

उस पर मेले से संगीत भोंपू पर जोर-जोर से आ रहा था,

निसि-दिन बरसत नयन हमारे,
नीर रहे ना इन अँखियन में,
जब से स्याम सिधारे।
कंचुक-पट सूखत नहिं कबहूँ,
उर बिच बहत पनारे।
निसि दिन बरसत नयन हमारे।

और सचमुच रम्मी के 'उर बीच' पनारे बह चले। उसका कंचुक-पट बुरी तरह भींग चला। पर मेरे नयनों में अंगारे बरस रहे थे जो उसके आँसू तो क्या गंगा को सुखा देने के लिए भी काफी थे।

हम मेले वाले किनारे आए। सहस्त्रों नर-नारी रम्मी के आँसुओं में डूब गए, मेरी आँखों में जल उठे। लांच से उतरते समय पतले से पटरे पर वह गिरते-गिरते बची, मैंने सहारा देना चाहा तो उसने मेरा हाथ छुआ तक नहीं। यूं बचकर निकल गई जैसे छूते ही आग लग जायगी।

हम दोनों चुपचाप डिस्ट्रिक्ट इंजिनीयर के कैम्प में पहुंचे। वहाँ पर गनेश व दुलरिया बैठे-बैठे हमारा इन्तजार कर रहे थे। मैंने पहुंचते ही कहा,

'फूफाजी, मुझे तो अभी छुट्टी दें, समिति के ढेर से काम मेरा इन्तजार कर रहे होंगे। फिर मिलूँगा।'

मैंने जल्दी से नमस्ते की। दुलरिया व गनेश पर कोई ध्यान नहीं दिया। तुरन्त लौट पड़ा।

मैंने आफिस जाते ही रायजी से भेंट की व एक 'मास्टर कमेटी' का सृजन किया जो मेले में काम करने वाली सारी सेवा-संस्थाओं का संचालन करेगी। मैं खुद उसका सेक्रेटरी बन बैठा। रायजी बड़े खुश हुए पर चकित भी हुए।

एकाएक रज्जू को क्या हो गया ?

मैं बीस घटे रोज काम करने लगा। कभी-कभी इक्कीस घंटे तक खटता। मेले में हर कहीं मैं मिल सकता था। सेठ रामनारायण से एक जीप ले ली। जीप, लांच या आफिस, यही तीन जगहें मेरे लिए थीं। चारपाई की किस्मत में मुझसे मुलाकात न लिखी थी।

हमारी रम्मी की यही भेट थी व यही विदाई भी, जिसने मेरी जिन्दगी में आग लगा दी। आग, जो कभी न बुझी, बगावत बनकर शोले की तरह जलती रही।

## २३

दूसरे दिन अखबारों में इस 'मास्टर कमेटी' की चर्चा बड़े जोर-शोर से निकली। एक सहस्त्र वालंटीयर्स की सलामी लेते हुए मेरी फोटो भी निकली। पर ये तो मैंने देखा फूफाजी के हाथ में रेलवे स्टेशन पर। शायद वे लोग उसी गाड़ी से जानेवाले थे लखनऊ।

यात्रियों को स्टेशन से भेजने की व्यवस्था बड़ी ही कठिन थी। हरेक तुरन्त जाना चाहता था, न जाता तो सारा शहर पेशाब-पाखाने से बीमारी की जड़ बन रहा था। जल की बाढ़ को काबू करना आसान था पर यह मानव की बाढ़, नर-मुण्डों की बाढ़ तो और भी कठिन सिद्ध हुई।

मैंने लगभग आधे वालंटीयर्स स्टेशन के इर्द-गिर्द व प्लैटफार्म पर तैनात किए जो कुलियों के साथ मिलकर काम कर रहे थे व हर किसी को चढ़ाने, बैठने, खड़े होने भर की जगह तक का प्रबन्ध करते थे। सबसे बड़ी समस्या थी कि हर परिवार, हर ग्रुप, हर गिरोह साथ रहना चाहता था एक ही डिब्बे में। उनकी दृष्टि से यह ठीक भी था, पर हमारा काम इससे मुश्किल हो जाता था। रेलवे अधिकारी तथा पुलिस इस प्रबन्ध में हमारा सहयोग दे रहे थे, इसीलिए काम कठिन होने पर भी कम से कम हो तो रहा था।

काम सब करते थे प्रशंसा के पुल मेरे बँधते थे। इतना छोटा-सा लड़का गजब ढा रहा है। जब कि मैं गाड़ी के हर चक्के के नीचे अपनी गरदन देखता था, पर यह अभागा सिर बराबर धड़ के ऊपर साबूत बना रहा।

प्लैटफार्म पर निरीह की दशा में मैंने फूफाजी व बुआ तथा रम्मी को खड़े देखा, दुलरिया भी उनके साथ थी। शायद पहुँचाने आई थी। गनेश कहीं दौड़-धूप कर रहा था। मैंने झट से जाकर फूफाजी व बुआ को प्रणाम किया। बोला,

'माफ कीजिएगा फूफाजी, फुर्सत न मिल सकी, आ न सका।'

'सो तो इस पेपर से ही मालूम हो गया मेरे बेटे। पर तू रेशमा से नाराज होकर अपनी जान क्यों देता है? रेशमा से क्या भूल हुई?'

'ऐसी बात नहीं फूफाजी। मैं शक्ति भर सेवा करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। रेशमा से भूल होगी तो क्या वह बताएगी नहीं? उसने क्या बताया?'

'कुछ भी तो नहीं? यही तो मुश्किल है।'

'उसने यह भी न कहा होगा कि मैं उससे नाराज होकर यह सब कर रहा हूँ, कहा था उसने?'

'नहीं बेटे, यह तो....।'

'किसी और के दिमाग की उपज है।' मैंने जोड़ा, 'फूफाजी शहर के लोगों के हाथ पांव कम चलते हैं, दिमाग बेसी। छोड़िए, हम तो गांव के गँवार हैं, सीधे सादे। हल-कुदाल छोड़ और कुछ जानते नहीं। हाँ, आपकी क्या खिदमत करूँ?'

'क्या बताऊँ रज्जू, गाड़ी में....।'

'सीट चाहिए? यही न? अभी लीजिए।'

कहकर मैं वहाँ से फुर्ती से चल पड़ा। मुड़ते-मुड़ते देखा रम्मी के नत आयत नयन झरने लगे। दुलरिया की पलकें गीली थीं, पर मेरे मन में, मस्तिष्क में जो आग धू-धू कर जल रही थी वह क्या इन आंसुओं से बुझनी थी।

मेरे साथ स्टेशन मास्टर आए व एक बन्द कम्पार्टमेण्ट को ताली से खोलकर उन्होंने दो बर्थ पूरे के पूरे दे दिए। यह कम्पार्टमेण्ट रेल कर्मचारियों व अधिकारियों के लिए रिजर्व था। मैंने फूफाजी का बिस्तर लेकर एक ओर लगा दिया व दूसरा बिस्तर रम्मी के लिए लगा दिया। सामान सारा जमा कर कुछ ऊपर व कुछ नीचे रख दिया। तीनों सीट पर जा बैठे। खिड़की के पास एक पर फूफाजी व दूसरी पर रम्मी थी।

मैंने फूफाजी व बुआ को प्रणाम किया व छुट्टी ली मुझे साँस लेने की भी फुर्सत न थी। रम्मी व दुलरिया से कुछ भी न बोला।

पन्द्रह मिनट बाद जब गाड़ी छूटने को हुई हरी झण्डी हो गई, ह्विसिल भी हो गई तो मैं रम्मी की ओर दौड़ता हुआ आया।

आया, पर क्यों?

विदा तो ले चुका था।

इस मन की गति कौन जाने?

पर पास जाकर ठिठका रह गया। प्लेटफार्म पर खड़ा रम्मी की खिड़की पर हाथ दोनों रखे हुए गनेश घुल-घुल कर उससे बातें कर रहा था। दुलरिया फूफाजी से बातें कर रही थी। मुझे सबसे पहले फूफाजी ने देखा। बोले,

'कभी लखनऊ आना बेटे। पता........।'

'जी आऊँगा, पता गनेश से पूछ लूंगा।'

गाड़ी खिसकने लगी। मैंने हाथ हिलाया। गनेश व रम्मी मेरी आवाज से चौंके। गनेश खिड़की से हट गया। रम्मी ने आँसू भरी आँखों को उठाया व दाहिने हाथ में नन्हीं-सी रूमाल ले हिलाने लगी।

मुझे लगा गाड़ी बीस-पच्चीस कदल जा चुकी थी तो वह चिल्लाई, 'रज्जू।' हो सकता है यह भी भ्रम-मात्र हो।

वह रूमाल हिला रही थी, पर किसे?

गनेश को या दुलरिया को या मुझे?

क्या यह हमारी अन्तिम विदाई थी?

कौन जाने? कौन कहे?

अभी गाड़ी पूरी तरह से प्लेटफार्म छोड़ भी न पाई थी कि मैं मुड़कर चल पड़ा। दुलरिया बोली,

'सुन रज्जू, एक मिनट मेरी बात तो सुन।'

'फिर सुन लूंगा दुलरिया, अभी तो मरने की भी फुर्सत मुझे नहीं।'

और मैं चलता बना। वह ठगी-सी खडी रह गई।

वैसे मेला तो लगभग पन्द्रह दिनों तक चलता रहा पर हमारा काम एक सप्ताह में समाप्त हो गया, कारण स्नानार्थियों की मुख्य भीड़ जा चुकी थी। साधारण व्यवस्था के लिए पुलिस काफी थी।

मेला समाप्त होने पर मेला-कमेटी की ओर से नगर में हमारा अभिनन्दन हुआ। रायजी मेरी बहन दुलरिया व गनेश को बुलाना न भूले। वे दोनों मेरे

पास बैठे पर मैंने साधारण शिष्टाचार से अधिक कोई बात न की। दुलरिया ने कहा,

'सभा समाप्त होने पर तू मेरे साथ घर चल रज्जू तुझसे ढेर सी बातें करनी हैं।'

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह फिर बोली,

'तू दो जानें लेने पर तुला है, हो सकता है तीन-चार भी ले ले।'

'मैं केवल अपनी जान हथेली पर लेकर घूमता हूँ, इतना नीच नहीं कि औरों की जानें लेता फिरूँ।'

'तूने कभी सोचा, तू ऐसा करेगा तो रम्मी.........।'

'मेरे सामने नाम मत ले दुलरिया, और अभी चुप रह। सभा की कार्रवाई में बाधा पड़ती है।'

मुझे लगा रायजी ने कुछ भाँपा। शायद नहीं भी भाँपा हो।

मेरा तथा मेरे सहयोगियों का अभिनन्दन बड़े ठाठ से हुआ। सभी गद्‌गद् हो गए। कितने ही भाव विह्वल हो रहे थे। दुलरिया के नयन आँसुओं से गीले थे। रायजी ने माल्यदान के बाद भरी सभी में मुझे छाती से लगा लिया। बोले,

'यह मेरे जिले का जवाहर है।'

करतल-ध्वनि हुई। सब कुछ हुआ। पर मेरे भीतर धू-धू करती प्यार की चिता के सिवा कुछ भी न था। मेरे भीतर कोई भाव न था, भावुकता न थी। उस चिता की आँच में सब कुछ जल चुके थे। वह रज्जू भी मर गया था जिसकी आँखें पल-पल में जरा से दुःख-दर्द में गीली हो जाया करती थीं।

मेरी हालत तो यह थी कि,

'सर पे बाँधे कफन, कातिल को ढूंढ़ते हैं।'

जब मुझे अभिनन्दन का उत्तर देना हुआ तो मैं खड़ा हुआ व तालियों के बीच कुछ 'नर्वस' हो गया पर, 'भय' किसका? जो 'मौत' का पीछा रात-दिन करता है उसे परवाह किसकी थी। छन भर में ही ठीक हो गया व भर्राई हुई दृढ़ आवाज में बोला,

'आपने मुझे इतना सम्मान दिया उसके लिए धन्यवाद। गोकि इसकी भी जरूरत नहीं कारण आप 'सेवा-भावना' का अभिनन्दन करते हैं न कि राजेश-

कुमार का। राजेश तो उस भावना का प्रतीक मात्र है, जैसे मन्दिर की मूर्ति देवता की प्रतीक है, पर देवता नहीं, फिर भी प्रतीक में देवता का आरोप कर पूजते हैं, पर कुत्ते चाट भी तो जाते हैं उस प्रतीक को।

'सेवा में निराश मन को सुख व संतोष के एकाध छींटे मिल जाते हैं ऐसा मेरा अनुभव है, पर इन एकाध छींटों के लिए अपने को खपा देना होता है, तन से, मन से, मस्तिष्क से। सिर पर बराबर कफन बाँधकर, हथेली में जान लेकर ही सच्ची सेवा हो सकती है, अन्यथा नहीं।

'आपको फिर से धन्यवाद।'

मैं बैठ गया इतना बोलकर।। प्रेसवालों ने फोटो की भरमार कर दी। तालियों से हाल गूँज उठा। सभा समाप्त होने पर प्रेस व पत्रकारों ने घेर लिया। इस बार दुलरिया इस भीड़ से दूर ही दूर रही। प्रश्नों की झड़ी लग गई,

'आपको कैसी निराशा हुई है?'

मैं इस व्यक्तिगत प्रश्न का उत्तर क्या देता? मैंने हँसकर कहा, 'कुछ भी नहीं, यह तो 'साहित्य' बोल रहा था, कहीं का पढ़ा हुआ।'

जोर की हँसी फैल गई।

'सेवा के लिए सिर पर कफन की क्या जरूरत है?'

'गंगा की बाढ़ में मुझसे रिपोर्ट लेने आइयेगा स्थिति निरीक्षण के लिए आपको नाव में साथ ले लूंगा तब पता चलेगा।'

फिर हँसी बिखर गई।

सभा समाप्त होने पर मैं दुलरिया के साथ न जा रायजी के साथ उनके घर चला गया और वहाँ से सूनी रात में अकेले भारी-भारी कदम रखता अपने हास्टल की ओर चल पड़ा।

आकाश में तारे आज भी कानाफूसी करते थे, पर मैंने सुना नहीं। सब पर दफा १४४ लगी थी—मन पर, हृदय पर। मस्तिष्क, केवल गरम-गरम जलता मस्तिष्क काम करता था।

'हाय रम्मी। तूने कहीं का न रक्खा मुझे।'

रम्मी गई, मेला गया। मैंने हृदय के सारे द्वार बन्द कर दिए और भीतर

से आग लगा दी। सीखचे में बन्द भीतर सारे भाव-भावनाएँ प्यार की बातें जलती रही धू-धू करके। बाहर मस्तिष्क का भयानक पहरा बैठा दिया।

जब वह सब भी जलकर राख हो गया तो उस कुरूप अधजले भग्न खण्ड-हर में मैं एक प्रेत-सा वास करने लगा। देवी की भव्य उज्ज्वल प्रतिमा पर कालिख पुत गई। दीप व आरती के सामान भी नष्ट हो गए।

हू-हू करके इस खण्डहर में आंधियों का झोंका आता, आग बरसती, ओले बरसते, किसी को कोई रुकावट न थी। प्रेतों का ताण्डव-नृत्य होता, देवी की कालिख लगी प्रतिमा के सामने।

सूनेपन में अपनी आवाज स्वयं अपने को सुनाई देती।

मैं एक साधक की लाल-लाल प्रेत सी आँखें लिए डोलता। बोलता किसी से नहीं। हँसना तो भूल ही गया। नसें मन की, मस्तिष्क की बराबर तनी रहीं। किसी को मुझसे बोलते, मुझे छेड़ते डर लगता।

अगहन गया, पौष आया। बड़े दिन की छुट्टियाँ आईं। इस बीच रम्मी के कितने ही पत्र आए लखनऊ से जिनमें से किसी का भी उत्तर मैंने नहीं दिया। कुछ नमूने यूं हैं :—

'मैं ठीक हूँ, घर व स्कूल की चहारदीवारी में बन्द। कहीं नहीं जाती। अच्छा नहीं लगता। मन करता है कि एकान्त में रहूँ और बस, कुछ नहीं।

वहाँ पर तो खूब ठण्ढ पड़ रही होगी। यहाँ पर आज काफी ठण्ढ है।

× × ×

तुम क्रिसमस में आओगे तो मेरे तो भाग्य ही खुल जायेंगे, तब खूब बातें करेंगे, पर आना अवश्य। अभी आते तो प्रदर्शिनी देख लेते, पर तुम.........।'

× × ×

'तुम्हारी रम्मी अपने रज्जू को नहीं भूली। वह अपनी बेबसी पर रो उठती है। जब उसे कोई 'अपना' नजर नहीं आता तो वह 'रज्जू' को याद करके रो-रो उठती है, पर उसके आंसू पोंछने रज्जू नहीं आ पाता। आँसू खुद ही गिरकर सूख जाते हैं और वह सो जाती है।'

× × ×

'मन करता है कि तुमसे मिलकर खूब रोऊँ। अंत में मेरा प्यार लो। मेरे रोम-रोम का प्यार।'

× × ×

'तुम्हारा कोई पत्र नहीं आया। इन्तजार करते-करते थक जाती हूँ पर हाथ निराशा ही लगती है। फिर भी इन्तजार किए जाती हूँ। अब की निराशा 'आशा' में बदल दो।'

'तुम यहाँ पर आ जाओ। बहुत इन्तजारी है तुम्हारी, आना अवश्य अन्यथा मुझे हार्दिक दुःख लगेगा। शायद इस दुःख को सम्भाल भी न सकूँ।'

'आना अवश्य है तुम्हें।'

'अबकी तुम्हारी सब शिकायत दूर कर दूँगी। २३ या २४ दिसम्बर तक आ जाओ।'

'माँ व बाबूजी तुम्हारे लिए रोज पूछते हैं कि तुम कब आओगे। सबकी आँख तुम्हारी ओर लगी हुई है।'

'जल्दी आओ।'

'अन्त में मेरे रोम-रोम का, मेरे हर साँस का प्यार लो।'

× × ×

'आजकल जीवन अत्यंत निराश हो गया है, कारण तुम्हें क्या बताऊँ? बस इतना समझ लो, मेरा जीवन अत्यंत क्लांत बन चुका है। अब तो सोया भी नहीं जाता।'

बड़े दिन की छुट्टियों के लिए रम्मी ने मुझे लखनऊ बुलाया, मैं सोचने लगा उसने गनेश को बुलाया है या नहीं। यूँ तो किसी भी तरह जाता नहीं, पर न जाने क्यों ऐसी जिज्ञासा जाग पड़ी।

इन दिनों मेरा 'सहजपन' तो नष्ट हो ही गया था, बचपना भी नष्ट हो गया था। एक विचित्र 'प्रौढ़ता' हर काम में आ गई थी। केवल शायद 'बुढ़ापा' आना बाकी था।

छुट्टियों से दो तीन दिन पहले एक शाम को दुलरिया मिल गई चौक में। नौकर के साथ आई थी कुछ 'मार्केटिंग' करने। मुझे देखकर कुछ ठिठकी तो मैं उसके पास चला गया। सामने एकदम से पड़ जाने पर भागना कहाँ तक सम्भव होता।

मैंने पूछा, 'क्यों दुलरिया क्या हाल-चाल है?'

'क्या करोगे मेरा हाल-चाल जानकर?'

'क्यों इतने से भी गया?'

'मैं तो यह देख रही थी कि पहचान भी पाते हो या नहीं ?'

'क्यों बहुत नाराज है क्या तू ? ठीक ही है, होना भी चाहिए ।'

'नाराज मैं हूँ कि तू रे ? सरे बाजार झगड़ा करेगा ?'

'इस काम के लिए एक रम्मी ही बहुत है, दुलरिया सो अब उससे भी न झगड़ा करूँगा ।'

'क्या कर रहे हो क्रिसमस की छुट्टियों में ?'

'झख मारूँगा । क्या यही काम कम है ?'

'और पानी नहीं पीटोगे ? '

हम दोनों इस व्यंग पर मुस्कराए । फिर वही बोली ,

'रम्मी ने तुमको व मुझे बुलाया है लखनऊ, चलोगे ? '

' और कौन-कौन चलेंगे ? '

'और कौन जायेगा । एक गनेश मेरे साथ जायेगा और एक नौकर । बस ।'

'तू फिर, हो आ । मैं कभी फिर चला जाऊँगा ।'

'तू गनेश से क्यों इतना खार खाए वैठा है ? '

मैं चिढ़ा । मेरा मिजाज विगड़ने लगा । मैंने तेज होकर कहा, 'मैं अपनी जिन्दगी से ही खार खाए वैठा हूँ, दुलरिया । गनेश इस काबिल नहीं कि उससे खार खाऊँ ।'

'सो तो देख रही हूँ तेरी काबिलियत आजकल बहुत बढ़ गई है । चार लोगों ने प्रशंसा कर दी, तेरा दिमाग आसमान पर चढ़ गया । अब नीचे उतरने को आता ही नहीं । '

हम दोनों चौक की सड़क के किनारे चलते जा रहे थे, पर हमारी बातें तेज होती जा रही थीं । मैंने बात बदलते हुए पूछा,

' फिर कब जा रही है लखनऊ ? '

' जब तुझे नहीं चलना है, तो क्या करेगा जानकर ? मेरी मर्जी जायेंगे, जायेंगे, नहीं जायेंगे ।'

और वह तमक कर चौराहे के मोड़ से दूसरी ओर चल दी । मैं टक-टक ताकता रहा थोड़ी दूर तक, फिर चला गया नदी-तीर ।

मन बार-बार यही कहता, 'ये सभी मेरे खिलाफ षड्यन्त्र किए हैं ,

गनेश के षड्यंत्र में दुलरिया भी शामिल है। क्यों न होगी, रसदे-रस लें 'सिद्धान्त की अधिष्ठाता है यह। स्वयं रमनथवा को साझेदार बनाए है, गनेश की मिल्कियत में। चाहती होगी गनेश का मुँह बन्द करने के लिए रम्मी को ···· ····।'

यह संसार, उसका व्यवहार तो 'दे-ले' का है, थोड़ा तुम झुको तो थोड़ा मैं झुकूं। एक इधर-उधर मुँह मारता फिरे दूसरे के नाँद में व दूसरा बँधा रहे अपने खूँटे पर यह तो हो नहीं सकता।

मेरे मन में यहीं बराबर आता। दुलरिया अपना सम्बन्ध ढकने के लिए शायद ····। उधर गनेश रम्मी को पाने के लिये मुझे दुलरिया कितने ही मौके भी दिए।

कैसी है यह संसार की विडम्बना !

अभी इन्होंने रज्जू को पहचाना नहीं।

पर रम्मी क्या सोचती है ?

यही तो मेरे जीवन की गाँठ है, मेरे प्यार की गाँठ है जो खुलने को आती नहीं। मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता। मैं कहीं भूल तो नहीं कर रहा हूँ, रम्मी को लेकर ? उसके व गनेश के सम्बन्ध को लेकर ?

क्या सचमुच रम्मी मुझे बुलाने के ही लिए दुलरिया को बुलाई है ? पर इसका क्या काम ? वह तो जानती है कि यदि प्यार है दिल में तो हम दोनों ही पूर्ण हैं, दुलरिया गनेश का काम नहीं।

नहीं, नहीं। यूं यह बात नहीं है। रम्मी गनेश को बुलाना चाहती है, दुलरिया को तो 'कवर' के लिए बुलाई है बहाना मात्र गनेश को बुलाने का। और मुझे तो मुँह छूने को पूछ ली है, कि कहीं बुरा न लगे।

ठीक, यही बात ज्यादे ठीक जँचती है।

कैसे दोनों घुल-घुल के प्लेटफार्म पर बातें करते थे गाड़ी छूटने से पहले। क्या रम्मी को दुलरिया से बातें करने को कुछ भी न थीं, गनेश से ही मन की व्यथा कहनी थी ?

ना, ना। ये दोनों षड्यन्त्र में शामिल हैं।

क्या पता रम्मी की भी रुचि यही हो।

गनेश की दी हुई साड़ी अभी भी मेरे सूटकेश में है रम्मी ने फूंका नहीं। मेले में गनेश ने उसके साथ कितने मजे किए उसने खुद बताया। गनेश को पल्ला ठीक करना फोटो के लिए उसे भाया बस, फोटोग्राफर का न भाया।

उस दिन गनेश के टेबिल पर रम्मी की फोटो 'मैण्टलपीस' में पड़ी थी।

जरूर कोई बात है ! जरूर ! !

## २४

क्रिसमस की छुट्टियाँ आई और मैं लखनऊ न जाकर गांव चला गया मां के पास। सोचा, क्या पता, प्यार में 'ट्रान्सफरेविलिटी' हो, एक दूसरे का पूरक बन सके। पर क्या ऐसा सम्भव है ?

घर में जाते ही दीवार पर टंगी रम्मी की बनाई राधे-कृष्ण की जोड़ी दिखाई दी। रम्मी ने बाँस की बेनिया पर गुड़ियों की तरह ये दोनों मूर्तियाँ बनाई थीं। कृष्ण साँवले छोटे मुरली बजाते त्रिभंग की मुद्रा में व राधा उनके कंधे पर झुकी हुई बाँसुरी की धुन में मस्त।

मेरा जी भर आया।

एक ताखे पर शिव-पार्वती का श्वेत मिट्टी का जोड़ा था जिसे रम्मी मेले से लाई थी। शंकर का चौड़ा ललाट, चौड़ी विशाल छाती, बड़ी जटा जिससे गंगा लहराती व गले में सर्प फुफकारता, भाल पर सुधारकर हँसिया सा, सौम्य सुन्दर योगी का रूप व उनकी बाल में, लगभग बाँहों में परम सुन्दरी शैलजा, कमल से नयन, चाँद सा मुखड़ा, उभरे-उभरे उरोज़।

इसे लेकर दुलरिया व रम्मी कितनी बार हँसी थीं। दीवाली पर के सोनिया-मोनिया के दिये हुए खिलौने रम्मी के लिए, और चाव से सजाए गये मेरे द्वारा।

मैं चुपचाप टुकटुक ताकता रहा।

यहाँ कदम-कदम पर दर्द वोया गया था। ये काँटे रह रह कर चुभ-चुभ जाते—दिल लहू-लुहान हो जाता।

सिर के नीचे का तकिया भी रम्मी का बनाया हुआ था, पगली ने तकिये के एक छोर पर 'राजेश' काढ़ दिया था व दूसरे पर 'रेशमा'।

ओह, उसने मेरी जिन्दगी का कोना-कोना कस-कस के बांध रखा था।

मैं निकल कर कहाँ जाता ? कैसे ?

माँ ने एक रंगीन डलिया में चिउड़ा-गुड़ खाने को दिया तो याद आ गया वह डलिया भी रम्मी की वुनी हुई थी लाल-नीले बसुए से। इतना ही नहीं, स्मृति ताजी हो गई उस घटना की जब बुनते समय 'टिकुराई' (डलिया छेदने की लोहे की कील) डलिया से पार होकर उसकी उँगली में धँस गई थी।

वह छनछना उठी। टिकुराई व डलिया फेंक उसने दूसरे हाथ से कटी उँगली पकड़ लिया। मैं दौड़कर ठण्डा पानी लाया व कटे पर धार डालने लगा। इतने पर भी लहू बन्द होने को नहीं आया तो एक गीला कपड़ा उसकी उँगली में लपेट कर मैं फिर ठण्डे जल की धार देने लगा।

तब वह बोली, 'लगता है यह गंगा की धार है जो शिव की जटा से निकलकर बराबर गिर रही है।'

'शैलजा की कटी उँगली पर ?'

हम दोनों हँसे। फिर वही बोली,

'गंगा पार्वती की सौत थी रे, तभी गंगा की धार से पार्वती को कटी उँगली का खून बन्द नहीं होता।'

हम दोनों फिर खिलखिलाकर हँस पड़े थे।

मेरे पाकेट में रूमाल थी जिन पर रज्जू-रम्मी खुदा था। वह कहाँ नहीं थी। हमारी जिन्दगी की रग-रग में, पोर-पोर में समा गई थी।

और उसी रम्मी को, तन के प्यार की भूख-प्यास इतना सताने लगी कि उसने गनेश से चुपके-चुपके, मेरी पीठ पीछे नाता जोड़ा, उसे चलाती रही ? दुलरिया के षड्यन्त्र में कठपुतली सी नाचती रही ?

आग लग जाती, मस्तिष्क की शिराएँ तन जातीं, यह सोचते-सोचते।

दुलरिया बोलती, 'मेरी रानी, कर ले मजे जी भर के। यह जिन्दगी बस चार दिन की है, फिर तो माटी का तन माटी में चला जायगा।' सो भी किसे ? अपनी कुतिया को, कातिक में पीठ सहलाकर।

और रम्मी भी साथ-साथ खिलखिलाकर हँस पड़ती।

इसी तरह तो उसने रम्मी को बिगाड़ा, साड़ी भेजकर, गनेश की भेजी मिठाई देकर और रसीले मजाक करके। जाने क्या दोनों बराबर गुपचुप बातें किया करतीं और गौरैये का जोड़ा हो या चील का, उनकी छेड़खानियाँ (प्रणय-लीला) बराबर चाव से देखतीं बगिया में बैठकर। खूब रस लेतीं। घर के पीछे भी यह चहारदीवारी में घिरी बगिया पहले भाभी व रमनथवा की क्रीड़ास्थली बनी फिर रम्मी-दुलरिया ने नयन-सुख के लिए, उपयोग किया।

इन सबका फल क्या होता ?

यही तो ?

मेरा मन अजीब भूलभुलैया में पड़ जाता। फिर पलटा खाता। कभी मैं सब कुछ सत्य मान रम्मी के मन फिरने पर विश्वास कर लेता फिर कोई अन्तर में बोलता,

'नहीं रे, तेरी रम्मी दूसरे धातु की बनी है, वह कभी न फिरेगी, कभी न फिरेगी, कभी नहीं। तेरी राधा के एक ही कान्ह हैं दूसरा नहीं।'

मैं उसके पत्रों को लेकर बार-बार पढ़ता। इतनी बार पढ़ चुका था कि वे लगभग कण्ठस्थ हो गये थे। रम्मी की अक्षरें तक कितनी प्यारी लगतीं।

'तुम दूर हो तो क्या कहूँ तुम्हें ? पास होते तो बताती।'

फिर, 'सब कल्पनाएँ ज्यों-की-त्यों धरी रह गईं, सब इच्छाएँ सो गईं, बस दिल निर्जीव सा हो गया है, कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा है।'

हाय रम्मी, मेरे बिना तेरा कहाँ दिल लगेगा ? पूछ न मेरे दिल से जो बवण्डर-सा मारा-मारा फिर रहा है, धरती के इस छोर से उस छोर तक। उसका कहीं भी ठौर ठिकाना नहीं।

'बहुत ही एकाकीपन महसूस कर रही हूँ, इतनी दारुण व्यथा होगी तुम्हारे रूठने से, नहीं जानती थी।'

पुनः 'यदि जाने-अनजाने मुझसे कोई अपराध बन पड़ा हो तो क्षमा कर देना।

नादान समझकर, पर ठुकराना मत ।'

'देखो भैया, इस तरह निराशा में डूबकर काम नहीं करते। यदि तुम ही ऐसा करने लगोगे तो मेरा क्या होगा ? इससे पहले कि तुम मुझपर व्यंग कसो, एक बार मिल जाओ मुझसे। शायद तुम्हें मेरी दयनीय दशा पर दया आ जाए।'

'मेरे भैया, मैं बहुत दुःखी हूँ व निःसहाय। करूँ तो क्या ? अब तो रो-रोकर भी थक चुकी। अब मैं पागल हो जाऊँगी। मैं रोना चाहती हूँ पर रो नहीं पाती, मैं मरना चाहती हूँ पर मर नहीं पाती।'

'मान लिया मैं भयानक कसूरवार हूं, पर क्या तुम माफ नहीं करोगे ? क्या इसी प्रकार से रुष्ट रहोगे ? क्या हमेशा मुझ पर यूं ही व्यंग कसा करोगे ? नहीं भैया, मुझ पर रहम करो, झोली फैलाकर तुम्हारे आगे तुम्हारी अभागिन रम्मी तुमसे रहम की भीख माँग रही है, उसे ठुकराना मत अन्यथा वह जीते जी मरे के समान हो जायगी।'

'मैं किसी के आगे अपने दिल की बात नहीं कहती, पर तुम्हारे आगे फूट पड़ना चाहती हूँ, तुम शीघ्र आओ व मेरा दुःख दूर करो।'

'मेरे रोम-रोम का प्यार लो।'

इन पंक्तियों को पढ़-पढ़कर मन व्यथा से भर उठता। कभी-कभी जी में आता कि अभी कटाऊँ लखनऊ का टिकट। और सुख व शान्ति के साथ पुराने दिनों की तरह दस दिन रम्मी के साथ विता आऊँ। लखनऊ देखा भी नहीं है। देखना हो जायगा।

फिर सोचता, 'क्या पता वहाँ गनेश व दुलरिया पहुँचे हों। रंगरेलियाँ हो रही हों। खूब जी भरके गनेश 'छोटी रानी, बड़ी रानी' के बीच रस दे-ले रहा हो, तो मैं व्यर्थ ही दाल-भात में ....।'

पर रम्मी तो मुझसे बहुत पहले से गनेश को पत्र लिखा करती है। क्या लिखती होगी ? क्या ?

कि तुम मेले में मुझे छेड़ते चले, घिसते चले मुझे बहुत अच्छा लगा।

कि रज्जू के करते मैं मेले में ठहर न पाई रात को, बेहद पछताई।

कि तुम्हारी साड़ी पाकर बेहद खुश हुई पर रज्जू के करते पहन न पाई।

कि स्टेशन पर तुम्हारी सूरत दिन-रात आंखों में बसी रहती है, व

दिल तड़प-तड़प उठता है।

कि तुमने फोटो लेते समय मेरा आँचल ठीक किया था उसकी सिहरन अभी भी सीने पर गुदगुदाती है।

कि मेरे रग-रग का पोर-पोर का प्यार लो।

कि तुम्हारे पथ में आंखें बिछाए बैठी हूँ। तुम आओ और सीने से लग जाओ, इसकी तपन बुझाओ।

सोचते-सोचने मेरा सिर चक्कर खाने लगता, नसें तन जातीं, शिराएँ झनझनाने लगतीं। हृदय का सारा खून खौल उठता व सिर में चढ़ जाता। लगता मैं पागल हो जाऊंगा। जी में आता किसी चीज को पकड़ कर चूर-चूर कर दूं। धृतराष्ट्र सा गुस्सा चढ़ता लोहे के भीम को चूर करने के लिए।

इसी तरह गुनते-मथते प्यार व विरह के झोंकों में छुट्टियाँ भी बीत चलीं; पर मैं किसी नतीजे पर न पहुंचा।

एक दिन महादेव काका के बाग में गया तो वहाँ पर उनकी सारी लड़कियाँ 'दोल्हापाती' खेल खेल रही थीं। इस खेल में एक लकड़ी दूर फेंककर सभी भाग जाते हैं पेड़ पर। जो चोर होता है वह लकड़ी उठाकर लाता है फिर किसी न किसी को छूता है। जिसे वह छू देता है वह चोर हो जाता है।

यह दोल्हापाती मैं व रम्मी बहुत खेलते थे, वह इस डाल से उस डाल पंछी की तरह फुर्र-फुर्र फुदककर भागती, डालें हिलतीं, चरमरातीं, टूटने-टूटने को हो जातीं, अमरूद की डाल की मजबूती ही क्या, पर वह जल्दी पकड़ में नहीं आती। मन व्यथा से भर आया।

देखा पण्डित के इन हँसते-किलकते बच्चों को व सोचने लगा, 'ये डूब गये होते तो।' इस दुनिया से कितनी बड़ी सजीव हँसी-किलक खो जाती यूँ ही व्यर्थ में।

मोनिया भी इनके साथ 'दोल्हापाती' खेल रही थी फ्राक में नहीं बल्कि साड़ी को धोतीनुमा बाँधकर। कितनी अच्छी लगी वह। मुझे देखते ही जरा-सा झेंपी, जरा शरमाई। बोली,

'अमरूद लोगे रज्जू भइया ?'

इस पर तो पण्डित की सारी लड़कियों ने भी घेर लिया व हाथ पकड़कर कहने लगीं,

'चलो रज्जू भइया मेरे साथ दोल्हा पाती खेलो।'

'नहीं रे, मैं अब बड़ा हो गया क्या खेलूं ?'

'ऊँ रम्मी बहन थी तब तो खेलते थे।'

'पर अब वह कहाँ है ?'

'तो हम हैं, ये मोनिया है, खेलो न, वह भी तो बड़ी है ?'

तब तक मोनिया अमरूद की डाली पर चढ़ पके अमरूद खोजने लगी थी। मैंने कहा,

'मुझे पके हुए पीले अमरूद नहीं पसन्द मोनिया।'

'फिर ?'

'कच्चे पर फूले हुए 'कचरस' चाहिए।'

वह मुस्कराई व दो-तीन तोड़कर फेंक दी मुझ पर। एक तो सिर पर लगते-लगते बचा।

इसी बाग में रम्मी ने अमरूद तोड़कर मुझे फेंका था एकदम से कच्ची अमरूद, जो दाँत से काटे न काटे। मैंने दो-तीन बार जोर लगाकर काटा तो जरा सा कटी फिर उकताकर फेंक दिया, वह खिलखिलाकर हँस पड़ी थी। मैंने कहा था,

'रम्मी ये तो बिल्कुल कच्चे हैं, पत्थर से।'

'तो दाँत मजबूत क्यों नहीं करता ? दूध के दाँत से ये अमरूद नहीं खाये जाते रज्जू।' और फिर वही 'ही-ही-ही-ही'।

मैंने कहा, 'अपने तो पके खाती है, मुझे कच्चे ........।'

उसने आधी काटी अमरूद मुँह से निकालकर फेंक दिया मेरी ओर, बोली, 'ले देख, यह कच्ची है न पक्की।'

मैंने देखा, चखा, वह भी कच्ची थी। मैंने कहा,

'कच्ची है, पर फूली हुई जो है। इसमें रस है।'

वह हँसी, बोली, 'अच्छा रुक तुझे भी फूली हुई, कच्ची रसदार खोज कर देती हूँ।'

वह मजाक आज दर्द बनकर रह गया।

कच्चे फूले हुए अमरूद भरकर जब मोनिया ने आंचल मेरे सामने फैला दिया तो मैं एक बड़े असमंजस में पड़ गया।

जाने कितनी स्मृतियाँ एक ही साथ कौंध गईं।

एक बार जी में आया इसी बाग में मोनिया को बाँहों में कसकर मारे चुम्बनों के ढेर कर दूँ और उसके कचरस अमरूद दांतों से काट-काट कर चबा जाऊँ।

पर क्या यह सब कर पाया।

मोनिया के रूप में रम्मी रह-रह कर कौंध जाती।

वे बच्चे न होते तो जाने क्या कर बैठता।

कुछ देर तक तो मैं उसे टक-टक ताकता रहा फिर उसके आँचल से दो अमरूद निकाल लिए।

वह बोली धीरे से, 'बस दो?'

'इतने ही बहुत हैं मोनिया।' मन ने कहा।

'सोनिया कहती है, यह मेरी राधा है।'

राधा! मोनिया! रम्मी!

## २५

छुट्टियाँ आईं, छुट्टियाँ गईं पर मैं लखनऊ न जा सका। शहर गया। स्कूल खुल चुका था पहले ही दिन सुपरिंटेण्डेण्ट ने तीन खत दिए। तीनों रम्मी के थे। मैं तड़प उठा।

जाकर कमरे का दरवाजा बन्द कर पढ़ने लगा। पढ़ते-पढ़ते दिल कराह उठा। मैंने रम्मी को कितना तड़पाया, 'अपनी' रम्मी को।

उसने लिखा था,

'आज हफ्ते भर की बीमारी के बाद बिस्तर से उठ पाई हूँ, बहुत ही बुखार चढ़ गया था, २० से २४ तारीख तक कुछ भी खाना न खाई। २५ को तुम्हारा बहुत इन्तजार करती रही सो भी बेसी। सोचती थी जब तुम आओगे

तो तुम्हारे ही हाथ से पथ्य लूंगी पर इतने ऊँचे मेरे भाग्य कहाँ।'

'तुम नहीं आए जाने क्यों? मुझ तुम्हारे न आने से बहुत ही व्यथा हुई। शायद मेरे भाग्य में इतना जोर कहाँ था कि तुमसे मिल सकूं।'

फिर लिखा था,

'बहुत एकाकीपन महसूस कर रही हूँ। इतनी दारुण व्यथा होगी तुम्हारे न आने से, न जानती थी।

पुनः, 'गोकुल वृन्दावन को जल-प्लावन से बचाकर गोवर्द्धन उठाकर मेरा कान्ह, गंगा के किनारे पूनो को मिला। मुझे कितनी प्रसन्नता हुई थी। सोच रखी थी पूनो की भरी चाँदनी रात में एक बार फिर से रास रचाऊँगी, मेरी खुशी का ठिकाना ही न था, पर उस समय मेरे 'रज्जू' ने अपनी रम्मी को गलत समझा गोकि रम्मी ने काफी सफाई देने की कोशिश की।

'यह रम्मी का दुर्भाग्य है कि वह अब तक अपनी ओर से गलतफहमी मिटा न सकी। तुम खुश न थे, इसी से जीवन में रम्मी खुश नहीं। शायद जीवन भर जलती रहे। पर यह जलना कितना भयानक है? सोचकर ही भय लगता है रज्जू। यह इतना लम्बा जीवन, किस प्रकार कटेगा?

'सोचती हूँ जब मैं बचपन में डूबी थी तभी तुमने क्यों नहीं डूबते छोड़ दिया।'

मैं पढ़-पढ़ कर, सोच-सोच कर, तड़प उठा। ओह, मैंने अपनी नादानी में, अपने गुस्से में अपनी रम्मी को कितना सताया।

मेरा हृदय धीरे-धीरे गीला होने लगा। इसमें कमजोरी आई व सहारे की जरूरत मालूम पड़ी। इसी अरसे में एक दिन दुलरिया मेरे हास्टल में फिर धमक पड़ी। इस बार वह गनेश के साथ नहीं आई थी, केवल नौकर को लेकर आई थी।

मैं चकित रह गया। आते ही बोली, बड़े ताव व रोब के साथ,

'दरवाजा बन्द कर ले रज्जू, तुझसे थोड़ी बातें करनी हैं?'

'यूं ही बातें करना?'

'और तेरे हास्टल के छोकरे घूर-घूर कर मुझे देखें?'

'मैंने दरवाजा बन्द कर दिया। तब मेरे पलंग पर बैठती हुई बोली, 'तू खड़ा न रह, उस कुर्सी पर बैठ जा, देर होगी।'

मैं कुर्सी पर बैठता हुआ बोला, 'बात कहना ?'

वह बोली, 'सबसे पहले तू यह बता, यूं कितने दिन और रूठा रहेगा अपनी ही बहन से ? यह भी बता तू क्यों रूठा है, भूल कहाँ हुई है मुझसे ?'

मैं उकताहट जाहिर करते हुए बोला, 'दुलरिया भूल तुझसे नहीं, बल्कि मुझसे हुई है। छोड़ इस प्रपंच को, तू चाहती क्या है ?'

'बता दी, मैं अपने भैये को रूठा हुआ नहीं चाहती। तू जाने किस भ्रम में मुझे सताता है, रम्मी को सताता है, गनेश को संदेह की दृष्टि से देखता है।'

'कोई झूठ, तू बराबर रम्मी से खतो-किताबत करती रही व मुझसे कहती थी, पता नहीं मालूम। गनेश उससे स्टेशन पर मिलने गया व मैं उसी समय यहाँ चारपाई पर पड़ा-पड़ा मर रहा था। 'तुम दोनों ने........।'

'देख मेरे भइये, बात तो समझ। गनेश क्या करता था इअका पता मुझे बिल्कुल नहीं था, तू चाहे जिसकी सौगंध कह मैं खा सकती हूँ। गनेश की भी सौगंध खा सकती हूँ।'

'तू रम्मी को तथा मुझे व्यर्थ में सताता है। देख ये सारे रम्मी के खत मैं लाई हूँ जो उसने तेरे नाम मेरे पास लिखा था, पर गनेश सबको बक्स में डालता गया। मुझे पता न था, आज उसके न रहने पर खुला बक्स पाकर उठा लाई हूँ। ये तेरे नाम हैं व ये मेरे नाम। दोनों बण्डल तेरी ही चर्चा, तेरे ही काम से भरे हैं व एक तू है।'

'हाँ, हाँ और रम्मी के पत्र गनेश के नाम नहीं लाई ?'

'उसने कोई पत्र गनेश के नाम लिखा ही नहीं रज्जू, तू मेरी बात मानना।'

'मेरी आँखों में धूल मत झोंक दुलरिया, अब मैं भी आदमी चराने लगा हूँ, गोरू चराने के दिन गए।'

'ओह तुझे कैसे समझाऊँ, ले इसको पढ़कर देख ना तुझे सब साफ हो जायगा।'

'मेरे पास इतना फिजूल वक्त नहीं दुलरिया जो इस बवण्डर को पढ़ूँ। यह बता तू क्या चाहती है, बैद की घोड़ी बेमतलब तो चली न होगी।'

मैं बाहर से अभी भी गुस्से में था पर भीतर से काफी ठण्डा पड़ता जा रहा था। वह बोली,

'कल मकर-संक्रान्ति है, मेरे घर आना। दिन को गाँव की तरह 'चिउड़ा-दही' खायेंगे, रात को खिचड़ी भला।'

मुझे दुविधा में देखकर बोली,

'अब मान भी जा मेरे भैये, कितना सतायेगा अपनी ही दुलरिया को। आकर जो चाहे और सजा दे देना, पर आना जरूर।'

'अच्छा, आ जाऊँगा।'—मैंने धीरे से कहा।

वह खुश हो, मुस्कराई, मैं भी मुस्कराया। बस तो क्या था उसने झट से मुझे पकड़ कर गाल पर चूम लिया व चल दी दरवाजा खोलकर, वैनिटी बैग झमकाती। जाते-जाते बोली,

'ये खत तो रख ले, इत्मीनान से पढ़ना ! बहुत रस मिलेगा इनमें।'

'इन्हें तो लेती ही जा, नहीं तो गुस्से में कहीं फूँक दूँ तो बड़ा दर्द लगेगा।'

'दर्द लगता है ? तुझे भी ? आज जाना।'

वह हँसती हुई पत्रों को वैनिटी-बैग में रख चली गई।

और मैं एक अजीब असमंजस, एक निराली ऊब-चूभ में पड़ गया।

सत्य क्या है ? कहाँ है !

दुलरिया चली गई। मेरा मन सौ कोसों में दौड़ने लगा। क्या सचमुच मैंने रम्मी को सताया बेकार में ? ओह कितना सताया !

रम्मी के पवित्र प्यार पर मैंने सन्देह किया।

मेरी सजा क्या है ?

फिर सोचने लगा ऐसा कैसे हो सकता है कि रम्मी ने गनेश को कोई पत्र ही न लिखा हो ? विश्वास नहीं पड़ता। दुलरिया कितनी चालाक है ? अपने व मेरे पत्र तो लाई पर गनेश वाला न लाई जिनमें रस-भरी बातें होंगी। पढ़ने लायक शायद न हो, इसी से न लाई हो।

गनेश स्थूल बुद्धि का है, स्थूल के रस में उसे विश्वास है, इसलिए हो सकता है रम्मी ने नग्न-रस की बात उसमें लिखा हो, तभी दुलरिया नहीं लाई। तभी………।

ओह, मैं कितना हीन हो गया हूँ ? अपनी ही रम्मी के बारे में इतनी पतित बातें सोचता हूँ जैसे कभी जानता ही न होऊँ। छिः ! छिः ! मुझे तो नरक में भी स्थान नहीं मिलेगा।

काश ! मैं उसके पिछले पत्रों को देख पाता। व्यर्थ ही में लौटा दिया। मैं भी कभी-कभी बहुत गुस्सा हो जाता हूँ सो भी बेकार में। यह भी कोई बात रही। पत्रों को रख लेता तो वे मरहम का काम करते इस जलते दिल पर।

कौन जाने और भी खुरच-खुरच का लहू-लुहान कर देते।

यहीं सब सोचता-गुनता चलते-चलते नगर पार्क में पहुँच गया। वहीं एक बेंच पर बैठ गया। ठण्डक शाम की बढ़ गई थी पर मुझे कुछ भी मालूम न होती थी। किसी के घर से रेडियो पर आ रहा था—

'हे री, मैं तो प्रेम दीवानी, मेरा दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज पिया की, केहि विधि मिलना होय।
मीरा की प्रभु पीर मिटै, जब बैद सँवलिया होय।'

मैं विह्वल हो गया। लगा रम्मी मारे दर्द व विरह के विलाप कर रही है, कराह रही है, कसकन उससे सही नहीं जाती। हाय रम्मी, सूली ऊपर सेज किसने टाँगी ? तेरे रज्जू ने ही तो।

सचमुच तेरा दरद कोई नहीं जानता, कोई नहीं बूझता। तेरा रज्जू ही नहीं समझता तो और कौन समझेगा ? तेरा बैद यहाँ खींझता है, सर पटकता है, पर इससे तेरा क्या होगा।

तूने ठीक कहा था गंगा पार बालू की रेत पर, 'तेरा गुस्सा यूँ न उतरेगा। तेरी दवा मैं अभी करती हूँ।'

हाय रम्मी, तूने तो मेरी दवा की, पर मैंने क्या किया, तुझे जहर दे दिया जिससे तू तड़प-तड़प कर मरती है। बीमार पड़ी तो भी यह साध लिए कि रज्जू के हाथ से पथ्य लूँगी और यह अभागा रज्जू गाँव की खाक छानता रहा, तुझ तक न गया, न गया।

मकर-संक्रांति आई व मैं जाड़े की सुहानी धूप में ताजे वस्त्र पहन, ताजा मन लिए दुलरिया के घर गया तीन महीने बाद। सब बड़े प्यार से मिले। गनेश कुछ कटा-कटा सा रहा, पर मैं ज्यादे कटा-कटा था। वह थोड़ी-बहुत चेष्टा करता भी तो मैं झिटक देता।

पर दुलरिया वैसे ही मिली जैसे हमेशा लाड़-यार से मिलती थी। हम कभी फल कभी मिठाई खाते रहे व बातें करते रहे, सुहानी धूप में। दोपहर का खाना खाकर मैं तीसरे पहर भी जमा रहा व शाम की चाय पीकर लौट

आया। रात का प्रोग्राम मैंने स्थगित कर दिया। एकाध बार जी में आया कि रम्मी के पत्र मांग लूँ अपनी ही दुलरिया से क्या लाज ? कैसा लाज ?

पर ऐसा कर न सका, जाने क्यों ?

रम्मी के दर्दीले पत्र आते रहे। मैं तड़पता रहा, छटपटाता रहा व अपने को इस निर्दयता के लिए सजा देने की बीस तरकीबें सोचता रहा।

इसी बीच एक दिन राय जी से मिलने गया क्योंकि वहाँ राय जी से वात्सल्य स्नेह मिलता व एक स्नेह-सूत्र मकड़ी के ताने-बाने-सा उनकी लड़की बेला बुन रही थी. जो आठवें में पढ़ती थी स्थानीय गर्ल्स स्कूल में। बड़े मीठे बोल बोलती व चाव से जलपान कराती। और हमारे रज्जू भइया, रज्जू भइया करके सारा घर सिर पर उठा लेती।

राय जी तपाक से मिले, 'बहुत दिन पर इधर आए रज्जू ?'

'जी गाँव चला गया था।'

'बहुत अच्छा किया, तेरी बहन कैसी है ?'

'कौन दुलरिया ? अच्छी है, बहुत अच्छी।'

वे मुस्कराए फिर बोले, 'अच्छा, तू घर में जा, मैं जरा देवराज जी से मन्त्रणा कर रहा हूँ, आवश्यक।' जोर से बोले, 'बेला, ओ बेला।'

'आई पिताजी।'

'अरे देख तो तेरे द्वार पर कौन आया है।'

'कौन है ? भालू या बन्दर ?'

सभी ठठाकर हँस पड़े। जब बाहर आई तो लजाती हुई शरारत के साथ बोली—

'ओह रज्जू भैया, मैंने तो समझा था⋯⋯।'

'कि भालू है या बन्दर ?' 'क्यों'—मैंने पूरा किया वह बोली।

'आओ, मेरे पढ़ने के कमरे में चलो।'

'पढ़ायगी तो नहीं ? मैं पढ़ने से बहुत भागता हूँ।'

हम दोनों खिलखिला कर हँस पड़े। वह बोली,

'पढ़ाऊँगी मैं ? और तुमको ? अरे बाप रे। चलो तुम्हीं मुझको थोड़ी-सी गणित बता दो।'

'वह तो एक ही बात हुई। जितनी पढ़ने में मुसीबत उतनी ही पढ़ाने में।'

'फिर ? अच्छा चलो बातें करेंगे, तुम कहाँ गायब हो गए थे, जैसे'''''।

'गधे के सिर से सींग यही न ?' मैंने पूरा किया। हम फिर हँसे। मैंने कहा,

'गधा जरूर खेत चरने गया था पर सींग यहीं छोड़ गया था।'

मारे हँसी के लोट-पोट हो गए। उसके अध्ययन कक्ष में हमारी गप्पें देर तक चलती रहीं। उसकी माँ हम दोनों के लिए चाय व जलपान दे गई। हम छीन-झपट कर खाये-पिए।

फिर मैंने कहा देर हुई व चलने को तैयार हुए, वह भी मेरे साथ उठी। मैंने पूछा,

'गणित में क्या पढ़ती है ?'

'यही एक और एक दो। हम हँसे। मैंने कहा,

'अभी एक और एक, एक पढ़ना नहीं सीखी ?'

वह चकित होकर बोली, 'एक और एक, एक ? वह गणित तुमसे सीखूँगी।'

हम दोनों खिलखिला कर जोर से हँस पड़े। राय जी बोले, 'क्या है बेटी मुझे तो बता ?'

'गणित की एक समस्या रज्जू भैया सुलझा रहे हैं और उलटे उलझते जाते हैं।'

हम हँसे। मैंने कहा,

'मैं चलूँ राय जी, आप दोनों तो बड़े गम्भीर नजर आते हैं। आपकी मन्त्रणा समाप्त नहीं हुई।'

'नहीं बेटे, आओ न क्या पता कुछ तुम्हीं सुझाव दे सको, तू जा बेटी।'

बेला चली गई। मैं देवराज जी व राय जी के साथ सलाह-मशविरा में शामिल हुआ। देवराज जी जिला कांग्रेस के अध्यक्ष थे। समस्या यह थी कि जिले के लगभग सभी कार्यकर्त्ता राजनीतिक आंदोलन में जेल जा चुके थे। प्रान्त का आदेश आया था कि छब्बीस जनवरी को कम-से-कम दो स्वयंसेवक तो झण्डोत्तोलन करें ही और जेल जायँ।

उधर पुलिस ने नगर में १४४ धारा जारी कर रखा था, कोई जुलूस निकाल नहीं सकता था। एक-दो दिन पहले से ही नगर में चप्पे-चप्पे पर

पुलिस का पहरा बैठनेवाला था।

अब समस्या यह थी कि झण्डा कौन फहराये? २६ जनवरी को झण्डा न फहराया गया तो जिले की बड़ी बेइज्जती हो जाती। अगर देवराज जी जेल चले जाते तो कांग्रेस का सारा काम-काज ही ठप्प पड़ जाता, ये बिचारे सातवें अध्यक्ष थे, छह जेल में पड़े थे।

मेरे दिमाग में एकाएक बिजली कौंधी। याद आ गया, अरे, इससे अच्छा व सुन्दर तरीका अपने को सजा देने का और क्या होगा?

मैंने कहा, 'तो इसमें इतना परेशान होने की कौन सी बात है? मैं चला जाऊँगा।'

रायजी बोले, 'नहीं, नहीं, राजेश मेरा मतलब यह नहीं था, तुम यूँ ही सेवा-कार्य में बहुत-सा समय देते हो, फिर तुम्हारी पढ़ाई का भी नुकसान होता है। आजकल पुलिस मारने भी लगी है। आए दिन मार से बेहोश होने, हाथ-पाँव टूटने, मरने तक की खबरें आती रहती हैं। नहीं, यह नहीं होगा।

देवराज जी मौन रहे। उनको शायद अपनी समस्या का हल दिखाई दे रहा था। मैंने कहा,

'क्यों नहीं रायजी, मुझे आशीष दीजिए।'

'कैसे आशीष दूँ रज्जू, हर जगह आग में झोंकने के लिए तुम्हीं है?'

जब मैंने हठ किया तो बोले, 'अभी तीन दिन हैं, २६ तारीख में। तू सोच-समझ कर जवाब देना।'

मैंने तुरन्त कहा, 'आप तो जानते हैं रायजी मैं देर तक किसी मसले पर सोचने-समझने का आदी नहीं। यह मेरा अन्तिम फैसला। मैं २५ तारीख की रात को ९ बजे यहीं मिलूँगा। मुझे सब समझा दीजिएगा क्या करना।'

इतना कहकर मैं उठ पड़ा। दो दिन तक आकाश में उड़ता रहा। भारत-माता के बन्धन मुक्त करने हैं, बाबा की याद आई। यदि इसमें प्राण भी होम हो गए तो कोई पछतावा न रहेगा।

एक बार सोचा रम्मी को यह खुशखबरी सुना दूँ, पर क्या पता कहीं सेंसर काम कर रहा हो तो? जी में आया दुलरिया से कह आऊँ। मैं तो फूला नहीं समाता था, कहाँ उठूँ, कहाँ बैठूँ, इतना महत्वपूर्ण व्यक्ति, जिले की लाज मुट्ठी में लिए घूम रहा था। गाँधी, नेहरू, पटेल की पंक्ति में बैठने जा रहा था।

२४ तारीख को दुलरिया से मिलने गया। बड़े चाव से मिली। उसने रम्मी का एक ताजा पत्र दिखाया अपने नाम। जिसमें मेरी ढेर-सी चर्चा थी व मैं कोई ऊटपटांग काम करके अपना जीवन खतरे में न डाल दूँ, इसके लिए देखभाल करने की हिदायत थी।

आज मेरे मन में किसी के प्रति द्वेषभाव न था। मैं गनेश से भी बेखटके मिला। हँस-हँस के बातें कीं। वह तो एक शैतान ठहरा। दुलरिया के सामने बोला,

'बाप रे बाप, यह रज्जू तो है कि जरा-सा रम्मी की छाया कोई छू दे तो बस जान ही दे देगा।'

'दे देगा नहीं, गनेश ले लेगा।'

हम हँसे। वह बोला, 'मुझे देख, माल छोड़ दिया है, बहती गंगा है जिसे प्यास लगे जी भर पिए, अँजुली भर पिए, कोई रोक-टोक नहीं।'

'छिः! छिः! कैसी बात करते हो?' दुलरिया बोली।

'कैसी क्या रे? गंगाजी से बढ़कर पवित्र कौन है? सारी दुनिया डुबकी मारती है फिर भी पवित्र की पवित्र।'

'मैं भी अब गंगा में डुबकी मारनेवाला हूँ गनेश?' मैंने कहा।

मेरी गंगा में! मार ले भाई मार ले, माल तेरा है, देने से क्या हो गया।'

'छिः! छिः! कुछ तो शऊर होता बात करने का, यह मेरा भाई है ना?'

'हाँ, हाँ, तभी तो गम्हौरियों की खुजली मिटाता है।' सारे वातावरण में एकरस, एक उत्साह छाया रहा। मैं खा-पीकर बड़ी रात को लौटा जैसे पुराने दिन लौट आए हों।

सोने से पहले रम्मी को एक बड़ा-सा प्यार भरा खत लिखा जिसमें उसके सारे पत्रों का उत्तर देने की चेष्टा की। अपनी नासमझी पर पछतावा जाहिर किया। फिर मिलने की तमन्ना जाहिर की।

सब कुछ लिखा पर अपने २६ तारीख के प्लान के बारे में कुछ भी न बताया। केवल इतना ही लिखा कि अभी तक तो गंगा में नाव पर चक्कर मारा फिर अब डुबकी मारनेवाला हूँ, खुशखबरी तुमको दो-तीन दिन के भीतर मिल जायगी।

रम्मी मेरा पत्र पाकर कितना खुश हुई होगी।

# २६

२५ की रात को देवराज जी व रायजी के साथ मैंने खाना खाया। बेला ने खाना खिलाया। तय यह हुआ कि मैं वहीं सो भी जाऊँ व सवेरे बेला तिलक करके भेजेगी। सेठ रामनारायण भी आए थे रात को। शायद उनको सब पता था पर वे खाना खाने न आ सके। मुझे साहस ढेर-सा देते रहे जो अनावश्यक था।

आधी रात हो गई व मुझे नींद ही न आए। थोड़ी देर के लिए आँखें लगीं तो देखा स्वप्न जिसमें गांधीजी गाव तकिया लगाए बैठें थे एक ओर नेहरूजी व एक ओर पटेलजी थे। तभी मैं और रम्मी, दोनों पहुँचे तो उन्होंने संकेत से बैठने को कहा। रम्मी खादी की श्वेत साड़ी में खूब जँचती थी। मन्त्रणा हो रही थी वालंटियर तो चले गए जेल, आन्दोलन अब कैसे चलाया जाय। रम्मी बार-बार अपने रंगीन चप्पल को देखती जो मेरे चप्पल के ऊपर चढ़ गया था पाँव से छेड़ते समय।

खैर, नींद तीन बजे के लगभग खुल गई व मैं रायजी के साथ-साथ गंगा-स्नान करने चला गया। वे रोज सबेरे गंगा नहाते थे माघ में।

छह बजते-बजते सारे नगर में पुलिस का भयानक पहरा हो गया। वैसे काफी सख्त पेट्रोल रात को होता रहा। मैं खद्दर का कुरता, धोती, चप्पल पहन पूरा नेता बन तैयार हो गया। जलपान का हलुआ व नमकीन लाकर बेला ने रखा, पर यह क्या?

उसकी आँखें तो सजल हो रही थीं। मैंने कहा, 'अपने हाथ से खिला तो दे क्या पता इतना अच्छा खाना कब मिले।'

वह क्षीण मुस्कराई व अपने हाथ से चम्मच में हलुआ लेकर मेरे मुख में डाल दी।

'तू भी साथ खा न'—मैंने हठ किया।

वह बैठ गई व खाने लगी। कुछ रुककर आँसुओं में बोली, 'जाने से पहले तू नहीं खिलायगा भइया?'

'क्यों नहीं रे, ले।'

और मैंने उसके मुँह में डाल दिया। उसकी माँ देखकर हँस पड़ी। बोली, 'इसे कहते हैं भाई-बहन का प्यार।'

हम चाय पीकर तैयार हो गए। मुझे गलियों के रास्ते अकेले चौक के झण्डापार्क तक पहुँचना था तथा वहाँ एकाएक झण्डा उड़ा देना था। मैं ठीक सात बजे रायजी, देवराज जी का आशीष लेकर चला। चलने से पहले बेला ने दही, अक्षत व रोली से तिलक किया, उसकी माँ को प्रणाम कर मैंने आशीष लिया।

टीका देते समय बेला के नयनों से टप-टप आँसू झरने लगे। मैंने आश्वासन के तौर पर उसका गाल थपथपा दिया। बोली,

'भगवान तेरी रक्षा करें भइया।'

'तेरा आशीर्वाद रक्षा करेगा, पगली, रोते नहीं। मंगल-वेला में आँसुओं से पथ गीला नहीं करते भइया का।'

मैं गलियों का चक्कर काटता झण्डापार्क पहुँच तो गया पर वहाँ का पहरा देखकर मेरी सारी अक्ल गुम हो गई। गिरफ्तार होना तो आसान था पर झण्डा फहराए विना पकड़ा जाना सारे प्रयत्न का व्यर्थ होना था। मैं हाथ में एक पतली छड़ी, रायजी की, लिए था जिसमें पाकेट से झण्डा लेकर उड़ा देना था।

आठ बजे सतर्कता वहुत वढ़ गई। सुपरिंटेंडेंट पुलिस मि० मोहले बड़ा जालिम मशहूर था। उसकी सूरत से भूत डरता था, आदमी को कौन कहे। वह कहा करता था, मैं तो अपने डण्डे से सारा सत्याग्रह ठण्डा करके रख दूँगा। पीटता बड़ा बेरहमी से था।

साढ़े आठ बज चले सिपाहियों में ढील आने लगी। झण्डोत्तोलन का समय ८ से ९ वजे तक था। मोहले घूमते-घूमते नगर की और दिशा में निकल गया। वह पुलिस जीप पर चक्कर लगा रहा था।

इसी समय मौका पाकर मैं बड़े इत्मीनान के साथ हाथ में छड़ी लिए रईशाना चाल से चला पार्क की ओर। जैसे यूँ ही इधर से उधर कोई राही जा रहा हो। पर झण्डे के स्थान पर पहुँचते ही मैंने झट से छड़ी की 'गोब' में झण्डा चढ़ा लहरा दिया व चिल्लाने लगा,

'तिरंगे झण्डे की जय ।
भारतमाता की जय ।
महात्मा................ ।'

इतने में बीसियों पुलिस झपट पड़े व हाथ से छड़ी व झण्डा छीन लिए । मेरे हाथ दोनों पकड़ लिए गये । इसी समय मोहले भी जीप में चक्कर काटता आ गया। उसकी सूरत देखते ही मैं समझ गया आज तो पड़ी मार। मन में पहले तो 'बाबा व' आई, फिर महात्मा गांधी फिर 'रम्मी' । मैंने एक प्रकार से आँखें मूँद लीं । मैं अपनी आँखों से अपनी दुर्गति नहीं देखना चाहता था ।

पर यह क्या ? वह तो आकर मुझसे बड़ी शिष्टता से बातें करने लगा,

'आपका नाम ?

'राजेशकुमार' आप तो जानते हैं ।'

'पढ़ते कहाँ हैं ?'

'डी० ए० वी० हाई स्कूल में ।'

'क्यों आग से खेल रहे हैं ?'

'देश की आजादी........।'

'किसने भेजा आपको ?' वह डपटा ।

'मैं अपने मन से आया ।'

'अच्छी बात है, इस जीप पर बैठिये तो ।'

सिपाहियों से बोला, 'छोड़ दो इनका हाथ ।'

और जीप पर नगर का चक्कर काटता-काटता वह कोतवाली पहुँचा । सारे रास्ते में पागलों सा चिल्लाता रहा, 'महात्मा गांधी की जय, भारत-माता की जय ।'

कोतवाली में मुझे हाजत में बन्द कर वह तो चलता बना, पर मुझे भय लग रहा था कि मेरी कुटम्मस होगी । दोपहरी होते-होते रायजी ढेर सी मिठाइयाँ व खाना घर से लेकर मेरे लिए पहुँच गये ।

उधर नगर भर में मेरे गिरफ्तार होने का समाचार बिजली सा कौंध गया । तीसरा पहर होते-होते तीनों-चारों हाई स्कूलों से विद्यार्थियों का बड़ा भारी जुलूस विभिन्न दिशाओं से निकला जो गंगा की भयानक बाढ़ की तरह झण्डापार्क की तरफ बढ़ने लगा ।

इसे रोकना पुलिस के लिए कोई आसान काम न था। मोहले को गोली चलवाने में विश्वास नहीं था। उसमें व्यर्थ का झंझट व बदनामी थी। वह केवल 'डण्डे' में विश्वास करता था। पर इतनी बड़ी जमात पर नगर के थोड़े से पुलिस कहाँ तक लाठियाँ चलातें? उसने अपनी मोर्चाबन्दी पार्क में झण्डे के इर्द-गिर्द पच्चीस गज के घेरे में कर लिया। जो कोई उसके अन्दर घुसने की कोशिश करता उस पर पुलिस बुरी तरह लाठी चलाती।

मजे की बात यूँ है कि वह सभा होके रही। विद्यार्थियों के समूह अगुआ गिरफ्तार हुए जिनमें चोट तो सभी को आई थी पर पाँच छह बुरी तरह पिटे थे। उसके सिर से, पाँव से, हाथ से, खून टप-टप टपकता था।

जब इस दशा में वे कोतवाली पहुँचाये गये पुलिस वान में लादकर तो मैं देखकर हैरान रह गया। मन को बड़ी व्यथा पहुँची। ऐसा लगा जैसे मेरे ही कारण इनकी यह दुर्गति हो रही है।

असिस्टेंट सर्जन आकर रात को मरहम पट्टी थोड़ी सी कर गये।

मैं अनजाने ही इनका 'नेता' करार दिया गया।

रात को जाड़े की चाँदनी में कोतवाली के कम्पाउण्ड में घूम घूमकर मोहले ने ढेर सी बातें कीं। वह जानता था कि मैं स्कालरशिप-होल्डर हूँ व पढ़ने में काफी अच्छा हूँ। समझाता रहा कि जीवन बर्बाद हो जायगा इस पथ में। पढ़ाई नष्ट हो जायगी। वह बाढ़ व मेले में किए गए मेरे कामों को जानता था शायद इसीलिए भलमंसी से काम ले रहा था।

उसने दो तीन डायरियाँ दिखाईं जो पकड़े गये विद्यार्थियों के पाकेट से निकली थीं व मुझे जानकर आश्चर्य हुआ। जब उसने कहा कि अमुक इसलिए यहाँ आया है कि अगली वार्षिक परीक्षा में उसे फेल होने का भय है। सचमुच तीन चार थे ही ऐसे जो उधर न सही तो इधर सही के लिए आ गये थे।

खैर, उसकी सारी बात का नतीजा यह हुआ कि मैं टस से मस न हुआ। 'न तो मुझे किसी ने भेजा है और न मैं क्षमा मांग कर जाऊँगा।' अन्त में वह बोला,

'ठीक, आप कल तक सोच लीजिए नहीं तो परसों मैं अपने तरीके से समझाऊँगा। आप जानते हैं न, मेरा तरीका?'

'खूब।'

हम विदा लिए। मेरे मन में भय तो था ही।

दूसरे दिन हमें समझा बुझाकर वापस ले जाने के लिए तीनों हाई स्कूलों के हेडमास्टर आए। सब गार्जियन रातों रात जाने कैसे जान गए जो आ पड़ें। मेरे पिताजी भी आए। इनके अतिरिक्त दुलरिया, गनेश, रायजी, बेला, सेठ रामनारायण भी पधारे।

दुलरिया हम सत्रह व्यक्तियों के लिए पूड़ी व मिठाइयाँ लेकर आई थी। मोहले की इजाजत से हमें खाने दिया गया।

सभी चकित थे मेरी इस गर्वीली वहन की शान पर। यहीं दुलरिया का भी परिचय सेठ रामनारायण से हुआ। वैसे वे गनेश व उसके पिताजी को जानते थे व्यापार के सिलसिले में।

रायजी ने बेला का परिचय दुलरिया से कराया। दोनों ने चकित दृष्टि से एक दूसरे को देखा। दुलरिया ने भूल से पूछ दिया।

'आपके घर का कौन गिरफ्तार हुआ है?'

'रज्जू भइया! आपके सामने तो हैं।'

वह मुस्कराते-मुस्कराते आर्द्र हो गई। पलकें नत हुईं व मोती झरने लगे। दुलरिया बोली,

'आप बड़ी भावुक हैं।'

'आप बड़ी बहन हैं रज्जू भइया की, मैं छोटी हूँ, मुझे तुम कहिए ना।'

'यही ठीक रे, पर तूने इस निर्मोही को कैसे पा लिया। अरे हाँ, मैं तो भूल ही गई। चाचाजी की ही तो वेटी है, क्यों न हो।'

बहुत धीरे से सभल कर बोली वेला,

'कल मैंने ही इनको तिलक करके भेजा था और आज..........।' उसके बोल अटक कर रह गए।

'अरे बेला, तभी तो ये साबूत सामने खड़े हैं, नहीं तो मोहले एक-एक जोड़ अलग-अलग कर देता।'

हम सभी मुस्करा पड़े। वेला भी। उसने नन्हीं सी रूमाल निकाल कर आँसू पोंछ लिया। इतने में एक नई कार से फूफाजी व रम्मी उतर पड़े। मैं तो हैरान रह गया।

मैंने दुलरिया की ओर ताका। वह मुस्कराकर बोली, 'ले अब संभाल

अपनी राधा को। मैंने कल ट्रंक-काल कर दिया था।'

इतने महत्वपूर्ण व्यक्ति एक मुझके लिए। मैं तो सचमुच 'नेता' हो गया। फूफाजी के चरण छूकर मैंने प्रणाम किया। रम्मी केवल मुस्कराकर मारे मान के सिर नीचे किए रही, केवल आँखें उठाकर एक बार देखी थी। इनके आते ही दुलरिया बेला को लेकर कम्पाउण्ड में एक ओर चली गई बातें करते।

फूफाजी बोले, 'यह तूने क्या किया ?'

'मुझसे और आशा ही क्या की जा सकती थी ?'

'यहां से छूटने का क्या प्रबन्ध हो रहा है।'

'पिताजी से बातें कीजिए।' मैंने कहा व कम्पाउण्ड में एक ओर मौन-चिन्तन में रत पिताजी की ओर सकेत कर दिया जिन्होंने एक बार भी नहीं कहा था, मैंने भला किया, बुरा किया, मुझे माफी माँगनी चाहिए, डटे रहना चाहिए।

अब मैं था व रम्मी सामने। उसने आँखें उठाईं तो नयन बरस रहे थे। मैंने कहा,

''मैंने समझा आशीष देने आई है, बल व प्यार देने, तू तो आंसू बहाने लगी रम्मी।'

'सो तूने अपने को झोंक ही दिया भट्ठी में।'

'नहीं रे, इसे तो 'शशुर बाड़ी' बोलते हैं, बंगला में।'

'मैं तुम्हारे मौन से डरती थी। पर तुमने मीठा पत्र लिखकर डाल दिया यह करने से पहले।'

'मैं इतना खुश था, सच क्या कहूं ? और तुझे जो इतना व्यर्थ में सताया उसका प्रायश्चित तो चाहिए।'

'और तुमने वादा क्या किया था ?'

'पर तुम साथ कहाँ थी ? अब जो कहो करूं ?'

'तो लौट चलो यहां से।'

'हाथ में चूड़ी पहनकर। यदि तेरी इच्छा होगी ऐसी, तो यही करूंगा।'

इतने में दुलरिया बेला को लेकर आ गई। मैं दुलरिया से डरता था, जाने क्या बोल दे, मुंहफट ठहरी। मैंने परिचय कराया,

'यह रम्मी, मेरी फुफेरी बहन रेशमा और यह वेला हमारे रायजी की लड़की मेरी मुंहबोली वहन। इसी ने तिलक लगाकर भेजा तो हाथ-पांव सावुत नजर आ रहे हैं।'

हम सभी हंस पड़े। दुलरिया बोली,

'यानी मैं एक असली बहन, तुम दोनों नकली, जोड़ घटा के।' दोनों शरमा गईं। दुलरिया बड़ी वदमाश है। रायजी भी आ गए व रम्मी से मिले। फूफाजी, वावूजी, रायजी, सेठ रामनारायण के सारे प्रयत्नों का फल यह हुआ कि सोलह आदमी गार्जियन की जिम्मेदारी पर छोड़े जा सकते थे। केवल मेरे केस में मेरी जिम्मेदारी की जरूरत थी। सो भला मुझसे कहाँ मिलनी थी।

छह तो तुरन्त छोड़ दिए गए। उनके गार्जियनों ने प्रतिज्ञा पत्र पर दस्तखत करने पर कि वे कभी भविष्य में आंदोलन में भाग न लेंगे।

एक अभागे ने इस प्रकार छुटकर पाए अपने छोटे भाई को कोतवाली के बाहर इतनी बुरी तरह पीटना शुरू किया कि देखनेवालों का रोआं कांप उठा। उसने मारे बेंत के नीचे से ऊपर तक फोड़कर घायल कर दिया। रम्मी, बेला, दुलरिया सहम उठीं। कांप उठीं।

इतने में हमारे चलने की वेला आ गई। हमें कोतवाली से जेल जाने की आज्ञा हुई। पुलिस वान आकर लग गई। मैंने वाबूजी, फूफाजी के पांव छुए, रायजी व सेठ से आशीष लिया। दुलरिया ने सबके सामने मेरा माथा चूम लिया। बेला ने मेरे पांव की धूल सिर आंखों पर लगाया व सिसक-सिसक कर रोने लगी। रम्मी चलते-चलते 'रज्जू' कहकर बेहोश हो गई। दुलरिया ने थाम लिया जिसकी आंखें गीली थीं।

दूसरे दिन कोर्ट में पेशी हुई। मेरी छह महीने की सख्त कैद की सजा हुई। बेला सिसक-सिसक के रोई, दुलरिया व फूफाजी तथा रायजी की आँखें गीली थीं। यदि न आंसू आए तो एक पिताजी को, दूसरे रम्मी को। दोनों टक-टक मौन ताकते रहे।

मैं इससे डर गया। मैं चाहता था रम्मी जीभर के रो सके। पिताजी तो खैर, सिंह समान थे, उनका आंसू कौन देख सकता था।

कोर्ट से वाहर होने पर मैंने सबको हाथ जोड़ा। बेला से बोला, 'तुझे खुश होना चाहिए बेला इस मंगल-कार्य में तू रोती है?'

रम्मी बोली, 'ठीक कहता है रज्जू, देख मुझे मैं कहां रोती हूं।' मैं जान गया यह दृढ़ संकल्प की भूमिका है, मैं बोला दुलरिया से,

'देखना रम्मी बिना रोए लखनऊ न जाय।'

और पीठ फेर मैं पुलिस की 'वान' में बैठ गया। सबने हाथ हिलाया, रूमाल हिलाया।

रम्मी ने कुछ भी न किया।

वह एकटक ताकती रही।

रम्मी का क्या होगा?

## २७

जेल के दिन भी एक प्रकार से मौज से ही कटे। हम कोई काम धन्धा नहीं करते थे। कोई देता भी नहीं था। नये आनेवालों का स्वागत व जानेवालों की विदाई बड़ी खुशी व गम के साथ हम किया करते। तसलों को तबला बनाकर संगीत का प्रोग्राम हम आये दिन करते। ताण्डव नृत्य करनेवालों की भी कमी न थी।

हम बराबर समाचार के भूखे रहते। देश में क्या हो रहा है। घर की चिन्ता बहुतों को बिल्कुल न थी पर कुछेक को बेहद थी दाँतून व चावल, रोटी तक के लिए सत्याग्रह हो जाते।

वहाँ 'तिकड़म' की भरमार थी। बात बात में तिकड़म। जेल के कर्मचारी कुछ तो भ्रष्ट थे व कुछ हमारी सहायता करना 'पुण्य' समझते थे। इसलिए तिकड़म बहुत जोर पर था।

पर यह तिकड़म तो सत्याग्रह के सिद्धान्त के विरुद्ध है। मैं इतना जानता था फिर मेरी 'शान' के भी खिलाफ तो था। दुलरिया ने दो-तीन बार कुछ सामान व फल-मिठाइयाँ तिकड़म से भेजा, जिन्हें लेने से मैंने इन्कार किया।

हां तिकड़म से आए 'रम्मी' के खत मैं इन्कार न कर सका।

छह महीने में रायजी बेला के साथ दो-तीन बार मिल गए। दुलरिया भी एक-दो बार मिल गई। यदि कोई न आया तो पिताजी और रम्मी।

कहीं वे दोनों भीतर ही भीतर घुल तो नहीं रहे हैं।

छह महीने बीतते भी देर न लगी। रायजी हमें लेने पहुँचे थे। दुलरिया रायजी के घर पर मेरा इन्तजार कर रही थी। मैं रायजी के साथ वहाँ पहुँचा तो दुलरिया व बेला ने मेरी आरती उतारी, मैं निहाल हो गया। मन ने कहा,

'काश, रम्मी होती।'

रात दुलरिया के घर काटकर सवेरे भलेमानस आदमी बन, डण्डा, बेड़ी, तसले की दुनिया छोड़ मैं गांव को चल पड़ा। माँ से मिला, पिताजी के चरण छुये। वे कुछ दुबले हो चले थे।

पर इस जेल जाने का एक लाभ हुआ। इस बार पिताजी ने खूब बातें कीं मुझसे। मेरे मन से उनका भय बहुत कुछ जाता रहा। उनका स्थान स्नेह व सामीप्य ने ले लिया। जेल की एक-एक छोटी-बड़ी बात पूछा करते।

गाँव का चक्कर लगाते सोनिया-मोनिया भी मिल ही गईं। सोनिया कुछ उदास थी। जाने क्यों मोनिया और खिलती जा रही थी, उभरती आ रही थी।

मन ने पूछा, कली स्वयं फूल बन रही है या?

खड़ानन पण्डित इस लगन में विवाह अपना नया कर चुके थे। पहले वाले मामले में ससुर व अगुआ दोनों को दो-दो वर्ष की सजा हो गई थी। पांच बीघे खेत और होम कर पांच ही कोस पर से वे पन्द्रह-सोलह साल की परी लाए हैं। सुना भँवरे मँडराने लगे हैं, दिन को कम, रात को बेसी। शाम को भंग व रात को संगीत का प्रोग्राम बराबर रहता है। उनके हितैषियों की संख्या बढ़ रही है।

बाबा ब मर चुकी थीं। सुना जीते जी पतोहू ने पानी न दिया मरने पर बुढ़िया को माँड़ देते हैं।

मैं दो दिन गाँव रहकर शहर आ गया। दिल अभी भी उसके नाम जुबान तक न ला सका था जो रोम-रोम में समाया था। मैं अभी तक

उससे मिलने को छटपटा रहा था जिसकी मुट्ठी में मेरे तन-मन दोनों छटपटा रहे थे। मैं गया दुलरिया से मिलने तो उसने हठ किया मैं लखनऊ जाऊं तुरन्त।

इस बार मैं उसका कहना टाल न सका। झट तैयार हो गया। कारण मुझे बनारस इन्सपेक्टर आफिस भी तो जाना था, मेरी पढ़ाई व नामलिखाई का क्या होगा? हेडमास्टर नाम लिखने को तैयार न थे। फिर वही 'माफी' का पचड़ा।

मैं आखिर लखनऊ चल पड़ा। दुलरिया ने रम्मी के लिए एक साड़ी व कुछ मिठाइयां दीं, वेला ने स्वयं खींची हुई मेरी एक तस्वीर मढ़वाकर रम्मी के लिए दिया। और मैं?

मैं तो स्वयं को उपहारस्वरूप लिए जा रहा था।

सावन की हरियाली रेल लाइन के दोनों ओर दूर-दूर तक फैली थी। नन्हें-नन्हें गांवों में पेड़ों के डाल में झूले पड़े थे, रह-रहकर झूले पर गाते लड़के-लड़कियों के मधुर कण्ठ का झोंका मुझे छू जाता।

तार दे दिया था। लखनऊ के चारबाग स्टेशन पर फूफाजी व रम्मी मिले मेरा इन्तजार करते। फूफाजी ने बस एकदम से बाँहों में अंकवार भर लिया।

और रम्मी!

और बड़ी, और उभरी हुई और भरी हुई, अंग-अंग में मोहकता लिए, मात्र चेहरे पर एक मोहक उदासी। क्या कहूं उस रूप को।

जो एक बार देखा तो ठगा सा रह गया। मेरा सूटकेश फूफाजी कुली से उतरवाने लगे इस बीच हमने एक बात तो कर ही ली।

रम्मी बोली, 'तो आखिर तुम आ ही गए।'

'तू कितनी बड़ी हो गई?'

'पर तू तो मुझसे भी लम्बा हो गया, देख।'

और पास आकर बगल में खड़ी हो गई। अब वह चप्पल नहीं बल्कि सैण्डल पहने थी फिर भी मेरा कन्धा उससे ऊंचा ही लगा। इस सुखद स्पर्श से मैं सिहर उठा। कन्धे व कमर झनझना उठे।

हम मुस्करा उठे साथ ही।

क्या उसे भी।

ओह, बड़ी-बड़ी आँखें जब अदा के साथ मुस्कराती हैं तो दिलों पर सावन क्यों न लहरा जाये।

फूफाजी अपनी कार लाए थे। हम दोनों-तीनों कार में बैठ चल दिए। बुआ से मिलकर मैं तो निहाल हो गया। वे कितनी खुश थीं, बोलीं, 'अरे यशोदा का कन्हाई आ गया रे?'

और 'राधा' खड़ी मुस्करा रही थी।

फूफाजी हमें बंगले पर छोड़कर दफ्तर चले गए। मै तुरंत 'गुसलखाने' में घुसा व नहा-धोकर कपड़े बदल, भूत से आदमी बन गया।

अब बारह बज चले थे। फूफाजी का खाना नौकर लेकर दफ्तर जा चका था। बुआजी खाना खाकर आराम करने गईं। मुझे खिलाने पर हठ कीं तो रम्मी ने कहा, 'मैं खिला दूंगी रज्जू भइया को माँ, तू खाना खा ले।'

फिर तो क्या था। वह आई मुझे बुलाने के लिए खाना खाने। कमरे में हमारी आंखें मिलीं।

'अरे यह भूख कभी मिटेगी रे? जितना खाओ, बढ़ती जाती है।'

'तब तो एकादशी ही भली, सोलहों दण्ड।' हम मुस्कराए।

'सो तो साल भर से कर रहा हूं।'

'आसार तो ऐसे नहीं लगते।' कहकर वह मुस्कराई। मैं उसके संकेत को समझ गया। बोला,

'उसने तुमको जो उपहार दिया है, देखकर चकित रह जाओगी।'

'उसका उपहार तो मेरे सामने है।'

कहकर वह गले में बाँहें डाले फिर झूल गई। मैंने इस बार जी भरके उसे चूमा व आलिंगनबद्ध मौन पड़े रहे। किसना सुख था उस घड़ी में।

इस प्रकार अगर प्राण भी निकल जाते तो कोई मोह न था। कुछ सम्भलकर मेरे कन्धे पर सिर रख बोली,

'अब मैं तेरे बिना जीयूंगी नहीं, रज्जू। ऐसा लगता है।'

'क्यों री?'

'ये तन मन साथ नहीं देते। तू नहीं जानता यह शरीर कितना बीमार रहा, कितनी बार, यह मन है कि रात-दिन 'रज्जू-रज्जू' की पुकार करता है, मै क्या करूं। कैसे समझाऊं?'

'ले अपने रज्जू को, तेरी मुट्ठी में पड़ा तो है, चाहे इसका जो कर।'

'इसे मेरी चले तो आँखों का आंजन बनाकर पलकों में रात दिन रखूं।'

'पर आंसू निकलेंगे तो रज्जू बह जायगा।'

'तू रहा भोंदू का भोंदू। अरे रज्जू रहेगा पलकों में तो आंसू कहां से निकलेंगे? वहां तो बरावर मुस्कान भरी होगी।'

मैं हँसा। वह बोलती गई मेरे गोद में सिर डाल।

'और एक तू है कि कभी बाढ़, कभी जेल, यानी रात-दिन मुझे सताने-जलाने की कोशिश करता है।'

'तो तू जानती है कि मैं यह सब तुझसे रूठ कर करता हूं।'

'मैं तो क्या सभी इसे जानते हैं, बावूजी जानते हैं, दुलरिया जानती है, कौन नहीं जानता?'

'छि: छि: तव तो मेरी सारी सेवाओं का अर्थ ही कुअर्थ हो गया।'

'जी जनाब, उनसे सुगंध निकलती है ना? सब मंहक लेते हैं।'

'अच्छा चल, अब खाना खाएं मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं।'

'पहले दिल के चूहों का तो पेट भर ले।' कहकर वह हंसी व हम दोनों खाना खाने चल दिए।

बोली, 'मेज पर खायगा?'

'नहीं तो?'

'चल गांव की तरह चौके में खाएँ।'

'चल।'

'रम्मी ने संजो संजोकर परसा। हम एक ही थाल में खाने लगे-पुराने दिनों की तरह। खिलाने भी लगे। खाते-खाते बोली,

'गांव गया था?'

'हाँ तो।'

'चाची व बाबूजी कैसे हैं?'

'ठीक हैं, बाबूजी कुछ दुबले हो गए हैं।'

'यह सब तेरे कारण होता है, वे 'रोए' नहीं कभी।'

'और तू?'

'वह क्षीण मुस्कराई। बोली,

'रोएँ कहाँ से आँखों में पानी भी हो ?'

'तभी बेपानी हो रही हैं आँखें तेरी।'

हम हँसे। वह बोली,

'सोनिया-मोनिया कैसी हैं।'

'सोनिया उदास थी, लगता है रमनथवा........ ।'

'कहीं और मुँह मार रहा है।'–वह हँसी।

'तेरी राधा कैसी थी ?' शरारत थी चेहरे पर।

'कचरस अमरूद तोड़कर दे गई।' हम हँसे।

'तूने क्या दिया ?'

'देना तो बहुत चाहता था पर जब उसने बाँहें फैलाईं तो एक दूसरी ही सूरत कौंध गई।' रम्मी शरमा गई। बात बदलकर बोली,

'तेरी बगिया में 'बेला' तो खूब खिल रही होगी।'

'खिलती तो है रे, पर बीनसवाले को सुवास का ज्ञान कहाँ ?' हम हँस पड़े।

'हमारे लीची के पेड़ तो खूब फले होंगे ?'

'रम्मी खाना खाने दे,'—मैंने कहा।

मेरा गला भर आया था। मैं उन दर्दीली स्मृतियों को फिर से ताजा नहीं करना चाहता था मिलन-बेला में।

तीसरे पहर हम हाथ में हाथ लिए गप्पें करते रहें। फिर जाने कब मुझे नींद आ गई और वह कमरे से खिसक गई।

## २८

लखनऊ में रम्मी के साथ मैं कुल सात दिन रहा और सात दिनों में सात जन्म का सुख तथा सौ जन्मों का दुःख समेट लाया। पर अभी दुःखों की चर्चा करके रंग में भंग नहीं डालूँगा। सुखों की चर्चा सुखद है। उनकी स्मृति तक माधुर्य से भरी है। आज भी मन में मीठास घोल जाती है, इसलिए उन्हीं की चर्चा करूँगा।

वे अनमोल सुख—तन मन को पूर्ण सराबोर करनेवाले, तृप्त करनेवाले, उनका वर्णन न करना ही भला है। जिनके पास ऐसे सुखों की अनुभूति हैं वे बिना कहे समझ जायेंगे जिनके पास नहीं वे लाख कहने पर भी कल्पना से उसे पकड़ न पायेंगे। गूँगे का गुण है, चखो, मुँह में डालकर घुलाओ, मौन-तृप्ति का सुख लो, जुबान खोलने से लाभ? दुनिया की जीभ बड़ी है, कान बड़े हैं, पता नहीं बात कहाँ से कहाँ पहुँचे।

रम्मी मैट्रिक की तैयारी कर रही थी लड़कियों की एक पाठशाला से जहाँ साधारण पढ़ाई के अतिरिक्त स्पेशल कोचिंग का भी प्रबन्ध था व फीस बहुत ऊँची थी। सबेरे से दोपहरी तक क्लास लगते थे फिर छुट्टी।

रम्मी सबेरे-सबेरे स्कूल नहीं गई तो उसकी दो सखियाँ चन्द्रा व प्रीतम दोनों पंजाबी अफसरों की लड़कियाँ शाम को धमक पड़ीं। प्रीतम सलवार कुरता, लहराती चुन्नी में, दो चोटी किए, डोलते गोल-गोल कान की बालियों के साथ व चन्द्रा श्वेत बिना किनारी की सिल्क साड़ी व काले ब्लाउज में।

प्रीतम लम्बी है गोरी व बड़ी, चन्द्रा उससे छोटी है पर बहुत गोरी। प्रीतम की खूबसूरती लड़कानुमा लड़की की है, चन्द्रा की कोमल लड़की सी। वैसे उम्र में प्रीतम रम्मी से दो साल बड़ी होगी, चन्द्रा साल भर। प्रीतम

स्वभाव से शैतान है, दुलरिया से भी बढ़कर। आते ही परिचय में हाथ मिलाते समय उसने चिकोटी काट ली, मैंने जवाव दिया झट से उसका हाथ चूमकर। वह मात खा गई। हम सभी हँस पड़े। चन्द्रा ने हाथ जोड़ कर नमस्ते की।

चन्द्रा की ब्लाउज पर श्वेत क्रैंसेथियम बने थे व प्रीतम की कुरती पर डवल डलिया बनी थी। दोनों ही दोनों के स्वभाव व उभार के निराले प्रतीक लगे।

चर्चा प्रीतम ने ही पहले शुरू की मेरे पास आकर बेतकुल्लफी से मेरे कन्धे पर हाथ रखती हुई बगल में बैठ गई व बोली,

'अच्छा भाई साहव, आपने चूमने में तो बड़े तेज लगते हैं मगर हाथ ही चूमना सीखा है या और कुछ ?'

मैंने हँसते हुए उसके कन्धों को दोनों हाथ से पकड़ कर कहा, 'क्यों दिखाऊँ ?'

'अच्छा अभी रहने दीजिए। आप बड़े तेज लगते हैं।' हम तीनों-चारों फिर हँसे। रम्मी बोली,

'क्यों प्रीतम कहाँ गई तेरी चुहुल ?'

'अरी तूने, ट्रेनिंग लगता है, अच्छी दी है।'

रम्मी झेंपी। 'मैं तो क्या इसे ट्रेनिंग दूँगी यह कहीं और से सीखकर आया है।'

'जेल में स्वयंसेविकाएँ भी तो जाती होंगी भाई साहव।' प्रीतम बोली।

'वे इस प्रैक्टिस की पात्र नहीं।' कहकर मैं हँसा। चन्द्रा जो अभी तक चुप थी, बोली,

'भाई साहव, जाने क्या जादू आपने रेशमा पर किया है अखबारों में जब-जब आपकी तस्वीर निकलती थी रेशमा हमलोगों को दिखाती थी पर मुँह से बात निकलने के पहले आँखों से झर-झर आँसू बरस पड़ते थे।'

'धत् झूठी कहीं की।' रम्मी बोली, 'यही दोनों तुमसे मिलने के लिए बड़ी वेचैन हो रही थीं रज्जू।'

'हाँ, हाँ, सुना है आप 'रास' अच्छी रचाते हैं।'

'वह तो इस बात पर निर्भर करता है कि 'राधा' कैसी है ?'

प्रीतम फिर झेंप गई। बोली,

'देखिए, बादल उमड़े आ रहे हैं, चलिए थोड़ा झूला झूलें, क्यों रम्मी?'

'चल तेरा मन है तो।'

हम चारों गए झूले पर। सबसे पहले मैंने हठ किया कि वे तीनों झूले पर बैठें व मैं उसे जोर से झुलाऊँ। फूफाजी के बंगले के पीछे मौलश्री के गांठ में यह झूला पड़ा था घनी छाया तले।

सावन की पूरवा के झोंकों से हमारा मन यूँ ही मस्ती से भर रहा था। प्रीतम बीच में बैठी दोनों ओर रम्मी व चन्द्रा को लेकर। वही कान्ह बनी व दोनों को बुरी तरह छेड़ती रही। वे तीनों खिलखिलाकर हँसती रहीं व किसी गीत की कड़ी गाती रहीं, जो इस प्रकार थीं—

हरि हरि, छेड़ो न अबहीं मुरारी
उमरिया बारी रे हरी।
बात मानो हमरी संवरिया,
मारो तिरछी न मोहे नजरिया,
रामा, अरे रामा, रहिया न छेंको हमारी। उमरिया बारी.........
ढीठ इतना बनो न कन्हाई,
छोड़ो मोहन मेरी कलाई,
रामा, अरे रामा, श्याम बनो ना इतना अनारी। उमरिया.......
मोसे कान्ह करो न ठिठोली,
हटो फाड़ो न मेरी चोली,
रामा, अरे रामा, बिनती करूँ मैं तिहारी। उमरिया बारी........

अब प्रीतम ने मुझे व रम्मी को बिठाया, चन्द्रा को अपने पास ले ली व हम दोनों को झुलाने लगी। गीत भी फूट पड़ा,

झूलै कान्ह रे मेरो,
नन्दलाल प्यारो।
यमुना तीर कदम्ब डार,
रस हिंडोल झुलत लाल,
तिरीया मन रंग भरत,
नन्दलाल प्यारो।
झूलै कान्ह रे मेरो,

जब झूला कुछ ऊपर पहुँचा एकबार तो मैंने पूछा,

"क्यों रम्मी कुछ रंग भरता है ?'

'तू जब से आया, मैं तो रंग में छकी हूँ ।'

'तेरी सखियाँ बड़ी अच्छी हैं ।'

'वे दोनों तुझे 'हीरो' समझती हैं और जाने कितना बड़ा आदमी ।'

'क्यों ?'

'क्यों क्या, तेरे काम व तेरे जोश से वे खूब परिचित हैं । कहती हैं, नवयुवकों का 'हृदय-सम्राट' है तेरा भइया ।'

'बाप रे, तब तो मुझे सम्भलकर रहना पड़ेगा ।'

'डर नहीं, वे ऊधम मचायंगी पर दिल की साफ हैं ।'

'और तू ?'

'मेरे पास तो दिल ही दिल है और है क्या ?'

हम मुस्कराए । प्रीतम ने शोर किया,

'क्या फुस-फुस हो रही है रम्मी ? फिर मैं भी आऊँगी ।'

इस बार हम चारों झूले पर जम गए चाहे डाल टूटे या जाय । धीरे-धीरे झुलाने की बात तय पाई । प्रीतम मेरे बगल में बैठी । हम दोनों बीच में थे, उसके बाईं ओर चन्द्रा थी, मेरी दाहिनी ओर रम्मी । सबने दो-दो कर गले में बाँहें डालीं ।

इसके बाद हमारी आपसी छेड़खानियाँ व ऊधम पँजार, सावन की शाम को अंधेरे में, झूले पर चलते रहे । जब तन-मन दोनों रस से विभोर हो उठे तो हम कमरे में आए । तीनों-चारों चाय पी और गप्पें कीं । तब हम तथा रम्मी उनको छोड़ने गए । कार में पीछे तीन की सीट पर चार बैठे । प्रीतम जबर्दस्ती मेरे बगल में बैठी ताकि कशमकश में उसे तंग करने का मौका मिले ।

रास्ते में बोली, 'भाई साहब, सुना बाढ़-पीड़ितों की आप बड़ी सेवा करते हैं ।'

मैं घबराया । यह भूमिका काहे की है ? बोला,

'कभी-कभी ।'

'केवल गंगा की ही बाढ़ में या गोमती की भी ?'

तीनों ठठाकर हँस पड़ीं। बाढ़ तो मेरे बगल में ही लहरें ले रही थीं। मैंने कहा,

'गोमती में तो सबको डूबने-उतराने की छूट है, सेवा कैसी ?'

'गोमती की बाढ़ आपके आने से तेज हो गई है।'

'हाँ री, लहरों का छींटा यहाँ तक आता है।'

हम फिर हँसे। दोनों के बंगले आ गए! हम उनसे विदा ले लौट पड़े। रविवार को शानदार पिकनिक करने की योजना बनी।

लौटते समय रम्मी बोली,

'तुम सबका मन मोह लेते हो। तुममें जरूर कोई जादू है।'

'दुलरिया तो कहती है, 'परी' है।'

हम मुस्कराए। फिर वह स्वयं रुककर बोली,

'वे सब कुछ जानती हैं, तभी तो प्रीतम इतना छेड़ती है।'

'बड़ी शैतान है।'

मैं रुककर बोला,

'तेरी दोनों सखियाँ बड़ी अच्छी हैं।'

'और मैं ?'

वह चहकी।

'तू ? ऊहुँ।'

× × ×

हमारे दिन रात यूँ ही राग-रंग में बीतते गए। हम दिन-रात छके रहते, रस में विभोर। हमारे सुखों का कोई अन्त न था। अब हम दोनों अपने तन में जवानी से आनेवाले परिवर्तनों को पहचानते थे इसलिए पूर्ण प्यार व सम्पूर्ण समर्पण के बावजूद भी, एक-दूसरे से अनजाने, अनकहे, थोड़ी सी दूरी बरतते थे जो शालीनता के लिए आवश्यक थी। गोकि कभी-कभी प्यार की विह्वलता में लगता सारी सीमाएँ, सारे बन्धन टूट जायेंगे। आँधी के झोंको में कुछ भी न ठहरेगा।

केवल वह आदर्श, आदर्श प्यार, आदर्श त्याग......आदि भावनाएँ थीं जो हमें प्यार के प्रबल तूफान में भी अमर-ज्योति सा पथ दिखातीं। बहुधा

मैं उसे स्कूल तक छोड़ने व ले आने जाता। तीसरे पहर प्रीतम व चन्द्रा भी आ जातीं तो कभी कौल, कभी देकर, कभी सभी खेलते, साफ दिन हुआ तो थोड़ी बैडमिंटन हो जाती। सब कुछ, इतना मीठा लगता कि क्या कहूँ। मन बार-बार कहता 'भगवान ने यह दुनिया कितनी सुन्दर बनाई, कितनी प्यार भरी। इसमें कोई भूखों-प्यासों कैसे मरता है ? क्यों ?'

आखिर रविवार भी आ ही गया व हम चारों की टोली कार में पिकनिक के सारे सामान रखकर निकल पड़ी दस बजे के आसपास। ऊधम के सामान काफी थे जैसे—कैमरा, ग्रामोफोन, घुंघरू।

हम सबसे पहले 'जू' गए जो बड़े ही सुन्दर प्राकृतिक वातावरण में तैयार किया गया है। प्रोग्राम यह था कि पहले थोड़ा घूम फिरकर मुझे लखनऊ के ऐतिहासिक स्थान दिखायेंगे व फिर कहीं हमलोग खाना खाकर दोपहरी गँवायेंगे। शाम की चाय घर पर लेंगे। रात को पिक्चर देखेंगे 'देवदास'।

'जू' में हमारी ढेर सी तस्वीरें प्रीतम ने लीं। वह तो बिल्कुल लड़का बनी। ब्लाउज पर पैण्ट डाटकर काला चश्मा लगा बाब्ड हेयर कन्धे पर लहरा कैमरा लटकाए चल रही थी। रम्मी साड़ी में थी। उसने शानदार छापेवाली खूबसूरत हाथ के बुने सिल्क की साड़ी बंगालियों सी पहने थी। चन्द्रा आज भड़कीले कुरता व सलवार में थी। उसपर महीन श्वेत चुन्नी रह-रह कर बदरी के चांद को छिपाती व उभारती थी। मैंने एक रंगीन बुशर्ट व पैण्ट डाल लिया था।

'जू' में प्रीतम ने बहुत से 'शाट' लिए हमारे। मैंने रम्मी के कैमरे से थोड़े से 'स्नैप' लिए विशेषकर कटघरे में बन्द शेरों के। मुझे सारे भारत का सिंह-रूप सीखचों में बन्द लगा। ध्यान आया 'पिंजरे का व्याघ्र' पढ़ा था, जाने किसने लिखा था।

मुझे वहाँ थोड़ा गंभीर देख चन्द्रा बोली, 'भाई साहब, क्या सोचने लगे ?'

'कुछ भी नहीं रे, सारे भारत को पिंजरे में बन्द देख रहा हूँ।'

'तो उसमें देखिये न, आप व मैं कहाँ हैं।' प्रीतम शरारत से बोली। फिर बोली,

'भाई साहब, आप जिस पिंजरे में बन्द थे वह कटघरा इससे बड़ा था या छोटा ?'

मैं क्या उत्तर देता। हम सभी हँस पड़े।

हरिण को जब रम्मी कुछ खिला रही थी तो मैंने स्नैप लिया व धीरे से उसके कान में बोला,

'शकुन्तला।'

'पर दुष्यन्त कहाँ है ?' वह मुस्कराई।

'वैसा छलिया यहाँ नहीं।'

'प्यार में छल भी कितना मीठा होता है रज्जू ?'

'होगा री, मुझे पता नहीं।'

प्रीतम आगे बढ़ गई थी व मुड़कर हम दोनों को देख मुस्करा रही थी। हम जल्दी-जल्दी आगे बढ़े।

'जू' से हमारा दल गोमती पर पहुंचा जहाँ 'बांध' बनाकर पानी 'कन्ट्रोल' होता है नगर के लिए। वैसे बरसात में वहाँ उतना अच्छा दृश्य नहीं रहता पानी के आधिक्य से पर फिर भी अभी गोमती में पानी की सतह काफी ऊँची नहीं थी इसलिए वहां पर 'प्रपात' का दृश्य बड़ा ही मनोरम था। लगा जैसे नियाग्रा-प्रपात पर खड़े हों।

मैंने उन दोनों-तीनों को बताया कि किस प्रकार बहुत से प्रेमियों का जोड़ा नियाग्रा पर अपने प्यार की सारी मुरादें पूरी कर फिर उसे अमर करने के लिए उसमें कूद पड़ता है।

प्रीतम बोली, 'आप कहीं ऐसा न कर बैठियेगा भाई साब।'

चन्द्रा बोली, 'पर पहले भाग पर तो तुझे कोई आपत्ति नहीं।' सब मुस्कराए।

प्रीतम आगे बढ़ बोली, 'नहीं मेरी चन्द्रा।' फिर बोली,

'भाई साहब आप भी तो थोड़ा सा अमरत्व-प्रदान कीजिए अपने प्यार को। न गाढ़ा रंग सही, हल्का ही सही। फूल तोड़ना गुनाह है, पर देखना नहीं, सूंघना नहीं, स्पर्श करना नहीं।'

हम हँसे। हमारी झेंप व शर्म वह समझती थी। मैं गांव का गंवार व छोटे से शहर का विद्यार्थी कहां से इतना 'फारवर्ड' होता। उधर रम्मी एक निराले संकोच में डूबी मुस्करा रही थी।

'लगता है मुझी को यह सब करना पड़ेगा।' कहकर प्रीतम ने रम्मी के

कपोल मसल दी। तब मैंने भी साहस कर रम्मी को पकड़ा। इसी समय प्रीतम ने 'स्नैप' ले लिया।

शैतान कहीं की।

वहां से हम 'शाह-नजफ' आए। वहां के लम्बे चौड़े कम्पनी बाग में प्रीतम ने काफी ऊधम मचाया। पेड़ों के झुरमुट तले हमने डेरा डाल दिया। पहले तो छीन झपट कर खाना खाया गया टिफिन कैरियर के डिब्बे में, प्लेटों में, हाथ पर, कागज पर।

यहां तक आते-आते, हम आपस में इतना खुल चुके थे कि एक दूसरे के मुंह में खाना खिलाने लगे। नहीं मुंह खोलने पर जबर्दस्ती भी करते। एक दूसरे को धर दबोचते। मधु के छींटे चारों ओर उड़ने लगते।

खाना समाप्त हुआ तो हमने कॉफी पी जो थर्मस में भर लाए थे। मैंने पूछा, 'अब ?' अब तो थोड़ा आराम करना चाहिए दोपहरी तेज हो रही है।

'वाह भाई साहब, यह ग्रामोफोन।'

और उसने रेकार्ड चढ़ा दिया। फिर चन्द्रा को पकड़ उसके साथ नाचने लगी। वह तो लड़कानुमा थी ही, चन्द्रा लड़की थी। बड़ा अच्छा लगता था दोनों का नाचना।

फिर रम्मी ने घुंघरू बांधकर नृत्य दिखाया। इतने दिनों में कितना सीख गई थी रम्मी। नृत्य भी क्या बला है, नागिन सा चमकने व बल खाने पर तो योगीराज भी 'मोहिनी' पर मुग्ध हो गए थे फिर साधारण मानव की क्या बात है। पर इतने से ही प्रोग्राम थोड़े पूरा हो गया। प्रीतम ने मेरा हाथ पकड़ घसीटा व अंग्रेजी नाच पर मजबूर की। रेकार्ड चढ़ा दी। चारों अंग्रेजी नाच पर आए। उल्टा-सीधा ही सही मैं भी नाचने लगा। प्रीतम के साथ तो ठीक-ठीक चला, कभी-कभी की रगड़-फगड़ से हम मुस्करा कर रह गए पर जब पार्टनर बदले व रम्मी मेरी बांहों में आई, चन्द्रा प्रीतम के साथ नाचने लगी तो मेरे होश गुम होने लगे। नृत्य का अन्त होते-होते मैं इतना पागल हो गया कि उन दोनों के सामने मैंने रम्मी को बांहों में भरके लम्बा चुम्बन दिया।

वे मुस्करा पड़ीं। रम्मी ने लजा के कहा,

'छिः, मेरा मुंह जूठा कर दिया।'

शाह-नजफ देखकर हम छत्र-मंजिल आए फिर 'मंकी ब्रिज' पारकर

युनिवर्सिटी का एक चक्कर लगा बारादारी में रुके। वहीं फोटो व प्यार के अमर चिन्ह अंकित करते हम बढ़ते गए। प्रीतम ने वाजिदअली शाह की प्यार व राग रंग की चटकीली मन को भड़का देने वाली कहानियाँ सुनाईं।

फिर हम 'रेजिडेन्सी' में आए। हमारी आजादी की लड़ाई के 'घाव' अभी भी इस जगह मौजूद मिले।

वहाँ से नदी के किनारे की सड़क पर ठण्डी हवा का झोंका खाते हम मेडिकल कालेज का एक चक्कर मार आसफुद्दौला के इमामबाड़े पहुँचे।

'जिसे न दे मोला, उसे दे आसफुद्दौला।'

'आर्किटेक्चर' के इस भव्य नमूने को देखकर हम मुग्ध हो गए। २२० फीट लम्बा व ६० फीट चौड़ा हाल बिना किसी लोहे के गर्डर के दुनियाँ में शायद कहीं खड़ा नहीं। शानदार फाटक पर फाटक। बस कुछ न पूछिए। एक निराली शान मन में भरने लगी।

यहीं एक मस्जिद देखें जो मंदिर से मस्जिद में परिणत की गई थी, औरंगजेब की कृति। इसकी दीवारों पर अभी भी हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां खुदी थीं।

मुख्य फाटक पर हमने काफी स्नैप लिया। इतना बड़ा व सुन्दर फाटक दुनियाँ में विरला ही हो। यहां पर हमारी व रम्मी की कितनी ही तस्वीरें प्रीतम ने लीं।

फिर 'भूल भुलैया' में हमने खो-खोकर आपस में एक दूसरे को पाने का रसीला प्रयत्न किया।

अब हम वाजिदअली शाह की 'आर्ट गैलरी' में आए। एक ओर विशाल मस्जिद व मजार दूसरी ओर गैलरी, विशाल पार्क के बीच स्थित। यहीं पर बहुत ऊंची 'टावर' भी थी। मैंने बताया किस प्रकार वाजिदअली शाह यहां परेड पर रोज सबेरे छह बजे घोड़े पर सवार होकर छत्रमंजिल से आता था। प्रीतम बोली, 'तीन सौ साठ रानियों में एक भी रोक न पायी थी?'

'तू होती तो रोक लेती।' मैं कहकर मुस्कराया।

लेट आनेवाले पर पांच मोहर जुर्माने होती थी। शाह के लेट होने पर पांच सौ मोहर। पर वाजिदअली शाह ने कभी यह जुर्माना भरने का मौका नहीं दिया।

'पर वह तो ऐय्याश था।' चन्द्रा बोली।

'मगर कर्मठ भी।' मैंने कहा।

'फिर यूँ हार कैसे गया अंग्रेजों से ?' रम्मी बोली।

'उसे परेड से पहले अंग्रेजों ने अलग कर दिया। अपनी आर्मी से अलग होते ही वह डूब गया।'

आर्टगैलरी में उसका भव्य तैलचित्र देखकर हम निहाल हो गए। वहीं हम सबने जी भरके आइसक्रीम खाई।

अब हम थक चले थे इसलिए प्रीतम ने प्रस्ताव रखा कि क्लब चलकर हमलोग स्विम' करें, फिर घर। यह प्रस्ताव सभी को जंचा।

'पर ट्रंक्स ?' मैंने पूछा।

'सब कुछ साथ है।' कहकर मुस्कराई।

तो यह बात है, ये सब पहले से सोचकर चली थीं, मुझे न बताईं। प्रीतम बोली,

'भाई साहब, चलिए आज देखूंगी आपने तैरना ही सीखा है या डूबना भी।'

'ये तो डूबते को भी पकड़कर बाहर निकाल लेते हैं।' रम्मी बोली। चन्द्रा ने जोड़ा,

'राम-राम, जी भरके डूबकी भी नहीं मारने देते।'

मैं मुस्कराता रहा। हम क्लब पहुँचे। वहां कपड़े बदल ट्रंक व नीकर में कूद पड़े पानी में। जब तन-मन दोनों भींगकर थोड़े तृप्त हुए तो 'पूल' के प्लैटफार्म पर उछलते समय एक दूसरे को गौर से देखा। तीन-तीन उछलते, फुदकते कांपते यौवन की सुषमा क्या कहूं। प्रीतम का उभार तो थोड़ा बेसी व भरा हुआ था, चन्द्रा का उससे कम व शालीन था, रम्मी का क्या कहूं ? सपने की शैलजा सदेह खड़ी थी।

उसकी लम्बी चिकनी बाँहें, नोकीले गोल उरोज, लम्बी सुडौल चिकनी रानें, पतली कमर, उठे हुए नितम्ब। सब कुछ इतना निराला था कि मैंने कहा,

'प्रीतम' यहाँ तो डूबना ही भला। ऐसी डुबकी मारें फिर कभी ऊपर न आएँ।

तीनों हँस पड़ीं। फिर पानी में हम तैरने का कम्पटीशन किए। नाना

प्रकार की डुबकियों का प्रदर्शन हुआ। एक दूसरे को छेड़छाड़ भी बहुत किए। दो तीन बार प्रीतम व चन्द्रा भी पानी के भीतर बाँहों में आईं व मछली से छटपटा कर सरक गईं।

और रम्मी के तो क्या कहने। वह भूल गई कि चन्द्रा व प्रीतम भी हैं वहाँ, बार-बार जल में मुझसे लिपट पड़ी व सारा तन कसके, ऐंठ-ऐंठ गई।

इस सुख का भी अन्त हुआ। हम बड़ी मिठास भरे तन-मन में, घर आए। शाम की चाय साथ पी व उन दोनों को विदा किया। तय हुआ वे 'मेफेलयर' में हजरतगंज में मिल जायँगी। सीटें हमारी रिजर्व थीं।

जब कार में रम्मी तथा मैं पिक्चर हाल के लिए शाम को चले तो रम्मी की शोभा देखते बनती थी। लगता था दिन भर में दो-तीन साल बड़ी हो गई। बड़ी सज धज के साथ उसने शृंगार किया।

ओह, इतना ढेर सा सौन्दर्य! और मेरी मुट्ठी में। मैं तो देखकर ही निहाल हो गया। आँखें तृप्त हो गईं। उसे न कहूँ सो ही भला।

रास्ते में बोली, जब हमारी गाड़ी हजरतगंज के चौराहे पर मुड़ रही थी, 'आज तूने मेरी सब साधें पूरी कर दीं रज्जू। अब मैं मर भी जाऊँ तो पछतावा नहीं रहेगा!'

'पर इतने सुख में ऐसी निराशा क्यों री?'

'निराशा नहीं रज्जू! एक जिन्दगी के लिए, मैं सोचती हूँ इतना सुख बहुत है।'

फिर रुककर बोली, 'तेरा नाम स्कूल से कट गया है न?

'हाँ।'

'फिर तू भी यहाँ आकर क्यों नहीं पढ़ता। हम दोनों साथ-साथ मैट्रिक की तैयारी करेंगे।'

'इसमें दो खतरे हैं री?'

'वह क्या?'

'एक तो कोई मेरा नाम नहीं लिखेगा। दूसरे हम दोनों साथ रहकर पढ़ नहीं सकते, दिन भर.........।

'प्यार करेंगे। यही न।' वह मुस्कराई। बोलती गई,

'डर नहीं, यहाँ रहने लगेगा तो ऐसा नहीं होगा, अभी चार दिन के लिए

आया है तो मैं भी जी भर के ऊधम मचा लेती हूँ, सोचती हूँ क्या पता फिर जीवन में यह सुख मिले, न मिले।'

'तू तो इतनी सुन्दर शाम में व्यर्थ में उदासी भरी बातें करने लगी रम्मी।'

'तू नहीं जानता रज्जू, भाग्य व भगवान दोनों बड़े क्रूर होते हैं, कब सब कुछ छिन जायगा कुछ पता नहीं।'

वह पहेली बुझाती रही। तभी हम 'मेफेयर' पहुँच गए। वहाँ प्रीतम व चन्द्रा हमारा इन्तजार कर रही थीं। इस समय दोनों साड़ियों में थीं। दो चोटी किए बड़ी शान-बान में। सेण्ट की मीठी सुगंध वातावरण में भर रही थीं।

इन तीन-तीन 'ब्यूटिज' के बीच मुझे देख किसी ने मुँह पर छींटाकशी की, 'यार, अपनी-अपनी किस्मत है। कोई-कोई बुलंद किस्मत लेकर पैदा ही होते हैं, यहाँ एक के लिए तरसते हैं, उधर……।'

हम तीनों-चारों मुस्करा पड़े व सीढ़ियों पर कदम रखते बाक्स में चले गए।

फिल्म प्रारम्भ हुई देवदास व पार्वती की बचपन की छेड़छाड़, बाग में, स्कूल में, पोखरे पर, हर कहीं, फिर मार-पीट। रम्मी की आंखें नम हो गईं। जहां कहीं हम दोनों के जीवन से मिलती-जुलती घटना आती वह मेरे हाथ दबा देती। हम मुस्करा पड़ते, रो पड़ते।

फिर उदास देवदास चन्द्रा के पास आने जाने लगा। रम्मी ने मेरे कान में कहा धीरे से, 'बेला।'

'धत्' मैंने कहा।

प्रीतम मेरे बगल में एक ओर बैठी थी। वह कान में जाने क्या चन्द्रा से फुसफुसाए जाती। फिल्म के बीच में एक जगह मेरे सीने पर हाथ फेरकर बोली,

'भाई साहब दर्द बहुत हो रहा है क्या?'

मैं क्षीण मुस्कराया। सचमुच हमारी आंखें गीली थीं। उसने अंधेरे में भी आंसुओं की चमक देख ली थी। उस समय 'सहगल' बड़े ही मार्मिक व दर्दीले स्वर में गा रहा था।

'दुख के दिन अब बीतत नाहीं,
मोरे!

सुख के दिन थे, एक सपन था।
दु:ख के दिन अब बीतत नाहीं
मोरे !

वह सिर धुनता, वह बोतल, वह नाश के पथ पर अपने को झोंकना, चन्द्रा की बेकली। पारो दूर—बहुत दूर अपने से भी ऊंची उम्र के लड़कों को संभालती व मां के सम्बोधन को सारे मातृत्व के भाव से स्वीकार करती जब कि प्रणय जार-जार आंसू बहाता होता।

देवदास की दर्दनाक मृत्यु तथा पारो का लोक लाज छोड़ दौड़ पड़ना, दोनों ही इतने हृदय विदारक दृश्य थे कि मैं व रम्मी तो क्या प्रीतम तक की चुहुल विदा हो गई।

आंसुओं से भरी रम्मी अपना सिर मेरे कन्धे पर टेके चुपचाप पड़ी थी। मैं उसे बाँहों के लपेट में थामे था। हाल में उजाला हो गया तो वह सम्भल कर बैठ गई। कोई कुछ बोला नहीं, धीरे से मैंने रम्मी के ही आंचल के छोर से पीठ मोड़ते ही आँसू पोंछ दिया। वह बोली,

'आज पोंछ ले रज्जू, एक दिन ये आंसू जार-जार बहेंगे, कोई पोंछनेवाला न होगा।'

कहकर वह फूट-फूटकर रोने लगी। हम बाक्स में जरा देर और रुक गए। नीचे भीड़ छंट रही थी। तब तक वह स्वस्थ होती रही। मन को सम्भालने का प्रयत्न करती रही। प्रीतम बोली, 'बंगाल गांवों का देश है भइया. वहाँ संगीत ताल-तलैयों में बहता रहता है।' मुझे याद आया दिन को दोपहरी में उसने नृत्य के बाद रवीन्द्र का एक बंगला गीत गाया था जिसका अर्थ बहुत स्पष्ट न होने पर भी हमारी आंखें गीली हो गई थीं, आशय कुछ इस प्रकार का था,

तुम उस पार वंशी क्यों बार-बार टेरते हो ?
मैं इस पार वंशी ध्वनि से विकल हो तड़पने लगती हूं
बीच में जमुना है। मैं कैसे आऊं श्याम ? कैसे ?

मुझे लगा प्रीतम को भी कहीं ठेस जरूर लगी है। इतने ऊधम के पीछे कोई 'दर्द' की गहरी नदिया चुपके-चुपके मन के रसातल में निरंतर बहती है।

प्रीतम का ऊधम उस दर्द का आवरण मात्र तो नहीं ?

और चन्द्रा थी जो मौन आँसुओं को पी रही थी। क्या वह किसी प्रकार की आशा-निराशा के बीच डूब-उतरा रही थी ? गम खाती व आंसू पीती थी ?

हे भगवान ! इन कलियों ने आँखें खोली भी नहीं कि इनके प्यार में घुन लग गया ? अभी इनकी उम्र ही क्या है ?

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु
नहिं विकास, एहि काल।

हम हाल से निकलकर हजरतगंज के कॉफी हाउस में गए। भला इतना गीला मन व शिथिल तन लेकर कैसे घर जाते ?

एक छोटी सी कैबिन में हम चारों बैठ गए। बेयरे को कॉफी व केश्यू-नट्स लाने को कह दिया। मैंने कहा, 'अब बोल प्रीतम तेरे मन में कौन सी व्यथा है ?'

'किसकी-किसकी व्यथा ढोइयेगा भाई साहब ? एक तो रम्मी है जो आपके लिए तड़प कर जान दे देती है। बात-बात में आँसू ढारती है और उसे सम्भाल नहीं पाते।'

रम्मी क्षीण मुस्कराई। बोली,

'छोड़ मेरी बात, तू अपने दिल की सुना ना।'

'मैं क्या सुनाऊँ अपनी कहानी, मुझसे कही न जायगी भाई साहब। रात बेनींद की बेकार हो जायगी सो अलग से।' वह दर्दीली हँसी हँसी। रम्मी बोली, 'फिर मैं कह दूँ ?'

'तू ही कह दे।'

इतने में बेयरा कॉफी व केश्यूनट्स दे गया। प्रीतम कॉफी घोलने लग गई सबके लिए व रम्मी ने आरम्भ किया।

'प्रीतम के बगल वाले बंगले में ट्रैफिक सुपरिण्टेण्डेंट रहते थे। बंगाली थे। उनका लड़का यहाँ बी० एस-सी० में पढ़ता था कमल। जैसा नाम था वैसा गुण। प्रीतम से उसकी बड़ी पटती थी, दोनों पाँच छह बरस से साथ थे।'

जब प्रीतम दस ग्यारह साल की थी। पर साल उनका ट्रांसफर बम्बई हो गया। कमल भी चला गया। प्रीतम ने अनेक पत्र दिए कमल को एकाध का उत्तर उसने दिया फिर उत्तर भी नहीं देता। छुट्टियाँ हुईं प्रीतम ने

बुलाया, नहीं आया। रेलवे के आदमी को आने में भला क्या खर्च था? लगता है उसके घरवालों ने इस मेल-जोल को बढ़ने से रोक दिया?

'पर क्यों?'

'क्योंकि प्रीतम पंजाबी है ना, वह बंगाली।'

मैं मौन रहा। प्यार के खुले समुद्र में लोग कितने बाँध बनाते हैं, कितने घरौंदे रचते हैं, लहरें आती हैं तो सब कुछ चूर-चूर हो जाता है, पर मानव फिर भी नये-नये बाँध बाँधने से बाज नहीं आता।

रम्मी आगे बढ़ी, 'अब प्रीतम उसकी याद में रात दिन तड़प कर मरती है। उसी के कारण इसने भातखण्डे के संगीत-विद्यालय में नाम लिखाया। दोनों ने कितने ही लय, कितने ही सुर, कितने ही ताल साथ-साथ साधे।

'और जब जीवन का संगीत एक सम, एक स्वर पर साधने लगे तो बिछुड़ने की बेला आ गई।' मैंने जोड़ा।

प्रीतम के नयन से टप-टप आँसू टपकने लगे, रम्मी बोलती गई, 'वह कलाकार भी था। उसने प्रीतम की एक सुन्दर छवि तैयार की जो वह दिल में छिपाए रहती है।'

'दिल में तो कमल की छवि है पगली।' चन्द्रा बोली। सब मुस्कराए पर प्रीतम नहीं।

'पर तू तो इतना खुश नजर आती है, इतना ऊधम मचाती है, कौन कहेगा तुझे भी कोई गम है।' मैंने कहा।

'क्या करूँ, भाई साहब! यह तो गम गलत करने का एक तरीका है। दिल का दर्द आँखों में लिए फिरने से लाभ। देखनेवाले क्या कहेंगे? हँसेंगे ही तो? कोई दर्द हर तो नहीं लेगा?'

रम्मी को मजाक सूझी, 'क्यों रज्जू से कुछ कम क्यों नहीं करा लेती?'

'अनाड़ी से लगाव नहीं रखती प्रीतम। तेरा दर्द तो इनके करते घटने के बदले रोज बढ़ता है, फिर मैं किस भरोसे.....।'

सब हँस पड़ीं। मैंने कहा,

'और चन्द्रा तेरी क्या कहानी है?'

उसके बदले प्रीतम बोल पड़ी, इसका 'ब्वाय फ्रेण्ड' एक अपनी ही बिरादरी का सुशील लड़का था जगजीत। छह महीने हुआ वह जर्मनी चला गया

इंजीनियरिंग पढ़ने । तबसे उसने खोज ही खबर नहीं ली।'

चन्द्रा के नयन भी मोती बरस पड़े। हम ज्यों त्यों कर धीरे-धीरे कॉफी समाप्त कर प्रीतम के घर आए क्योंकि वहीं पर हम सब के खाने का प्रबन्ध था। कॉफी हाउस से चलने के पहले प्रीतम ने मुझसे कहा,

'रज्जू भइया ! तुम उम्र में मुझसे छोटे हो, चन्द्रा से भी, पर तुम योग्य व समर्थ हो। एक वचन दोगे ?'

'क्या री ?' मैं चकित होकर बोला।

'कि आवश्यकता पड़ने पर तुम्हारी किसी प्रकार की सहायता के लिए हम दोनों झोली फैलाएँ तो तुम मुकर तो न जाओगे।'

'वैसे तो मैं किस योग्य हूँ प्रीतम, पर तुझे दिया वचन। निभाने की शक्ति भर चेष्टा करूँगा। पर कोई बेबसी आ जाय तो गलत न समझना।'

विह्वल सी होकर प्रीतम बोली,

'रम्मी की प्रीत-पताका लिए जब तुम गंगा के भयानक जल पर लांच में चलते थे, तिरंगा फहरा कर पुलिस की जीप में चलते थे, स्वयंसेवकों की सलामी लेते थे, पेपर में तुम्हारी फोटो आती थी, कारनामे आते थे तो रम्मी तो रोती ही थी, पर गर्व से हम सवों का सिर उठ जाता था, सोचती थी कब इस नवयुवक से भेंट होगी। रम्मी के भाग्य पर शक होता था मीठा मीठा, और आज तुम हमारे साथ हो। वही नवयुवक, सैकड़ों लड़कियों का अनजाने हृदय-सम्राट। तुम हमारे साथ हँसते-खेलते, खाते-पीते, नाचते-गाते हो, यह हमारा कम सौभाग्य नहीं।'

'अच्छा अच्छा, चल बड़ी लेक्चर देने लगी, मेरे पेट में चूहे दण्ड पेल रहे हैं, अपने छोले-कुल्चे खिला तो।' मैंने कहा।

खिलखिलाकर सब हँस पड़े। हम कॉफी हाउस से प्रीतम के घर आए। उसने अपने माँ-बाप व छोटे भाई से हमारा परिचय कराया। बड़े प्यार से उन लोगों ने मुझे लिया। कारण, मैं अपने काम से सचमुच एक प्रकार का 'हीरो' बन गया था।

रम्मी इन अवसरों पर फूली नहीं समाती।

रात के ग्यारह बजे जब हम प्रीतम के घर से चले तो हल्की-हल्की फुहारें पड़ रही थीं। चन्द्रा को पहले उसके घर छोड़ आए फिर हम दो रह गए।

वह समाँ इतना भींगा-भींगा था कि हमारे मन भरे बादल से रस-कण बरस पड़ने को आतुर हो रहे थे। किसी के घर से रेडियो पर आ रहा था,

रो दिए जब याद उनकी आ गई।
वो सदा रूठे रहे मैं उनको समझाता रहा,
वो सितम करते रहे मैं दिल को बहलाता रहा,
चल दिए वो जब से दिल को तोड़कर,
इस भरी दुनियाँ में तनहा छोड़कर,
तब से दिल पे गम की बदली छा गई।
रो दिए जब याद उनकी आ गई॥

रम्मी के नयन अनायास गीले हो गए। वह बोली,

'मुझे लगता है रज्जू, अब यह सुख की बेला फिर न आयगी। अगर हम दोनों इस बार बिछुड़े तो फिर न मिलेंगे।'

'यूँ अकारण धीरज खोती है रम्मी? मैं तेरे ही पास तो हूँ।'

'पर कितना दूर हो जाता है तू बात की बात में। गुस्से में आता है तो किसी की नहीं सुनता। मेरी भी नहीं। अपना नाश करता है व मेरा भी।'

उसके नयन निरन्तर झर रहे थे व मेरे भी।

'गंगा के तीर वाली बात फिर न होगी रम्मी। मैं उसके लिए कितना तड़पा हूँ, अपने को कितना जलाया है, तू क्या जाने?'

'मैं सब जानती हूँ रज्जू, मैं सब जानती हूँ। मोहन की वंशी का मर्म राधा न जानेगी तो कौन जानेगा?'

'पर तू इतना निराश क्यों होती है?'

'जाने क्यों? मेरी माँ, कहती है रम्मी इतना न हँसाकर कि रोते-रोते आँसुओं के भी लाले पड़ जायँ। इसी से मैं जब भी हँसती हूँ बहुत तो एक अज्ञात आशंका मेरे मन में भर जाती है।'

'बेकार है सब रम्मी। तेरा रज्जू तेरे आँचल में बँधा है। कहाँ जायगा वह?'

'जाने तेरी मेरी प्रीत कैसी है जो ठीक-ठीक जगजीत व चन्द्रा सी नहीं, प्रीतम व कमल सी नहीं लगती।'

'जाने क्या है? पर मैं तो तेरे जरा सा रूठने पर भी पागल हो जाता

हूँ व जी में आता है सारी दुनियाँ को फूँक दूँ। बस आग लगा दूँ, वह धांय धांय जले।'

'पर जलता तो कुछ भी नहीं। केवल तेरी रम्मी जलती है तिल-तिल करके।'

हम मुस्कराए। बँगले पर पहुँच गए थे। शोफर गाड़ी लेकर फूफाजी को लेने गया जो कहीं बुआ के साथ पार्टी में गए थे। बँगले पर कोई न था। फाटक पर चौकीदार ऊँघ रहा था।

दिन भर की प्यार की वह धमाचौकड़ी फिर 'देवदास' का बोया दर्द रह-रहकर कसकने वाला कांटा, ऊपर से यह गीली-गीली रात, रिमझिम बरसता पानी, सावन का महीना, आधी रात अकेला बंगला, भला इसमें कौन अपने दिल को काबू में कर पाता।

वह शिथिल सी मेरे कंधे पर सिर टेक बोली,

'अब तुझसे अलग होकर मैं जियूँगी नहीं रज्जू।'

'पर मैं अलग ही कहाँ हो रहा हूँ।'

'तूने दो बार अलग होकर मुझे कितना सताया, इसका तुझे ख्याल है कुछ।'

'मैं सब जानता हूँ रम्मी।'

'फिर क्यों ऐसा करता है?'

'तू पास में नहीं रहती तो मैं होश में नहीं रहता। बचपन से ही तूने ऐसी आदत डाल दी। और अब अलग रहने लगी। मुझे अलग रहने पर मजबूर की। फिर क्या होता।'

'अगर तूने इस बार कुछ किया तो मैं जान दे दूँगी।'

'और तू फिर रूठी तो मैं सूली पर चला जाऊँगा।'

हमारे नयन फिर गीले हो गए व हम आलिंगनबद्ध हो गए। उसने रेडियो का स्विच दबा दिया तो कहीं के 'कवि-सम्मेलन' से गीत आ रहा था, बड़ा ही दर्दीला,

आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे,
आज से दो प्रेम-योगी अब वियोगी ही रहेंगे।
आयगा मधुमास फिर भी, आयगी सावन घटा घिर।
आँख भर कर देख लो तुम, मैं न आऊँगा कभी फिर।

प्राण-तन से बिछुड़ कर कैसे रहेंगे,
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।

गीत लम्बा था। रह रहकर दिल को आरे की तरह चीरता चला जाता। रम्मी यूं जोर से मेरे वक्ष में सिर गड़ाती जाती थी, जैसे मैं अभी अभी इस आधी रात को बिछुड़ने वाला होऊँ।

भावुकता भी व्यर्थ की आशंकाओं को जन्म देती है।

अंत में था,

आह अंतिम रात वह, बैठी रही तुम पास मेरे,
शीश कन्धे पर धरे, घन कुन्तलों से गात घेरे;
क्षीण स्वर में कहा था, 'अब कब मिलेंगे ?'
आज के बिछुड़े न जाने कब मिलेंगे।

इस पर तो वह सिसक-सिसक कर रो पड़ी। 'रज्जू, रज्जू !' करने लगी। जब दोनों देर तक रो-धोकर शिथिल हो गए तो वह स्नेह शिथिल तन-मन लिए अपने कमरे में चली गई। मैं भी अपने कमरे में गया।

जाते-जाते कहती गई,

'यह रात कभी न भूलेगी रज्जू !'

'नहीं रे।' मैंने कहा।

और 'गुडनाईट' करके विदा हुए।

## २८

साँझ भई। आकाश में उड़ते पंछियों के पंख सोने के रंग में सराबोर हो उठे। बगुलों के श्वेत पंख स्वर्ण रंग में नहा उठे। जैसे जाते-जाते दिनकर ने प्रीति-पिचकारी किसी की श्वेत रेशम की साड़ी पर मार दी हो।

इधर उधर श्वेत बादलों को फुदकते इस प्रीति पिचकारी ने सराबोर कर दिया। चाय की झाड़ियाँ, पेड़ों की पत्तियाँ, हिमंतिनी की चोटियाँ सब कुछ इस झाग में रंग गया। सारी धरती, सारा आकाश, सब कुछ इस चलते चलते प्यार की वर्षा से जुड़ा गया।

पर कितनी देर ?

अभी अभी सूरज रात के गहन अंधकार में परकटे गिद्ध सा डूब जायगा। और सब कुछ निविड़ अंधकार के कराल-गाल में खो जायगा। सारी प्रीति, सारी चुहुल, छण भर में विदा हो जायगी। महाकाल इस घोर तम में चबर-चबर रात भर इन सबको जबड़ों में चबायगा, फिर सवेरे कौन जाने, कौन बचा होगा, कौन अनन्त निद्रा में सोया होगा।

वह पिकनिक की रात भी गई। भोर हुआ। मैं देर तक सोया रहा। आठ बजे आँख खुली तो रम्मी जा चुकी थी अपने स्कूल। मैं नहा धोकर नौ बजते-बजते सवेरे की छोटी हाजिरी के लिए तैयार हो गया। बुआ व फूफाजी के साथ ब्रेकफास्ट लिया, फिर फूफाजी तो दफ्तर गए। बुआ और काम में लग गईं। मेरे पास कोई काम न था। रम्मी बिना मैं क्या कर सकता था ?

कुछ खाली-खाली सा लगा। कुछ सूना-सूना सा। पिछले दिन व पिछली रात की बातें स्वप्न सी लगीं। ओह, इतना ढेर सा सुख। और एक दिन में ?

इन्सान बराबर यूँ ही सुख में सराबोर क्यों नहीं रहता ? अन्न कम मिले, कम ही सही, वस्त्र कम होगा थोड़ा ही सही, घर-बार छोटे होंगे छोटे ही सही,

जब तक मन भर के प्यार मिलता रहे इन्सान बराबर छका रहेगा सुख में। सारा जग उसकी जागीरी में होगा।

जब इतना सुख, इतना प्यार देना-लेना इन्सान के अपने हाथ में है फिर क्यों वह स्वयं अपने हाथों अपने लिए नरक का सृजन करता है।

बँटवारा, छीना-झपटी, झगड़ा-प्रपंच, कलह !

कल हमने इतना सुख समेटा, लिया दिया, क्या किसी का घट गया।

दुलरिया ठीक कहती है, इन्सान के तन में चन्दन की वास है, घिसने से सुगंध आती है। शायद मन में भी यही बात हो, मन का चन्दन सुन्दर कर्म की सिल पर घिसो, कितनी सुगंध फैलती है ? इसी सुगंध से तो मतवारी प्रीतम व चन्द्रा पाँच सौ मील दूर बसनेवाले 'रज्जू' को लेकर आत्म-विभोर हो उठीं।

कर्म की सिल पर चन्दन घिसी बाढ़ में, गंगा में, तिरंगे में और उल्टी धार की तरह वह उड़ते-उड़ते आ बसी लखनऊ में, समाचार-पत्रों के पन्नों पर।

रम्मी ने पत्रों से फोटो व समाचार काट-काट कर एक पूरा अलबम ही तैयार कर लिया, मेरी कृतियों का। क्यों न करे, उसी की प्रीति का सुवास तो वह है। कितना अनोखा। जरा देखूँ तो।

जी भर के इस अलबम को अकेले देखा नहीं।

देखूँ वह पुण्यमाला जिसमें मेरी सुकृतियों के फूल गुंथे हैं, सो भी रम्मी के सुकोमल हाथों द्वारा।

ओह, कहाँ रख दिया उसने। अभी कल ही सवेरे तो साथ-साथ देख रहे थे उसके अध्ययन-कक्ष में।

मैंने उसके 'स्टडी टेबिल' पर छान मारा वह अलबम न मिला, तब पुस्तकों की रैक में ढूंढ़ने लगा, वहाँ भी न मिला। फिर उसके 'बेडरूम' में गया वहाँ तो उसका पता भी न था। पलंग के पास तिपाई पर वह मेरी छवि पड़ी थी जिसे बेला ने उपहारस्वरूप रम्मी को दी थी।

मेरा मन और भी मिठास व सुगन्ध से भर गया। पर वह अलबम कहाँ गया।

इतने में रम्मी का सूटकेश दिखाई दिया। वहाँ तो नहीं रख छोड़ी है ?

क्या पता, यह उसकी अनमोल निधि ठहरी।

मैंने सूटकेश को हाथ लगा देखा। वह खुला मिला, यूँ ही उसका आटोमैटिक लीवर लगा था, खुल गया। सूटकेश बड़ा था लेदर का व बेशकीमती कपड़ों से भरा था। मैं जल्दी-जल्दी पलटने लगा, सिल्क की रंग-बिरंगी साड़ियाँ सात-आठ, ऊन की दो, ऊनी कोट खूबसूरत व गाउन, दो दो ब्लाउज के 'ब्रोकेड', एक से एक खूबसूरत दर्जनों रेशमी रूमालें।

ओह, यह सब हमारी रेशमा के कितना अनुरूप है।

सच ! सौंदर्य को सजावट चाहिए, तभी फबता है।

ऊनी कोट बड़ा ही मोहक लगा। मैंने जरा उसकी तह पलट कर देखा तो उसमें सेंट से सुवासित एक कागज मिला। निकाल कर पढ़ने लगा। लिखा था,

'दिल की रानी रेशमा को,
रोम-रोम के प्यार सहित-गनेश।'

लगा जैसे दिमाग की हरकत बन्द हो गई, दिल की धड़कनें तक बन्द हो गईं।

मैंने झट दरवाजा बन्द कर दिया व जल्दी-जल्दी सभी साड़ियों व अन्य कपड़ों को पलटने लगा। सभी में से सुवासित कागज निकले, हरेक पर सुन्दर अक्षरों में लिखा था, अलग-अलग।

'हृदयेश्वरी रेशमा को,
गनेश के तन-मन के प्यार सहित।'

'आंखों की पुतली रेशमा को,
गनेश के अंग प्रत्यंग के प्यार सहित।'

इसी प्रकार हरेक कागज के टुकड़े पर एक से एक चुभने वाले, प्यार में सराबोर वाक्य थे।

एकाएक विजली कौंध गई मेरे मस्तिष्क में। वज्र गिर पड़ा। मैं एकदम से सुन्न व आहत हो गिर पड़ा। अपना सिर पकड़े थोड़ी देर वहीं फर्श की कालीन पर पड़ा था। लगा जैसे लैण्ड स्लाइड में कोई पूरी की पूरी चट्टान सिर पर आ गिरी हो, जैसे सिर कहीं टक्कर खाकर सुन्न हो गया हो, वहाँ कोई हरकत न हो। सारी मशीन दिल व दिमाग की, एक साथ ही जैम हो गई जैसे कभी-कभी घड़ी चलती-चलती सारी हरकतें बन्द कर देती है।

रेशमा ! नागिन ! आस्तीन की साँप !

अब क्या करूँ ? क्या ? क्या ?

यह सूटकेश तो बन्द कर दूँ। फैली हुई साड़ियाँ सर्प सी फुफकार उठीं। उनके फन से भयभीत हो गया। एक साथ ही इतने नाग ? इतने फन ? सभी 'हिस-हिस' करते छत्र काढ़े, लपलपाते।

भ्रम तो नहीं है। मैंने हाथ की उँगली दाँत से काटकर देखा, मैं होश में हूँ या नहीं।

फिर साहस करके दोनों हाथों में उठाकर सारा का सारा सामान एक ही दो बार में सूटकेश में ठूँस दिया व बाहर से बन्द कर दिया।

अब ?

चुपचाप अपने कमरे में आया। दो-चार सामान जो भी मिलें उसमें फेंक कर सूटकेश बन्द कर दिया व इधर उधर देखकर हाथ में उठा फाटक से बाहर हो गया। सामने जाते एक खाली तांगे को पकड़ स्टेशन गया। वहाँ कानपुर की ट्रेन छूटने को तैयार थी। मैं उसमें बैठ गया। किसे सुध थी टिकट की।

गाड़ी चल पड़ी, मैं खोया-खोया सा एकटक बाहर ताकने लगा। मेरा मस्तिष्क भयानक जल रहा था। मैं कुछ भी सोच नहीं रहा था। कुछ भी देख नहीं रहा था। वहाँ था भी क्या ? सोचने को, देखने को।

कानपुर में गाड़ी बदलकर मुगलसराय की ट्रेन में बैठा। वहाँ भी यही हाल रहा। न भूख, न प्यास, न नींद, न आराम। न तन की सुधि, न मन की।

जमना का पुल पार करते समय एक बार जी में आया कि कूद पड़ूं। पर किया नहीं ऐसा जाने क्यों ?

कुछ भी तो करने न करने लायक लगता नहीं था।

जाने कैसे प्रेत की छाया की तरह रायजी के घर के सामने जा खड़ा हुआ। वे बाहर गए थे। दरवाजे को वेला ने खोला व देखते ही चीख पड़ी जैसे सचमुच प्रेत देख ली हो, 'भइया ?'

चाची दौड़ी भीतर से आईं। चिल्लाईं,

'रज्जू बेटा।'

बेला ने हाथ से सूटकेश से अलग किया। चाची ने मेरा हाथ पकड़कर बिठाया व मेरा सिर टटोलीं व चीख पड़ीं, 'अरे यह तो जलता है तवे सा।'

झट से मुझे भीतर ले गईं, एक पलंग पर लिटा कर तन ढक दीं, फिर गरम दूध लाईं। पिला गईं। मैं टक टक बस सबका मुँह देखता, बोलता कुछ भी नहीं।

चाची दूध पिला चली गईं। बेला पास में एक मोढ़े पर बैठ गई और मुझे ताककर चुप लगा गई। उसके नयनों से पहले तो एकाध आँसू टपके फिर तार बँध गया। अब वे झर-झर झरने लगे। बोल पड़ी,

'भइया तूने यह क्या कर डाला?'

मैं फिर यूँ ही टक-टक उसका मुँह देखता रहा, बोला कुछ भी नहीं। रोका भी नहीं उसे रोने से। क्या रोकता? क्यों?

और स्वयं? कहाँ थे आँसू उस जलती भट्ठी में।

तेज बुखार, डीलिरियम, मतिभ्रम, यही सब तीन हफ्ते तक सताते रहे। रायजी के सारे परिवार ने बड़ी सेवा की। बेला ने तो रात-दिन जाग-जागकर अपने को अस्वस्थ कर लिया। रायजी ने दुलरिया को भी मेरी बीमारी का समाचार भेजा। वह दौड़ती आई। पर मुझे देखते ही हताश हो गई। बोली,

'इस बार तूने क्या कर लिया रज्जू?'

मैं फिर टुक-टुक ताकता रहा। बोला कुछ भी नहीं।

दुलरिया ने हठ किया मुझे अपने घर ले जाने के लिए। दो-तीन बार बोली, 'मैंने कहा घर में ही तो हूँ दुलरिया।' पर उसने जब और हठ किया तो मैं मौन तोड़ एकाएक चिल्ला पड़ा, 'नहीं, नहीं, नहीं! चली जा हमारे सामने से।'

दुलरिया के नयन झर-झर झरने लगे। मैं चुपचाप पड़ा रहा। बेला ने उसे ढांढ़स बँधाया व उसके आँसू पोंछती हुई बोली,

'जीजी, रज्जू भइया गए थे रम्मी जीजी के पास, जाने वहाँ क्या हुआ, यह हालत कर लाए।' वह भी आँसू ढार रही थी। दुलरिया बोली,

'क्या बताऊँ री, ये दोनों बचपन से प्यार करते, लड़ते-झगड़ते आ रहे हैं। पहले लड़ते थे तो घंटे-आध घंटे में मेल कर लेते थे। अब वह इतनी दूर हो गई कि कुछ भी होता है तो वह महीनों चलता है।'

'वह भी तो उस बार यहाँ आई थीं तो स्वस्थ नहीं लगती थीं।'

'तो क्या तू सोचती है वह आज रज्जू से कम बीमार होगी? यह अपनी जान लेगा व उसको भी। जाने कहाँ से औंधी खोपड़ी लेकर जन्म लिया। यह तीसरी बार नाश के पथ पर चला है।'

वे दोनों मेरे बारे में मेरे सामने यूँ बातें करती रहीं जैसे मेरे कान न हों, या मैं मर गया होऊँ, या जैसे चर्चा किसी और की हो रही हो।

उनकी इस खुली चर्चा से मैं समझ गया कि वे दोनों मुझे 'होपलेस केस' मानती हैं।

बेला बोली, 'तो मैं उनको तार कर दूँ या बुलवाऊँ बाबूजी से?'

दुलरिया बोली, 'अभी नहीं, नहीं तो यह कहीं और चल देगा। भयानक जिद्दी है।'

अच्छा होते-होते मैं सिर के आधे बाल खो चुका, कुछ तो आँखें कमजोर हो गईं व लगा जैसे हृदय व मस्तिष्क की तेजी खो गई थोड़ी-थोड़ी। धार कहीं न रहा जीवन में। मात्र एक 'शून्य' बच गया।

होश में आते-आते, सोचने-समझने की ताकत हासिल करते-करते एक अरसा बीत गया। मैंने न तो गाँव खबर देने दी, न रम्मी को। कसम दिला दी सबको।

होश हवाश में आते ही मन-मस्तिष्क ने माँग की 'सूली।'

बाबा ब की सूरत नाच उठी। याद आ गया बाढ़ बीतने पर भी जीने-खाने को कुछ भी नहीं। सरकार उन्हें तकावी देती है जिनमें लौटाने की कूवत है। भूखों व मजूरों को नहीं देती, बेखेतवालों को, बेघरबारवालों को नहीं देती।

इस देश के लोग कैसे जीते हैं। आधे तो भरपेट खाना पाते ही नहीं। यहाँ के लोग भूखों सीधे नहीं मरते बल्कि धीरे-धीरे, घुट-घुट कर बरसों में मरते हैं, जिन्दगी पूरी होने से पहले ही धरती का सारा दर्द आँखों में भरके मरते हैं।

इनका दुःख कैसे दूर होगा? कैसे?

कुछ भी करने के लिए पहले तो 'आजादी' चाहिए, आजादी, हिलने की, डोलने की, काम करने की। भला विदेशी सरकार के अन्दर यह कैसे सम्भव है?

गांधीजी का आन्दोलन तो 'टाँय-टाँय फिस' हो गया। वे चरखा करवा खादी व हरिजन में लग गए। पर आजादी का क्या होगा? कितने दिन सब्र से इन्तजार किया जायगा?

'शार्ट-कट' चाहिए।

सोचना जो एक बार शुरू किया तो उसी दिशा में सोचता गया, सोचता गया। सत्याग्रह में इतने ढेर से वालंटीयर लगते हैं, भला कहाँ मिलेंगे गाय-गोरू की तरह पिटने के लिए। आगरे में कोई व्यापारी विदेशी कपड़ों की बिक्री बन्द नहीं करता था। हजारों स्वयंसेवक डण्डों से रूई की तरह धुनकर जेल में बन्द किए गए और जंगल में फेंक दिए गए मरने के लिए। क्या फल निकला? किसी ने एक बड़े सेठ की नाक पोंछ दी, तो सारे नगर से विदेशी कपड़े की बिक्री बन्द हो गई।

एक आदमी की नन्हीं सी हिंसा ने हजारों की अहिंसा को मात दे दिया। थोड़े से अंग्रेज हथियार व हिंसा के बल पर भारत के छत्तीस करोड़ जनता पर शासन करते हैं।

लोहे से ही लोहा कटता है।

यूँ ही बेसिर-पैर की बातें दिन-रात सोचता, दिन-रात सोचता। सोचते-सोचते माथा फटने लगता, तो बन्द कर देता। इस गिरे तन व उखड़े मन को संभालने वाला कोई न था, एकमात्र बेला थी जो जहाँ तक बन पड़ता कर देती थी। मगर मेरा बिगड़ा रुख देखकर वह भी बेचारी रो पड़ती।

कहाँ गई रज्जू की सहज स्निग्ध हँसी।

कहाँ गया वह सरल रज्जू भइया।

कोई भाव नहीं, कोई भावना नहीं, कोई हँसी नहीं, कोई रस नहीं। हृदय बिना इन्सान क्या है? प्रेत ही तो? एक मशीनगन, जो मुँह खोले तो आग उगले व विध्वंस का ताण्डव रचा दे।

मैं वही हो रहा था।

सृजन की आड़ में मैं नाश खोज रहा था।

धीरे-धीरे मैं नगर के क्रान्तिकारी दल में भरती हो गया जिसमें अभी काफी अधकचरे आदमी थे। उनको शक्ति का नशा बेसी व उसका उपयोग व अनुशासन कम मालूम था। डींग हाँकने की आदत भी बेसी थी। ताकत

आजमाने की धुन रात-दिन सवार रहती। पर वह ताकत ही क्या थी—फतिंगे का पैट्रोमक्स की लाइट पर जल मरना था।

मैं धीरे-धीरे इस दल का उपनायक हो गया। रूस की क्रांति, इटली की क्रांति, फ्रांस की क्रांति, आयरलैण्ड की क्रान्ति की कहानियाँ, किताबें पढ़ी जातीं। क्रान्ति के तरीकों का मनन व अध्ययन होता। क्रान्तिकारियों के जीवन की नकल की जाती, जैसे नवयुवक, नवयुवतियाँ फिल्म स्टार की नकल करते हैं।

एक साहब को 'आजाद' की नकल बहुत पसन्द थी। वे चन्द्रशेखर आजाद सी मूँछे रखते, कलाई में घड़ी व रात-दिन जोर-जोर से गाते,

सर फरोशी की तमन्ना,
अब हमारे दिल में है;
देखना है और कितना,
बाजुए कातिल में है।

बल्लम, छुरी, पिस्तौल व बन्दूक चलाने का अभ्यास गंगा के दीयारे में, जंगल में होने लगा जहाँ नदी की दो धाराओं के बीच पुलिस तो क्या शैतान को भी जाते एक बार डर लगे।

हमारा सम्बन्ध धीरे-धीरे कलकत्ते से दिल्ली तथा बम्बई तक के क्रांतिकारियों के साथ हो गया व बनारस, इलाहाबाद, कानपुर, आगरा व लखनऊ में हमारा जाल बिछ गया।

रियासतें हमारे अस्त्र-शस्त्र संग्रह की मुख्य मण्डी बनीं। काम बड़े जोखिम का था। गैरकानूनी बन्दूकें, पिस्तौल खरीदना, उनको ले आना, रखना, सभी काम बड़े जोखिम के थे। कदम-कदम पर पकड़े जाने का खतरा रहता।

हमने हथगोले ( बम्ब ) फेंकने का भी अभ्यास किया व कुछ बनाए भी, जो शायद पटाखों से थोड़े ही ऊपर थे। हमारे आजादजी ने एक-दिन कुछ मसाले कूटने छाँटने में असावधानी की, फलतः हल्का सा विस्फोट हो गया व उनके सिर में चोट आई। अब तो क्या था आप अपने को 'शहीदों' की टोली में गिनने लगे। 'भगतसिंह' से कम तो अपने को मानते ही न थे।

हमारी समस्या आकर अटक गई हथियारों पर। केन्द्रीय संस्था का हुक्म था कि जहाँ तक हो सके हथियार इकट्ठे करो व इन्तजार करो। जब मुक-

म्मल तैयारी हो जायगी तो एक ही दिन सारे भारत में हम लोग 'कुप' कर देंगे। शासन उलट कर अपना शासन कायम कर देंगे।

ऐसी दशा में भारत का कमाण्डर-इन-चोफ होने का सपना हमारे आजादजी देखा करते।

हथियार संग्रह करो।

हथियार के लिए रुपये चाहिए।

रुपये कहाँ से आएँ?

डाका? डाका! डाका!!

मैंने रायजी के यहाँ रहना तो बन्द ही कर दिया इन दिनों। आना-जाना भी कम कर दिया। चाची बराबर शिकायत करतीं, बेला जिद करती,

'भइया रहते नहीं तो न सही, खाना तो खा जाया करो, अपने भूखों मरते हो, मुझे भी मारते हो।'

'तू खाना खा लिया कर बेला, मेरा क्या भरोसा? आऊँ आऊँ न आऊँ।'

'हाँ, और क्या? आऊँ आऊँ न आऊँ। यहाँ तो इन्तजार करते जान गई, जनाव की अदा ठहरी।'

हम मुस्करा पड़ते। भला ऐसी शिकायतों का क्या उत्तर था मेरे पास।

शायद रायजी मेरी गतिविधि सूँघते थे, भाँपते थे। उन्होंने कभी रुकने या आने-जाने पर जोर नहीं दिया। एकाध बार इशारे से मना भी किए।

संसार ही तो ठहरा। हर कोई सिर पे कफन बाँधकर थोड़े चलता है? वेकार भट्ठी में सिर डालने से लाभ?

और कहीं होम करते हाथ जल जाते तो?

हमारे सामने दिन पर दिन रुपयों की समस्या टेढ़ी होने लगी। केन्द्र देश के काम के लिए 'डाका' डालने को मना नहीं करता था। हाँ, शक्ति बटोरने के बदले खो बैठने से बड़ा क्रुद्ध होता था।

रुपया कहाँ से आए?

सरकारी खजाने? पर काकोरी काण्ड सफल न रहा। फिर?

सेठ! रुपया? सेठ, रुपया?

डाका! डाका!! डाका!!!

## ३०

बहुत वाद-विवाद के बाद कमेटी ने यह फैसला किया कि सेठ रामनारायण के घर डाका डाला जाय। कम से कम पच्चीस हजार रुपये प्राप्त किये जायँ। इस अभियान का लीडर मैं बनाया गया गो, कि शायद मैं सबसे छोटा व छोटी उम्र का था। इसके कारण थे—मैं सेठ रामनारायण की कोठी बहुत कुछ जानता था। उनका लड़का मेरे साथ पढ़ता था तब मैं कितनी ही बार उनके घर गया था। फिर सेवा-समिति के काम में उन्होंने हमारी बड़ी सहायता की थी, मैं कितनी ही बार उनके घर गया था इस सिलसिले में।

उनकी लड़की अन्नपूर्णा जाने पर 'रज्जू भइया' करके सारी कोठी सिर पर उठा लेती। दोनों भाई बहन जुड़वा थे इसलिए झगड़ते खूब थे, मैं बैठ कर फैसला करता था। अन्नपूर्णा का नाम बहुत बड़ा था इसलिए हम 'पुन्नी' कहते थे।

मुझे खूब पता था सेठ की तिजोरी कहाँ है, चाभियों का गुच्छा कहाँ रखते हैं। कोठी में घुसने व निकलने के कौन-कौन दरवाजे हैं।

फैसला हो गया। दिन-तारीख तय हो गयी। अब बहश के लिए कोई गुंजा-यश न रही। सात आदमी इसमें भाग लेने वाले थे। बेसब्री से सब लोग उस रात का इन्तजार करने लगे जो पंचमी की रात थी, दस-ग्यारह बजे के बाद पूरा अंधेरा हो जाने वाला था।

मगर मेरे भीतर दूसरा ही द्वन्द्व चल रहा था। वह ये कि क्या मैं सेठ रामनारायण को मात्र इसीलिए लूटूं कि मैं उन्हें व उनकी कोठी को अच्छी तरह से जानता हूँ? उनमें मेरे प्रति वात्सल्य भाव कितना है। उनका लड़का राजन मेरा सहपाठी है। उनकी लड़की 'पुन्नी' मुझे भइया-भइया कहकर पुकारती है। यह भी कोई बात हुई? यह तो अपने ही घर डाका देने के समान है।

'रुपये तो सेठ से मैं यूं भी मांगूं तो चार-पाँच हजार तक दे देंगे। मैंने जरा सा जुबान हिलाई थी दुलरिया के कहने पर तो कपड़े के व्यापार में उन्होंने गनेश की 'क्रेडिट लिमिट' पाँच हजार से पच्चीस हजार कर दी। तब से गनेश व दुलरिया व्यापार में मालामाल हो गए। तभी तो गनेश शायद इतनी कीमती साड़ियाँ रेशमा को ···· ···· मेरी सेवा का उपहार।'

ऊपर से कहीं सेठ ने पहचान लिया तो मैं आँखें न उठा सकूँगा, लूटना तो बहुत दूर का काम है। वैसे हम 'मास्क' का उपयोग करने वाले थे। यदि कहीं राजन या पुन्नी ने पहचाना तब तो सब कुछ मिट्टी में मिल जायेगा।

मुझे सारी विचारधारा में कहीं भूल मालूम होती, पर क्या भूल है, कहां है, पता न चलता। कभी-कभी यह भी संदेह होता कि यह 'देश सेवा' है या नहीं ?

'संशयात्मा विनश्यति'।

मेरा मन घबरा जाता। मारा वही जाता है जिसका मन सत्ताइस कोठों में दौड़ता है, भागता है। खैर, मुझे मारे जाने का भय तो नहीं था, भय था असफल होने का।

गांधीजी के संकेत पर सत्याग्रह में जेल जाते समय तो बड़ा उत्साह था जबकि वह काम बड़ा ही आसान था, बल्कि कुछ भी नहीं था। उसकी देश-भक्ति राष्ट्र-सेवा में मुझे कोई सन्देह न था। पर आज जब कि बहुत ही दुस्तर काम करने जा रहा था तो मन में संदेह खड़े होने लगे।

फिर सोचा यह 'संदेह' भय का दूसरा रूप तो नहीं ? भय से मुझे घृणा थी, पर अविचारी जोश से भी कम घृणा न थी।

मैं गुनता रहा, गुनता रहा। इस अभियान के सारे प्लान हर रात को भाग लेने वालों को समझाए जाते, कहां से घुसना, कैसे पहरे पर के आदमी को काबू करना। कौन कहाँ रहेगा। सेठ से ताली लेकर तिजोरी खुलवाना तथा रुपये लेकर गायब होना यह मेरा काम था। मेरी मदद में दो आदमी थे। शेष चार के जिम्मे भयानक चौकसी थी। जब तक काम सिद्ध न हो जाय कोई फायर न करे। सम्भवतः छूरे या बल्लम से ही काम लिया जाय। फायर की आवाज से भीड़ इकट्ठी होने का भय था।

मेरे मन का संदेह मुझे चबाने लगा। यह तो धोखा देने सा लगा। यदि किसी और सेठ के घर डाका डालने की बात होती जिसे मैं जानता न होता तो और बात थी। पर सेठ रामनारायण की बात और थी।

यूं ही उदास मन एक दिन रायजी के घर तख्त पर बैठा था कि बेला आई व बोली,

'भइया मुझे कुछ कविताओं के अर्थ समझा दो। ये मुझे अच्छी बहुत लगती हैं पर मैं कुछ भी समझ नहीं पाती।'

'क्या है रे?'

'यह प्रसादजी के 'आंसू' का थोड़ा सा अंश है।'

'अगर तू समझ ही नहीं पाती तो अच्छी कैसे लगती हैं।'

'वाह, टॉफी अच्छी लगती है, इसके माने थोड़े हैं कि इसके बारे में सब कुछ जानते हैं। यहाँ तो यह भी नहीं जानते कि उसमें पड़ता क्या क्या है।'

मैं उसके भोलेपन पर मुस्करा पड़ा। याद आया, देवदास ने कहा था, 'पारो है ····· ··· और एक चन्द्रा भी है।' पर मैं न तो देवदास सा रईसजादा हूं और न बोतल का बिरही। उसकी तरह दर्दीले गीत गाकर भी दर्द भुला नहीं सकता। वे जमकर बर्फ की तरह मन के अतल-तल में पड़े रहें सो ही भला। किसी को गर्मी देने की जरूरत नहीं। नहीं तो वह जमीं हिम पिघलकर कहीं मानसरोवर से चल पड़ी तो दूसरी ही दर्द की गंगा बह चलेगी, जाने उस बाढ़ में कौन डूबे, कौन बहे।

'अच्छा पढ़।'

बेला ने मीठे व दर्दीले अपने कुंवारे स्वर में पढ़ना आरम्भ किया,

शशिमुख पर घूंघट डाले,<br>
आंचल में दीप छिपाए,<br>
जीवन की गोधूलि में,<br>
कौतूहल से तुम आए।

क्या?

अब उसने 'राग' के साथ पढ़ना आरम्भ किया,

शशिमुख पर घूंघट डाले,
आंचल में दीप···· ····

दो बार पढ़ी, तीन बार पढ़ी। चलने लगा,

आलो भाई, चालो भाई
दीप जरैं, मन भरैं,
रज्जू के भैरो बाबा,
रक्षा करैं, रक्षा करैं।

बन्द कर बेला। बन्द कर यह गीत। मुझे इसका अर्थ नहीं मालूम।

लगा अन्तस्तल में सोया हुआ 'आइसबर्ग' हिल रहा हो। हे भगवान चल पड़ेगा तो जाने कितने 'पोत' चूर-चूर हो जायेंगे।

'अच्छा दूसरा सुनो',

अभिलाषाओं की करवट,
फिर सुप्त कथा का जगना,
सुख का सपना हो जाना,
भींगी पलकों का लगना।

फिर तो जाने कितने ही पद पढ़ गई,

रो-रोकर सिसक-सिसक कर
कहता मैं करुण कहानी
तुम सुमन नोचते सुनते
करते जानी अनजानी।

घिर जातीं प्रलय घटाएं
कुटिया पर आकर मेरी
तम चूर्ण बरस जाता था
छा जाती अधिक अंधेरी।

बिजली माला पहने फिर
मुसकाता सा आंगन में
हां कौन बरस जाता था
रस-बूंद हमारे मन में?

× × ×

हीरे सा हृदय हमारा
कुचला शिरीष कोमल ने
हिम शीतल प्रलय अनल बन
अब लगा विरह से जलने।

मादकता से आए तुम
संज्ञा से चले गए थे,
हम व्याकुल पड़े बिलखते।

मैंने कहा, 'अब बन्द भी करेगी या पढ़ती ही जायगी।'

वेला बोली, 'अच्छा अर्थ नहीं बताओगे तो यह बताओ, ये पद मुझे अच्छे क्यों लगते हैं?'

'इसे तू जान, मैं क्या जानूं?'

'मैं भी नहीं जानती भैया। इनके आधे तिहाई भी अर्थ नहीं समझती फिर भी जाने क्यों प्रसाद के 'आंसू' बार-बार पढ़ने को जी चाहता है, तब तक जब तक जी भरके रो न लूं।'

'सुन बेला, तुझे इसलिए पसन्द हैं 'आंसू' कि तू बात-बात में ढेर सा आंसू ढारती है। आगे से रोने का जी करे तो प्याज का एक टुकड़ा या संतरे का छिलका आंखों में निचोड़ लेना। 'प्रसाद' के 'आंसू' की जरूरत न पड़ेगी।'

'अब तो मैं रोज तुम्हारे सामने 'आंसू' का पाठ करूंगी।' मचलकर वह बोली।

'क्यों?'

'क्योंकि तुम मना करते हो।'

अजीब सूझ है। रुककर बोली,

'अच्छा बताओ, जब मैं 'आंसू' पढ़ती हूं तो तुम्हें किसी की याद आती है?'

'उहुंऽ।'

'झूठ, झूठ, बिलकुल झूठ।'

'अच्छा तू बता' तुझे किसी की याद आती है?'

'हां।'

'किसकी?'

'नहीं बताती।'

'फिर बता, तुझे किसकी याद आती है ?'
'बता दूं ?'
'बता दे।'
'गुस्सा तो नहीं करोगे ?'
'नहीं।'
'वादा करो।'
'किया।'
हम दोनों ने हाथ पर हाथ मारकर वादा किया।
'अब सुनने को तैयार हो जाओ।'
'मेरा सारा तन कान हो रहा है।'
'अरे बाप रे, सुनो।'
'हां।'
'दीदी।'
'कौन दीदी रे ?' चकित भाव से मैंने पूछा।

हाय जालिम तूने यह क्या किया ? घाव कितने चाव के साथ सात परदों में छिपा रखा था, तूने छू दिया। छू दिया न।

मेरे जरा सा चुप होते ही शरारती बेला चिल्ला पड़ी।
'ये देखो, ये देखो, चुप लगा गए न ? मैंने ठीक-ठीक कहा है। कहा है ना ?'
उदास मन मैंने धीरे से कहा, 'उहुं'
फिर मैंने कहा, 'अच्छा भाग जा।'
'नहीं जाती।'
'जा ना ?' मैं गुस्सा हुआ।
'अब लगे न गुस्सा होने। वादा किया था····।'
मैं मुस्करा पड़ा। बोला, 'तू क्यों नहीं जाती, मुझे अकेले छोड़ दे।'
'रम्मी दीदी का ध्यान करोगे ? समाधि लगाओगे ?'
बड़ी हठीली लड़की है।
'नहीं तो।' मैं गुस्सा न कर सका। मुस्कराया।
'तो फिर मुझे क्यों भगाते हो ?'
'पर तू मेरे पास बैठती ही क्यों है ?'
'अच्छा लगता है इसलिए।' वह मुस्करा दी।
मन ने कहा। यह 'नया रोग' अपने बस का नहीं।

फिर वही बोली, 'अच्छा चलो भीतर मां पकौड़ियां व चाय बना रही हैं, तुम्हारे लिए। वहीं आंगन में खायेंगे।'

'तू चल मैं आया।'

'दीदी का ध्यान करोगे, ला दूं गंगाजल, फूल, चन्दन वगैरह।'

ओह यह बेला तो जान न छोड़ेगी। अन्त में मैंने हैरान होकर कह ही दिया, 'अच्छा चल।'

वह खुश हो गई। आंखें चमक उठीं। मेरा हाथ पकड़ तखत पर से घसीटती ले चली। रास्ते में बोली,

'जानते हो, मैंने क्या बनाया है?'

'क्या?'

'पोदीने की चटनी।'

'तब तो बड़ी तेज होगी रे।'

'हां, दस हरी मिर्चं डाली है।'

'बाप रे, तब तो जीभ जल उठेगी।'

'और आंखों में 'आंसू' नहीं आयेंगे?'

हम दोनों कि स्निग्ध हंसी आंगन में बिखर गई।

हम दोनों पकौड़ियाँ खाने लगें। वही लाती जाती व हम खाते जाते। बीच बीच में मां की नजर बचाकर (वह भीतर चौके में थी) वह मेरे मुंह में पकौड़ी डाल देती व मैं उसके। एक बार शैतान जलती 'लौकी' की पकौड़ी मेरे मुँह में डाल दी जिसमें गर्म भाप जाने कितने तापक्रम पर जल रही थी, मेरे तालू व जीभ जल के ढेर हो गए। मैंने झट मुंह से निकाल फेंका। पर यह बेला थी कि खिलखिलाकर हंस पड़ी।

मैं 'ओह-हो' किए जा रहा था 'सी-सी-सी' करता और वह खूब खिलखिलाकर हँसती।

पकौडियाँ समाप्त हुईं। चटनी सचमुच बड़ी तेज थी। आंख में आंसू आए तो धीरे से बोली,

'ये रूमाल लो, मोती जमीन पर न गिरने पाएं।'

मैं हँस दिया, बोला, 'फिर इस गीले रूमाल को क्या करेगी?'

'दीदी के पास पार्सल कर दूंगी।'

दीदी! नागिन!! रेशमा!!!

## ३१

वह भयानक रात भी आ ही पहुंची। एक बजे रात को हम सभी गन्तव्य स्थान को चल पड़े। हम सब के चेहरों पर आशंका, भय व उत्सुकता थी। फिर भी बात बड़े साहस की करते थे। आजादजी पूरे जोश में थे। एक बार चल पड़ने पर मेरे मन में कोई द्वन्द्व न रहा। जब निकल ही पड़े तो काम सम्पन्न करना चाहिए।

मैं मौन शान्त भाव से राग-भय-द्वेष से परे होकर चल रहा था। हमलोग रस्सी की सीढ़ी डाल सेठ की कोठी के पीछे की दीवार को लांघ कर उनकी बगिया में आ गये। बगिया के आम व लीची के पेड़ अंधकार में हमारी बड़ी सहायता कर रहे थे। रात एकदम साफ थी। बादलों का नाम नहीं। आकाश में मारे तारों के तिल धरने की जगह न थी पर एक चन्दा बिना उन सबका प्रयत्न व्यर्थ था अंधेरे से लड़ने का।

सेठ की गद्दी व तिजोरी नीचे के तल्ले में थी, वह सोता ऊपर था। ऊपर तीन कमरों में तीनों सोए थे। सबसे पहले हमने पीछे से खट-खट की आवाज की तो चौकीदार दौड़कर आया। उसको झट से दो आदमियों ने पकड़कर ढेर किया। बन्दूक छीन ली। मुँह हाथ बाँधकर उसे एक ओर डाल एक आदमी छूरा उसकी छाती पर तान जमा रहा। हिलते ही छूरा भीतर घुस जाता।

अब ताली के लिए ऊपर जाना जरूरी था। नीचे के हाथापाई से सेठ की नींद खुल चुकी थी। वे उठकर नीचे आ ही रहे थे कि हमसे मुलाकात हो गई। मैंने छाती पर पिस्तौल तान दिया। सेठ ने दोनों हाथ ऊपर कर दिये। हमारे दोनों साथियों ने हाथ बाँध छूरा तान सेठ को ऊपर ले गये, मैं तो साथ-साथ था ही। अगल-बगल के कमरों में राजन व पुत्री सो रहे थे। दोनों कमरों को बाहर से बन्द कर दिया।

सेठ समझदार निकले। मारे भय के उनकी आँखें कौड़ी सी निकल आई थीं। जबर्दस्त टार्च हमारे हाथ में थे, इससे सेठ उतना ही देख सकते थे जितना हम उन्हें दिखाते। खास करके हम उन्हें देख सकते थे वे हमें नहीं।

सेठ को हमने मजबूर किया कि वे ताली का गुच्छा लेकर नीचे चलें। सेठ डरते-डरते नीचे आए व तिजोरी में एक के बाद दूसरी ताली 'ट्राई' करने लगे। मेरे साथी को संदेह हुआ सेठ जानबूझकर देर कर रहा है। उसने पीठपर छूरे की नोक जरा तेज की। सेठ ने झट से ठीक-ठीक ताली पा ली।

वह सेफ तो क्या था शैतान की आंत था। तीन चार तालियां व कल-पुरजों के उपयोग के बाद सेठ कुछ खाने खोलकर हताश हो गिर पड़ा।

हमने थैले में नोटों का बण्डल डालने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि ऊपर से 'पुन्नी' की चीख सुनाई दी। मैंने सतर्कता से देखा हमारे एक साथी नहीं हैं मेरे पास।

मैंने छन भर में कुछ ताड़ लिया। अपनी गति भी तय की, साथी से संकेत किया छूरे की नोक थोड़ी और तेज करे व तब सेठ के साथ उसे छोड़ मैं तड़पकर ऊपर गया। वहां जो देखा तो देखकर सन्न रह गया।

हमारे साथी पुन्नी के साथ पलंग पर लड़ाई ले रहे थे। वह पूरी ताकत से छटपटाती व घूंसे मारती थी। वे उसका मुंह एक हाथ से बन्द किए दूसरे से उसे छाती में कसे थे पर पुन्नी की छटपटाहट के मारे रस का सृजन कर नहीं पाते थे।

मैंने दांत पीसकर शैतान की तरह कहा,

'छोड़ दो।'

साथी मेरी ओर ताका। धीरे से बोला,

'तुम अपना काम देखो।'

और फिर पुन्नी को चूमने लपका। वह फिर छटपटाने लगी। मैंने इस बार और जोर से दांत पीसकर पूरी ताकत से पर आहिस्ते कहा,

'छोड़ दो नहीं तो जान गंवानी पड़ेगी।'

'नहीं छोड़ता, तू अपना काम कर।'

और मैंने फायर कर दिया। साथी का दाहिना हाथ तुरंत लटक गया। उसके पाकेट से पिस्तौल निकालकर मैंने अपने पाकेट के हवाले किया।

पुन्नी दौड़कर मेरे गले लिपटी। 'भइया !'

'सावधान, दूर।'

मैंने संकेत किया। संकेत से वह साथ-साथ नीचे आई। मैंने देखा सेठ वैसी ही निरीह हालत में पड़े थे। पुन्नी ने तिजोरी से सारे रुपये निकाल-निकाल कर थैले में भरा। कितनी तो ऐसी दराजें थीं जहां से जल्दी में हमें रुपये न मिलते। सिक्के लेने से मैंने इन्कार किया। फिर गहनों की वारी आई। मैंने पूछा,

'किसके गहने हैं?'

'मेरे हैं। बाबू ने शादी के लिए बनवाया है।'

'फिर रहने दे, तेरा दूल्हा खोजेगा।'

इसके बाद सेठ व पुन्नी दोनों के हाथ-पांव व मुंह बांधकर हम रफूचक्कर हुए। पुन्नी का हाथ व मुंह मैंने स्वयं बाँधा। उसकी आँखें चमक रही थीं। उनमें भय के स्थान पर करुणा, स्नेह व आशीष था।

फायर की आवाज के कारण भीड़ इकट्ठी हो गई थी बाहर। कुछ विशेष नहीं, यही पाँच-सात जिज्ञासु होंगे। उनको 'खबरदार' कर दो-तीन फायर हवा में कर हम चलते बने जीप से। वह भी सेठ की जीप।

दूसरे दिन नगर भर में सनसनी फैल गई। सेठ के घर डाका। सेठ अस्पताल में थे। उनको भय वेसी व घाव कम था। वैसे छूरे की नोक ने काम तो कुछ न कुछ किया ही था।

हमसब बड़े खुश थे। लगभग बीस हजार रुपये नकद मिले थे। हमारा दूसरा साथी नाराज था कि सोने के गहने क्यों छोड़ दिए। हमारे आजादजी की बांह लटक रही थी। वे दो चार्ज पार्टी में मेरे ऊपर लाए थे एक तो अंधेरे में नादानी से या जानबूझकर मैंने उनको गोली मारी। दूसरे मैं पुन्नी से प्रेम करता हूं इसलिए मैंने गहने छोड़ दिए।

असली बात वे पी गए जिसे उसके अलावा केवल मैं व पुन्नी जानती थी। खैर पार्टी का मामला तो अभी सलटा जाता, तब तक तीसरे दिन 'आजादजी' जाने कैसे गिरफ्तार हो गए।

दूसरे दिन रायजी वेला के साथ सेठ के घर गए पूछताछ करने। वहां से

पुन्नी उनके साथ उनके घर आई। उसी समय मैं भी पहुंच गया! उसके मुंह से रात की घटना का बयान सुनकर मैं तो निहाल हो गया। बोली,

'जानती है बेला, वह नीच मुझे पकड़कर दांतों से गाल काटने लगा। मैं छटपटाने लगी। उसे घूंसों से मारती थी, पर मेरे मारने से क्या होता? वह मुझे पलंग पर पटकने ही वाला था कि सरदार आ गया।'

'अच्छा! फिर?' बेला बोली

'सरदार आदमी तो क्या था बेला, देवता था।'

'अरे, तू उसके प्रेम में तो नहीं पड़ गई?' बेला मुस्कराई।

'नहीं री, उसने एक बार उस नीच को 'खबरदार' कहा, फिर वह न माना तो दूसरी बार फायर कर दिया।'

'अपने ही साथी पर?'

'हां, फिर उसकी पिस्तौल व छूरा छीन लिया व मुझे बोला, 'बहन नीचे चलो।'

'फिर?'

'फिर तो मैं 'भइया' कहकर उससे लिपट गई।'

मेरी ओर देखकर बोली,

'जानता है रज्जू भइया। ठीक तेरी तरह उसकी बोली थी व कद भी।'

मैं भीतर से चौंका व बाहर से मुस्कराकर बोला,

'अरी फिर कहीं मैं ही तो न था?'

'धत्। उसके मुंह पर नाटकीय मास्क जो था।'

'क्या पता तुम्हीं हो।' बेला मुस्कराई।

'ओह, उसने मेरी इस्मत की रक्षा की बेला। मैं उसे क्या नहीं दे देती। मैंने ही नोटों का बण्डल उसे दिया। गहने नहीं लिए उसने। बोला, 'तेरा दूल्हा खोजेगा।'

इस दुःख की घड़ी में भी दूल्हे के नाम से दोनों के मन में मिश्री घुल गई।

पुन्नी बोली, 'वह इतना अच्छा आदमी होकर इतना हीन कर्म क्यों करता है बेला, मेरी समझ में न आया।'

'क्या पता री, कोई होगी मजबूरी।'

मैं वहां से खिसक गया। दो दिन के अन्दर 'आजादजी' पुलिस की थोड़ी सी खातिर के बाद मुखबिर हो गए। हफ्ते के भीतर-भीतर हम सभी गिरफ्तार हो गए।

बेला को बड़ा 'शाक' लगा। 'मेरा रज्जू भइया। डाकू ? नहीं, नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।'

जबर्दस्त जांच-पड़ताल शुरू हो गई।' नगर में बहुत से लोग शक कर पकड़े गए। कुछ वे भी मेरे साथी पकड़े गए जो बाढ़ कार्य में सहायता दिये थे, पहली बार जेल में मेरे साथ गए थे। रायजी से भी पूछताछ की गई पर उन्हें गिरफ्तार नहीं किया गया। 'आजाद' के पता देने पर कुछ गिरफ्तारियां बनारस, एलाहाबाद व लखनऊ तथा कानपुर में भी हुईं।

और हमारा बुरा हाल था। हमें इतनी पीड़ा दी जाती कि सुननेवाले, देखनेवालों के रोएँ खड़े हो जायँ। नाखूनों में सूइयां चुभा-चुभाकर बातें निकलवाने की चेष्टा तो एक साधारण बात थी। हमारे पांव के तलवों को हथौड़ी से मारते-मारते सुन्न कर देना। दिन-भर, रात-भर हाथ-पांव बांधकर खड़े रखना। मुंह पर निरन्तर प्रकाश फेंकना। और सबसे हीन कर्म था हमारी जननेन्द्रिय को सहलाकर वीर्य-वसतलन करवाना। हमारा सिर झनझना उठता। हम दुर्बल, पस्त हो गिर जाते।

इन सारी पीड़ाओं की घड़ी में मेरे साथी तो 'वन्देमातरम्' कहते भारत-माता की याद करते, उसकी मुक्ति के सपने देखते। पर मैं ? भारत माता मुझे भूल गईं। दुनिया भर का दुःख-दर्द भूल गया।

सिर्फ एक सूरत याद रही।

जालिम की ! नागिन की !! रेशमा की !!!

मुकदमे का रूप सरकारी वकील देशव्यापी सशस्त्र षड्यंत्र का दे रहे थे। हमारी ओर से भी पिताजी के प्रयत्न व रायजी की मदद से वकील रखे गए। जो मात्र एक 'डाके' का रूप देना चाहते थे जिसका प्रमाण पेश करना सरकारी गवाहों व वकीलों का काम था।

हमारा केस जब मैजिस्ट्रेट के यहां से 'सेशन' सुपूर्द हो गया तो हमें

थोड़ी शान्ति मिली। पुलिस के जुल्म बन्द हो गए गोकि सी० आई० डी० की पूछताछ जारी रही। हम अलग वार्ड में रखे जाते। डण्डा-बेड़ी बराबर पड़ी रहती। जेल के अन्य कैदी मुझे खूंखार डाकू के रूप में देखते। कोई-कोई क्रान्तिकारी भी कहते।

मैं अपने को क्या कहता। क्या बताऊं ?

उधर देश के राजनीतिक वातावरण में परिवर्तन हो गया। कांग्रेस ने प्रांतीय स्वराज्य स्वीकार कर लिया। देश के छह सात प्रांतों में कांग्रेसी सरकारें भी बन गईं। यू० पी० में भी पन्तजी ने कुछ शर्तों के साथ सरकार का गठन करना स्वीकार कर लिया। एक उत्साह की लहर राजनीतिक क्षेत्रों में छा गई। फोटो, फूल, माला, स्वागत, अभिनन्दन के दिन लौट आए। नेताओं की भूखी लालसा पूरी होने लगी।

इसकी प्रतिक्रिया हमारे केस पर भी हुई। हमारी जमानत तो मंजूर नहीं हुई पर मिलनेवालों को मिलने की इजाजत मिलने लगी। बेला नियमपूर्वक महीने में एक बार आने लगी। दुलरिया भी दो-एक बार मिल गई पर अब वह मुझसे कटी-कटी सी लगती। जैसे बच-बच के चलना चाहती हो।

बेला से ही पता चला कि रेशमा का पत्र आया था। वह आने के लिए छटपटा रही है, पर उसके पिताजी उसे आने नहीं देते।

यूं ही झूलते-झूलते दो बरस बीत गए। सेठ ने किसी को नहीं पहचाना। पुन्नी ने केवल आजाद को पहचाना व बोली कि वह उसके तन पर का गहना छीन रहा था।

मेरा केस बहुत कुछ उसके बयान पर निर्भर था। क्योंकि वही चश्मदीद गवाह थी। उसने मुझे पहचानने से इन्कार किया। बोली मेरे जैसे थी, व कद भी, पर ऐसा दूसरा आदमी भी तो हो सकता है।

आजाद ने कोर्ट में भी कहा था कि मैं पुन्नी को बहुत जानता हूं, प्रेम करता हूं इसीलिए उसके गहने नहीं लिए। उसने यह भी कहा कि तिजोरी से जब वह पुन्नी के गहने उठा रहा था तो मैंने गोली मार दी।

नगर में इस 'प्रेम-कथा' का स्कैण्डल बड़े जोर पर था। बेचारी 'पुन्नी' तो मारे शरम के गड़ जाती। कोर्ट में भी मेरे सामने आंख न उठा पाती।

पता चला, बेला बहुत चुटकी लेती है उसकी। उसने एक भेंट में खुद ही बताया।

आखिर हमारे फैसले के दिन रेशमा पहुंच ही गई, सो भी अकेले।

क्या घर से विद्रोह करके आई?

उस दिन कोर्ट में बड़ी भीड़ थी व सनसनी भी। पिताजी मां को भी उस दिन लाए थे। क्या पता, कालापानी हो या दस-बारह साल की सजा हो। एक बार माँ, बेटे को देख तो लेगी।

माँ जो बहुधा कहीं जाती-आती नहीं। जिन्दगी भर परदे में रह गई। उसका परदे से बाहर यूं कोर्ट में सबके सामने बेटे के लिए आना एक बड़ी घटना थी।

मां न तो कातर थी न विह्वल। सदा की भांति उसके चेहरे पर रोब था व एक ठेस थी, एक अकड़। पिताजी मौन व शान्त तथा गम्भीर थे जैसी उनकी आदत थी। बड़े-बड़े मौकों पर किसी भी प्रकार की कमजोरी दिखाना उनकी शान के खिलाफ था।

कोर्ट में दुलरिया भी आई थी। रायजी बेला व रेशमा को लेकर आए थे। रेशमा उन्हीं के घर ठहरी थी। सेठ रामनारायण तो थे ही राजन व पुन्नी भी थे। सब के सब मेरी 'मां' को घेरे थे। प्रेसवाले भी आज आए थे।

वातावरण में एक निराली सनसनी थी। जाने क्या हो। हम पुलिस वान से डण्डा-बेड़ी में उतरे। 'हीरो' की तरह मुस्कराए। कुछ प्रेसवालों ने हमारी फोटो ली।

हमने एक निगाह जमा भीड़ को देखा। फिर माँ को देखकर जी भर आया। मैंने सबको हाथ हिलाया। रेशमा को देखकर कैसी भावनाएँ उठीं, कुछ कह नहीं सकता।

हम कोर्ट में लाए गए। जज ने थोड़ी सी भूमिका के बाद अपना फैसला निकाला। संक्षेप में केस का हवाला दे उन्होंने फैसला सुना दिया।

सबूत के अभाव में हम सभी रिहा किए गए।

हमारी डण्डा-बेड़ियां निकाल ली गईं।

मैंने सबसे पहले झुककर मां को प्रणाम किया। सबने मुझे व माँ को घेर लिया। प्रेसवालों ने बहुत सी फोटो ली। हमारे एक ओर मां दूसरी ओर रेशमा,

फिर बेला, मां के बगल में दुलरिया। इसकी भी एक फोटो ली। पिताजी व रायजी के साथ फोटो ली।

सेठ रामनारायण व पुन्नी के साथ अलग फोटो ली।

रज्जू भइया को लेकर यह कारवां हंसता, खिलखिलाता रायजी के घर चला। पिताजी को लेकर रायजी सेठ के साथ पीछे आए।

घर पहुँचते ही वह खुशी की लहर छाई, वह लहर छाई कि किसी को कोई होश ही न रहा। मैं पांच मिनट में गुसल से नहा-धो कपड़े बदल आदमी बन कर निकला। फिर तो इन लड़कियों ने मुझे एकदम से घेर लिया। मां रायजी की बीबी से बातें करने लगीं। यहां मजमा जम गया। दुलरिया, रेशमा, वेला, पुन्नी।

सब मिलकर पुन्नी की दुर्गति कर रही थीं, दुलरिया खास तौर से। दुलरिया ने बेला के साथ नाटक शुरू किया,

'खबरदार जो आगे बढ़ा, छोड़ दे, छोड़ दे, इस लड़की को। यह मेरी है।'

दुलरिया पिस्तौल का तानना दिखाती। सब मारे हँसी के लोटपोट हो रही थीं। दुलरिया ने 'ठाँय' किया व बेला उससे लिपट गई, 'भइया'।

दुलरिया ने बेला को चूमते हुए कहा,

'हाय पुन्नी, तेरे बिना मेरे प्राण तड़पते थे, आ और गले लग जा।'

बेचारी पुन्नी मारे शरम के आंखें नत किए मुस्करा रही थी व दुलरिया इस नाटक में बेला के अनभ्यस्त गालों को चूमे जा रही थी, सीने में दबाए जा रही थी।

रेशमा खुश थी पर उसकी हंसी-खुशी खुश्क लगती थी 'संदेश' की तरह। वेला की खुशी 'रसगुल्ले' सी थी—रस से भरपूर।

हमलोगों ने सारी दोपहरी व तीसरा पहर इसी हँसी खेल व खाने-पीने में बिता दिया। मैंने आज अनासक्त भाव से सबको खिलाया। पुन्नी के मुंह में मिठाई दी तो दुलरिया ने उसे छेड़ दिया। वह मारे लाज के गड़ गई।

'रहने दे गहने, तेरा दूल्हा खोजेगा इनको।'

और लग जाता ठहाका।

दुलरिया ने मेरा नाटक करते हुए आज रेशमा को भी न छोड़ा। उसे पूरी तरह से चूम ली। पुन्नी की दुर्गति कर दी। बेला की तो कुछ न पूछिए, उसने चटनी वना दी।

मैं मुस्कराता हुआ इस प्यार के अत्याचार को देखता रहा, सहता रहा।

साँझ हुई। पिताजी शाम की गाड़ी से जाने को तैयार हो गये। माँ भी जाने लगी। रायजी की बीबी ने बहुत रोका पर वह रुकी नहीं। कभी गाँव पर आने का निमंत्रण दे विदा हुईं।

स्टेशन पर माँ को भेजने हम सभी गये। गाड़ी खुलने को हुई तो माँ ने प्रणाम करते समय कहा, 'बेटा, कभी-कभी याद तो कर लिया कर, एक माँ भी है। बाप को तो तेरी चिन्ता घुन की तरह भीतर ही भीतर खा गई। खण्डहर भर खड़ा है।'

पिताजी गाड़ी में बैठे दूसरी ओर ताक रहे थे। माँ की आँखों से पहले-पहल आँसू टपके। मैं विह्वल हो गया। माँ से पुन्नी, रेशमा, दुलरिया, बेला सभी मिलीं। माँ ने उनको समुचित आशीष दिया। सबकी आँखें गीली हो गईं। सेठ रामनारायण तथा रायजी ने पिताजी से विदा ली।

ट्रेन चल पड़ी।

मैं दूर जाती ट्रेन का काला-काला धुआं देखता रहा। माँ के शब्द अभी भी दिमाग में घूम रहे थे 'वाप को तेरी चिन्ता घुन की तरह भीतर ही भीतर खा गई। खण्डहर भर खड़ा है।' पिताजी खण्डहर। माँ के आँसू। मैं डूबने-सा लगा। ट्रेन चली गई पर माँ की डबडबाई आँखें मेरे सामने नाचती रहीं 'कभी-कभी तो याद कर लिया कर तेरी एक माँ भी है' माँ ! मेरी माँ !!

रायजी कन्धे पर हाथ रक्खे।

'चलो रज्जू घर चलें।' मुझे जैसे होश हुआ,

'अँ, हअ.........।'

सेठ पुन्नी को लेकर विदा हो गये। शेष हम सब रायजी के घर आये। दुलरिया ने अपने घर चलने का हठ किया।

मैंने रात को आने का वादा किया वह भी चली गई। घर शान्त हो गया। बच गई रेशमा व मैं। बेला तो थी ही।

फिर उसी जालिम का सामना जो पोर-पोर में, रग-रग में दर्द बनकर समाया था।

वह मौन खिड़की के बाहर दूर तक जाने क्या देखती थी। मैं दरवाजे से बाहर डूबते सूर्य की लाली देख रहा था। दोनों मौन थे, जैसे बोलने को कोई बात ही न हो। बेचारी बेला चकित थी, हैरान थी।

ये तो बोलते ही नहीं।

इसी के लिए दोनों तड़प रहे थे ?

मिलेंगे तो मुँह फुलाकर दो कोने बैठ जायेंगे। क्या पता यह मान लीला हो।

मौन भंग करती हुई बेला बोली,

'दीदी, तुम कुछ बात करो ना ?'

'क्या बात करूँ री कोई बात भी हो ?'

'तो मैं चली जाऊँ ? तब बात करोगी ?'

वह उठने का उपक्रम करने लगी। रम्मी ने उसे हाथ पकड़कर बिठा लिया। बेला बोली,

'फिर तुम्हीं कुछ क्यों नहीं कहते रज्जू भइया।'

मैं मुस्कराकर चुप रहा, वही बोली,

'या आज रात को फिर कहीं डाका डालने वाले हो ?'

'तेरे सामने इस समय दो डाकू हैं बेला।'

'डाकू कोई और होगा, मैं नहीं।' रम्मी बोली।

'जो किसी के प्यार पर डाका डाले उसे क्या कहेंगे बेला ?'

'छि: छि: भइया, तुम तो जाने कैसी बात करने लगे। तुम लोग यूँ न मानोगे, मैं अभी शुरू करती हूँ 'आँसू।'

वह अलाप उठी, धीरे-धीरे,

जो घनीभूत पीड़ा थी
मस्तक में स्मृति-सी छाई,
दुर्दिन में आँसू बनकर,
वह आज बरसने आई।

हम दोनों मुस्करा पड़े। वह उठ पड़ी,

'अच्छा मैं किताब उठा लाऊँ।' कहकर वह चली गई। पर निकली समझदार। लौटकर आई नहीं।

हम दोनों ने फिर एक-दूसरे को देखा, मुस्कराये। एकदम से सूखी हँसी। झूठी हँसी। फिर हमारी आँखें नत हो गईं। हम स्थान से हिले नहीं जमे रहे अपनी जगह। देखा किए क्षितिज पर होनेवाले परिवर्तन को संध्यारानी के आगमन से।

पता नहीं किसको बेसी शिकायत थी।

जाने यह बर्फ कब गलेगी ?

जाने यह मौन कब भंग होगा।

# ३२

मैंने जाने कहाँ से सुन रखा था कि नारी व पुरुष के बीच अगर कोई अटकाव हो तो सभ्यता का तकाजा है कि पुरुष झुके पहले, चाहे भूल उसकी न भी हो। इसलिए मैंने इसे अपना कर्तव्य माना कि मैं ही झुकूँ, मैं ही चर्चा शुरू करूँ। फिर बात करने न करने से होता भी क्या है। जब इतनी दूर से घर का विरोध बर्दाश्त कर रेशमा आई है तो भलमंसी का तकाजा तो है ही कि मैं दो बातें कर लूं।

मगर क्या बातें करूँ ?

अंग्रेजी सभ्यता के हिसाब से मैं 'मौसम' की चर्चा तो आरम्भ कर नहीं सकता था, 'यह साँझ कैसी सुहानी है व सुनहरी भी।' गोकि रम्मी अब कालेज में पढ़ने लगी थी इसलिए वह भी कुछ बुरा न होता।

मैंने पूछा, 'प्रीतम कैसी है ?'

'बहुत अच्छी है, आपके नाम की माला जपती है, गुन गाती है।'

'आप ?' यह रम्मी मुझे 'आप' कहने लगी ? हे भगवान।

मैं इस चोट को पी गया। लगा जैसे किसी ने गरम सलाखों से दाग दिया हो। मैं साहस कर आगे बढ़ा,

'और चन्द्रा ?'

'वह भी आपके कारनामें अखबारों में पढ़-पढ़कर फूली नहीं समाती। मन ही मन पूजा करती है।'

चलो, ताने ही सही। रेशमा बोलने तो लगी। जब सारी गुबार मन की निकल जायगी तो सीधी बात करेगी। ओह, हम दोनों इतने हठीले क्यों पैदा हुए ? इतने जिद्दी क्यों ? जब अड़ जाते हैं तो झुकने का नाम ही नहीं लेते।

'बुआ के क्या हाल हैं ?'

'बुआ कहती हैं, मेरा रज्जू बेटा जग में सबका नाम उजागर कर रहा है।'

'और फूफाजी ?'

'वे आपकी छवि इन्स्टीट्यूट हाल में लगवाने की कोशिश कर रहे हैं।'

मेरे मन में गुस्सा भरने लगा। सभ्यता भूलने लगी। गाँव का जंगलीपन जागने लगा। मैंने कहा,

'और आप क्या करने पधारी हैं यहाँ ?'

'झख मारने।'

ये तेवर ! यह गुस्सा ! ये तार तो बिन छेड़े ही भले, इतने कसे हैं कि संगीत के बदले कर्कश-ध्वनि आती है।

इसी समय बेला दूसरे कमरे से गुनगुना उठी,

चलीं राधा रानी, अँखियों में पानी,<br>अपने मोहन से मुखड़ा मोड़ के।

उसने तीन बार उसे दुहराया व रेशमा के नयन झर-झर झरने लगे। वह रोती गई। उसके आँचल भींगते गये, ब्लाउज भींगते रहे। मैं टक-टक ताकता रहा। मेरी आँखों में आँसू न थे।

जाने कब के सूख गये।

मैं चुपचाप देखता रहा उस सोने की काया को जो इन दो वर्षों में तप के चमक जरूर उठी थी पर कितना दुर्बल हो गई थी। कितना झुलस गई थी।

कली खिलने भी न पाई थी कि 'लू' लग गई। माली ने पानी न दिया।

झरते आँसुओं के बीच बोली,

'रज्जू, तू कितना कठोर हो गया है ? और कितना सताएगा ?'

'किसी-किसी का जन्म ही ऐसे नक्षत्र में होता है।'

'तेरे करते बाबूजी, माँ, चाची, पिताजी, अम्मा सब कितना तड़पते हैं मन-ही-मन भुगतते हैं, और तुझे किसी पर तरस नहीं आता ?'

'और मेरे ऊपर किसी को तरस आता है ?'

'तुझे कौन नहीं प्यार करता रे बोल तो ? अपने घर के लोग तो तुझपर जान देते हैं। ऊपर से दुलरिया, सोनिया, मोनिया, रायजी, बेला, पुन्नी...... कहाँ तक नाम गिनाऊँ ? प्रीतम, चन्द्रा, और न जाने कितने जाने-अनजाने लोग तुझे प्यार व श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं और एक तू है जो सबको ठोकर की नोक में रखता है ?'

'ठीक तो कहती है, मैं सबको ठोकर की नोक में रखता हूँ, और तू मुझे कहाँ रखती है ? लिस्ट गिनाने में अपना नाम क्यों भूल गई ?'

'मैं तुझे कहाँ रखती हूँ रज्जू वह तो मेरा दिल जानता है या भगवान जानता है, पर तूने परतीति जब खो दी मेरी तो तुझसे कुछ भी कहना बेकार है ।'

'परतीति खो दी कोई झूठ ?' मैं गुस्से में थर-थर काँप रहा था। इसी समय दुलरिया आ गई। उसके आने का आहट पाकर बेला भी आ गई। दुलरिया बोली,

'लड़ने लगे न तुम दोनों ? मैंने क्या कहा था बेला ? ये दोनों लड़-लड़के अपना सत्यानाश करते हैं ।'

मैं गुस्से में भरा था, उबल पड़ा,

'अपना ही तो करते हैं सत्यानाश, तेरा तो नहीं करते ?'

'यही हाल रहा तो एक दिन मेरा भी करेगा ।'

'तभी तो मेरा केस चला तब से दूर-दूर रहने लगी ।'

मेरी इस बात से दुलरिया को सचमुच चोट पहुँची। रेशमा व बेला को काठ मार गया ।

मैं सचमुच लड़ रहा था ।

दुलरिया गुस्से में बोली,

'क्या बताऊँ रज्जू, तू जरा बड़ा हो गया तो यूं आग उगलने लगा नहीं तो तेरी दवा तो यही थी कि कान पकड़ के चार तमाचे जमाए व तेरी तबीयत ठण्डी हो जाय। सारी शोखी भूल जाय ।'

'तो जमा दे, तुझे मना किसने किया ?' मैंने कहा।

वह कुछ ठण्डी पड़ी। बेला बोली,

'हां, जीजी आज यही हो, हम सब मिलकर जरा इनकी गरमी उतार दें तो मजा आ जाय ।'

दुलरिया मुस्कराई। बोली, 'अभी तुझे इससे अच्छी तरह पाला नहीं पड़ा न ? कुँआरे अंग हैं, इसी से कहती है ।'

बेचारी लजा गई। उसका उत्साह ठंडा पड़ गया मुझे ठंडा करने के बदले।

अब दुलरिया और डपट कर बोली, 'यह तो सोचता नहीं, पांच सौ मील दूर से दौड़ी-दौड़ी आई है तेरे लिए तो प्रेम के दो बोल ही बोल दे। उल्टा लगा झगड़ने।'

मैं कुछ न बोला। रेशमा के नयन झरने लगे थे सो रुके नहीं। रोती रोती बोली,

'प्रेम के दो बोल ! कह तो दो गालियां जल्दी दे देगा।'

मैं फिर चुप रहा। वेला बोली,

'रज्जू भइया अब तुम हार गए। इसी बात पर एक चाय का दौर चल जाय। क्यों जीजी ?'

'हां रे, तू ला, चाय ला।' दुलरिया बोली।

बेला चली गई चाय लाने। रम्मी व दुलरिया आपस में बातें करती रहीं जैसे मैं कमरे में होऊं ही नहीं। मैं सूखे ठूंठ-सा हो रहा था जिसमें न तो कोई रस, न हरियाली।

बेला ट्रे भर के चाय लाई। रखती हुई बोली,

'रज्जू भइया, एक के बदले दो कप पी लो। गुस्सा उतर जायगा।'

'रहने भी दे, क्या पता। उतरने के बदले गरमी पाकर पारा चढ़ गया तो मुश्किल होगी।' दुलरिया बोली।

'पारा चढ़ेगा तो कहीं डाका डालने निकल पड़ेगा।'

रम्मी ने जोड़ा। मैं क्षीण मुस्कराकर रह गया। हम चारों चाय पीने लगे।

इधर-उधर की बातों में चाय भी समाप्त हुई। दुलरिया ने रात के खाने का प्रस्ताव रखा हम सबके लिए। पहले तो मैंने आनाकानी की पर वह सचमुच गुस्सा होने लगी तो मैं मान गया। बेला के लिए वह चाची से पूछ आई। हम चारों ताँगे में बैठ चल दिए।

दुलरिया ने भोजन का अच्छा प्रबन्ध किया था। बरसों बाद इतना सुन्दर व स्वादिष्ट भोजन करने को मिला। मैं तो खाकर तृप्त हो गया। पर इससे भी बड़ी बात दूसरी हुई। दुलरिया संकेत से बेला को बुलाकर चौके व भोजन की तैयारी की ओर उलझाए रखी। बेला ने भी बड़े चाव से उसकी मदद की। ड्राइंगरूम में केवल हम दो रह गये। रेशमा व मैं।

दोनों एक दूसरे की रग-रग में रसे हुए थे फिर भी आज कितने दूर नजर आ रहे थे। हम पुरानी स्मृतियों को तनिक भी छेड़ना नहीं चाहते थे क्योंकि उनके छूते ही बाँध टूट जाता फिर क्या होता, कुछ कहना मुश्किल था। क्या बहता, क्या बचता, कौन जाने, कौन कहे।

मैंने आज भी मैन्टलपीस पर पड़ी उसकी मेलेवाली छवि को देखा व जल गया। रम्मी ने मेरी दृष्टि का अनुसरण किया व बोली, 'यही सब तो तुझे भ्रम में डालकर तेरी और मेरी जान लेते हैं।'

'इन्सान अपना मन काबू में रखे तो दूसरा कोई उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं सकता।' मैंने कहा।

'मैं भी तो यही कहती हूँ, यदि इन्सान की आँख पर परदा न पड़ जाय तो दूसरा कोई उसको बहका नहीं सकता।'

मुझे उसकी बात कुछ समझ में न आई पर इतना जरूर समझा कि रम्मी यूं ही नहीं अकड़ रही है, उसके पास कुछ ठोस जरूर है। मैं जानने के लिए उत्सुक हो गया वह क्या है। फिर मेरी ही कहीं भूल है क्या? क्या पता!

मैंने कहा, 'अगर किसी की आँख पर परदा हो तो उसे कैसे मालूम होगा जब तक दूसरा कोई उसे उठा न दें वह परदा।'

'रज्जू परदा उसका हटाते हैं जिसकी आँख खुली हो पर जो आँख मूंद ले उसके लिए परदे का उठना न उठना बराबर है।'

'मगर प्रयत्न कर देखने में क्या जाता है कि आँखें खुली हैं या बन्द। आँखों को बन्द समझना भी तो भ्रम हो सकता है।'

'पर किसी-किसी का भ्रम इतना गहरा होता है कि बात से नहीं, काम से ही उठता है।'

'बात कर देखने में हर्ज ही क्या है।'

'रज्जू, मुझसे फजूल की बातें न कर। मैं बहुत कमजोर हो गई हूँ व बकवास मुझसे अब बर्दाश्त नहीं होती। तू बात करने की सीमा बहुत पहले पार कर चुका।'

'भला कब से?' मैं नरम पड़कर बोला।

'उसी दिन से जब तू मुझसे रूठ गया मेले में गंगापार व मेरी एक भी न सुनी। अब मैं वैसी चेष्टा हरगिज न करूँगी।'

मेरा जी एकदम व्यथा से भर उठा। जब मेरी रम्मी भी मेरा यूं त्याग कर देगी तो कैसे जिऊँगा? पर त्याग किसने किया? मैंने ही तो? उसने तो नहीं? पर वे नागिन-सी फुँफकारती साड़ियाँ क्या थीं?

मेरा सिर जोर से चक्कर खाने लगा। मैं कमजोर तो हो ही गया था। सोफे पर लुढ़क कर सिर टेक दिया। मुँह से धीरे-धीरे निकला,

'रम्मी, जब तू भी मुझे त्याग देगी तो मैं कहाँ रहूँगा? कैसे जिऊँगा? मेरे लिए सूली छोड़कर और कहीं कोई गति नहीं।'

वह तेज होकर बोली, 'त्याग मैंने किया तेरा या तूने रे? लखनऊ से चुपके से भाग आया। भला एक बार तो पूछा होता भले आदमी, वह बक्स कैसा है, वे साड़ियाँ कैसी हैं।'

'उनमें तह किये कागजों में तो लिखा ही था, वे क्या हैं, कैसी हैं? उनको पढ़ने के बाद तुम मुझसे क्या आशा रखती थी।'

मेरे भीतर नये सिरे से पीड़ा होने लगी जैसे उन सभी नागों ने अभी-अभी फन निकाल डस लिया हो। रम्मी बोली, 'यही तो कहती हूँ अब तू बात मानने-सुनने की सीमा से परे हो गया है। नहीं तो रुककर एक बार अपनी रम्मी से पूछ तो लेता, यह क्या है। अरे, तू तो मेरा था, जवाब-तलब कर सकता था। पर नहीं, तूने मुझ पर से परतीति खो दी। पूछने की भी जरूरत नहीं समझा। तेरा मन पापी हो गया, चोर हो गया, तूने अपने 'प्यार' पर से विश्वास खो दिया। उसका फल और क्या होता? देख अपनी दशा, देख मेरी दशा। सात जनम की व्यथा इन दो बरसों में भोग चुका, सात जन्मों की व्यथा मैं सह चुकी और फल?'

हे भगवान, जाने अभी कितना दारुण दुख सहना शेष है इस जीवन में।

'तू सच्चाई जानकर भी क्या करेगा? जानेगा तो उस बार की तरह पछतावा के मारे अपने को सूली पर टाँगने लगेगा। उससे तो यह पापी भ्रम ही अच्छा।'

मैं कुछ न बोला। मारे व्यथा के छटपटाता रहा। वही फिर बोली,

'जाने तू यह क्यों भूल जाता है कि जब तू अपने को सताता है तो मुझे भी उतना ही सताता है, मेरे रोम-रोम में तो तू छा गया बचपन से ही, अब अपने को अकेले मारने का प्रयत्न करता है। हर बेंत जो तू अपने तन-मन पर

मारता है 'सॉट' मेरे तन-मन पर उभड़ती है। तुझे दुःख होगा इसलिए मैं अपने को सुरक्षित रखती हूँ, नहीं तो अपनी साँसत करने मुझे भी आती है। और तू अपना सिर भट्ठी में झोंककर मेरा भी सिर फूँकता है। तूने जितने दुःख उठाए, जितनी सांसत सही, कैसे बीमार पड़ा, जेल में जो-जो यातना भोगी, बेला सब कुछ लिखती रही। जरा सोच तो मुझपर क्या गुजरती होगी।'

रम्मी के नयन झर-झर मोती बरसने लगे।

वह कहती गई, 'कभी-कभी सोचती हूं तूने डूबने से मुझे क्यों बचाया? मेरी साँसत करने के लिए? छोड़ दिया होता तो कितना अच्छा होता। आज यूं तो मारी-मारी न फिरती। न घर की, न घाट की।'

'ओह।' मैंने कहा।

वह बोली, 'जिस बक्स के लिए तूने इतना दुख उठाया। इतना तूफान खड़ा किया उसे जानता है तू? मैंने देखा तक नहीं था।'

'क्या?' मैंने चकित भाव से कहा।

'हां, एक बार गनेश आया वहुत सारे बक्से में सामान भरके। एक रात रहा। दूसरे दिन चला गया। जाते-जाते बोला कि वह बक्स बाद को ले जायगा। उस माल की जरूरत नहीं, अभी, तब तक रहने दूं। मैंने कहा, 'डाल दे कहीं।' और वह पड़ा रहा। मेरे सामान तो 'कबोर्ड' आलमारी व वार्डरोब में थे। मुझे यह भी पता न था कि वह बक्स खुला है या बन्द। सोचती थी बन्द तो होगा ही, ताली गनेश के पास होगी।'

'हे राम, मैंने क्या कर डाला।' मैं कहकर और रोने लगा। वह कहती गई,

'जब तू चला गया तो मैं एकदम से हैरान रह गई। इधर-उधर चारों ओर देखा, न तो कोई पुरजा मिला न कोई संवाद किसी से। तेरा कमरा देखी वहां तेरा कोई सामान न था। बेहद परेशान हुई, क्या हुआ जो तू चला गया। मां से पूछा, पिताजी से, नौकरों से। अन्त में मन मारकर अपने कमरे में बैठी तो देखा कि गनेश वाले बक्से का लीवर उठा हुआ है। उत्सुकतावश जाकर देखने लगी, किसने खोला उसकेभीतर सारे सामान इतने तितर-बितर पड़े थे कि मैं हैरान रह गई। एकाध कागजभी दिखाई दिए। उनको पढ़कर मैं तो एकदम सुन्न रह गई। 'फिर तो हर चीज को निकाली। बक्स को पूरा छान डाली। हर कागज को निकाल कर पढ़ गई। तेरे चले जाने का कारण मालूम हो गया। किस्मत ठोक कर बैठ गई।'

'तूने फिर मुझे लिखा क्यों नहीं ?' मैंने दारुण व्यथा के बीच कहा।

'क्या लिखती रे ? तू पूछने भर को तो ठहरा नहीं, फिर लिखने से तुझे यकीन आता ? अब तू ही बता, कोई मेरे पीछे यूं पड़े तो मैं क्या करूं ? मेरा क्या दोष ? पर तू सहारा देने के बदले उल्टा मुझे ही सजा देता है व मझधार में डूबने के लिए अकेला छोड़ देता है।'

'हाय रम्मी।' कहकर मैं लुढ़क गया। वह सोफे से उठकर मेरी कुरसी के पास आई व मेरे सिर को बाँहों का सहारा दे मेरे आंसू पोंछने लगी। बोली, 'मेरे रज्जू, तू तो जानता ही है वह किस प्रकार कजरी तीज के मेले से ही मेरे पीछे पड़ा है, बल्कि उससे भी पहले से जब उसने साड़ी भेजी थी। पर मैं करूं क्या ? बता न तू ही। साली के नाते छेड़ने से भी बाज नहीं आता और तू बात-बात में अपना खोपड़ा खराब कर अपनी दुर्गति करता है व मेरी भी।'

नयन ढरते रहे। व्यथा आँसुओं में बहती रही, प्यार के स्पर्श कंधे से मन में समाने लगे। उसने पुराने दिनों की तरह मेरे आंसू आंचल से पोंछे। इसी समय लगा कि कोई दरवाजे के पास आकर लौट गया। परदे के पीछे छाया लौटती नजर आई। पर मैं हिला नहीं।

जब मैं रम्मी के आँसू पोंछने चला तो बोली, 'अभी नहीं, जब तक तेरे मन में जरा सा भी भ्रम है, तू मेरा तन छू नहीं, सो ही भला।'

वह उठकर अपनी सीट पर जा बैठी। तभी दुलरिया व बेला भोजन के लिए बुलाने आ गईं।

सब एक दूसरे को देखकर मुस्करा पड़े।

दुलरिया बोली, 'मैं कहूँ क्यों सारा घर चिप-चिप लगता है। वर्षा हुई है ना ?'

मैं मुस्कराया। रम्मी शरमाई। बेला चहक कर बोली, 'रज्जू भइया मान गए। रज्जू भइया मान गए, दीदी मुझे कुछ इनाम दो इस खुशी में।'

रम्मी ने कहा 'ले' और उस बेचारी के गाल सबके सामने चूम ली। छिः छिः बेचारी कपोल पोंछती शरमा गई। इतने में दुलरिया ने दूसरा कपोल चूम लिया। वह तो मारे लाज के गड़ गई पर भीतर ही भीतर खुश नजर आ रही थी।

दुलरिया बोली, 'अब पा गई न जी भरके इनाम ?'

धीरे से बोली, 'जी हां।'

हम सब हंस पड़े व डाइनिंग रूम की ओर चल पड़े।

# ३३

जब हम दुलरिया के घर से चले तो काफी रात हो चुकी थी। मधुमास में रात को बड़ी नशीली हवा बहती है, उधर रेशमा से सुलह हो जाने से—'अपने' ही साथ अपनी सुलह हो जाने से मैं बहुत प्रसन्न था। शायद इतना खुश वरसों बाद हो सका था।

रेशमा हमारे साथ न आई। दुलरिया ने रोक लिया। बोली, 'तेरे साथ न जाऊंगी, तू लड़ेगा।'

हम सभी हंस पड़े। तब वोली,'ले जा इस बेला को, पर इसे सताना नहीं मेरी तरह।'

वह तो लजा गई, पर हम तीनों हंस पड़े। मैंने उसकी चोटी खींचकर कहा, 'चल री, तू ही चल।'

और हम हँसते-हँसते तांगे पर बैठ गए। वह भी बड़ी ही प्रसन्न मुद्रा में थी। तांगे पर बैठते समय मेरे कन्धे पर हाथ रखकर उछलकर बैठ गई। पास खड़ी दुलरिया व रेशमा मुस्कराईं। मैं भी बैठ गया। नयनों ने रेशमा को विदा दी।

हम सभी मारे खुशी के छके थे।

वह रास्ते में बोली, 'रज्जू भइया, हमलोग रम्मी दीदी को साथ लाए होते तो कितना अच्छा होता।'

मैंन धीरे से कहा, 'हां रे।'

'तुम्हारी रम्मी दीदी की सुलह हो गई ना ?'

'झगड़ा ही कब था रे ?'

'अरे वाप रे, मेरे घर तो तुम दोनों यूं लड़ रहे थे कि मैं डर गई थी, एकदम से।'

'हम यूँ ही लड़ते आ रहे हैं, जन्म-जन्म से, युग-युग से।'

'तुम दीदी को बहुत प्यार करते हो ना ?'

'क्या पता। उसी से पूछना।'

'दुलारी जीजी कहती थीं कि तुमसे सब डरते हैं, केवल दीदी नहीं डरतीं और जब तक तुम दोनों जी भर के लड़ नहीं लेते, कभी सुलह नहीं होती।'

'तभी तुम दोनों हमें कमरे में अकेले छोड़ कर चली गई थीं।'

'हाँ।' वह बोली। हम दोनों मुस्कराये अँधेरे में।

वह रुककर बोली, 'पर तुम हो निर्दयी, दीदी को बहुत सताते हो।'

'और तू चोर नहीं? चुपके-चुपके उसे सब कुछ लिखती रही मेरे बारे में।'

'न लिखती तो दीदी को तुम आज जिन्दा न पाते। उनके दर्दीले खत पढ़ो तो छाती टूक-टूक हो जाय।'

'पर कहाँ तेरी छाती टूक-टूक हुई रे। वह तो और भी बढ़ के।'

वह मुस्कराई, शरमा गई। अजीब छुई-मुई थी बेला भी। बोली,

'दुलारी जीजी कहती थी जब तुम रम्मी दीदी से रूठते हो तो सारी दुनिया रौंद डालते हो, बिल्कुल दर्द नहीं लगता।'

'तो यही सब तू करती रही आज।'

'हाँ, आज हम दोनों ने तुम दोनों के बारे में ढेर-सी बातें कीं, ढेर सी।' रुककर, 'एक बात कहूँ।'

'कहो।'

'मेरा मन करता है कोई मुझे इतना प्यार करता।'

'कितना रे?'

'जितना तुम करते हो दीदी को।'

'कहाँ? सताता कितना हूँ। इतने पर तो तेरी चटनी बन जायगी।'

'पर तुम स्वयं को कितना सताते हो?'

फिर शरारत से भरकर बोली, 'जानते हो मैं 'आँसू' क्यों तुमको पढ़कर सुनाती थी?'

'क्यों?'

'रम्मी दीदी ने लिखकर भेजा था जैसे भी हो रज्जू को रुला दे। वह रोएगा नहीं तो जिएगा नहीं। और कोई भयंकर काम कर बैठेगा।'

'और मैं भयंकर काम कर बैठा, क्यों ?'

'और क्या ?'

'तुझे विश्वास है, मैंने डाका डाला था ?'

'पुन्नी कहती थी, थे तो तुम्हीं। तुम्हारी आवाज उसने पहचाना था। जब वह तुमसे लिपटी तो तुमने धक्का दे दिया।'

मैं मौन रहा। हम घर पर पहुँच गये। जब अपने कमरे में जाने लगे तो उसने मुस्करा कर कहा,

'गुडनाइट।'

'गुडनाइट' हँसकर मैंने जोड़ दिया।

वह बड़ी तृप्त नजर आई।

दूसरे दिन दुलरिया रम्मी के साथ रायजी के घर आ गई। सारे दिन हमारी गप्पें व ऊधम चलते रहे। लगा जैसे पुराने दिन लौट आये।

शाम को हम सभी फिलम देखने गये—'जवाब।' बरूआ की सादगी पर सभी मुग्ध हो गये। बेला चहक कर बोली, 'यह तो एकदम से रज्जू भइया सा लगता है।' दुलरिया बोली, 'हाँ पर हाथी का शिकार करता है, सेठ की तिजोरी नहीं लूटता।'

हम सभी हँस पड़े। जब वह गीत चलने लगा, 'पंछी बावरा! चाँद से प्रीत लगाये।'

तो रम्मी मेरे कन्धे पर सिर टेक रोने लगी। फिल्म चलती रही व रम्मी रोती रही। फिल्म समाप्त होने पर वह दुलरिया के साथ उसके घर चली गई। मैं बेला के साथ रायजी के घर लौट आया।

अलस-विलास में यूँ ही दिन बीतने लगे। ऐसा जी में आता कि यदि सारी जिन्दगी यूँ ही बीतती तो कितना अच्छा होता? पर समय किसकी सुनता है। किसका इन्तजार करता है। रम्मी ने दो-तीन दिन में चले जाने का अल्टिमेटम दे दिया।

एक दिन शाम को यूँ ही दुलरिया से इधर-उधर की गप्पें कर रहा था तो उस बक्स व साड़ियों की चर्चा चल पड़ी। वह बोली,

'अरे रज्जू, मैं नहीं जानती थी कि एक नन्हीं-सी भूल से इतना बड़ा तूफान खड़ा हो जायगा। बात यूँ हुई कि तूने सेठ रामनारायण से कह दिया

तो हमारा क्रेडिट-लिमिट बढ़ गया। इससे दुकान भी बढ़ गई व बिक्री भी। साथ-साथ हमारा मुनाफा भी बढ़ गया। मैंने सोचा इस खुशहाली में कुछ भेंट तुझे व रम्मी को दे डालूँ। पर तेरे रुख का कोई भरोसा न था। क्या पता सुनते ही बिगड़ जाता व जली-कटी सुनाने लगता।'

'क्या मैं इतना बिगड़ैल् हो गया हूँ?'

'हो ही गया है, इसमें झूठ क्या है?' वह हँसी।

'जब गनेश कानपुर जाने लगा तो उसे मैंने पाँच सौ रुपये दिये कि वह कुछ उपहार खरीद कर मेरी ओर से रेशमा को देता आये। सो कहना तो उसने किया पर साली के नाते जाने क्या पता रसीली बातें लिख आया। लिख तो आया पर सामने खोलकर रम्मी पढ़ेगी, इससे लजा गया। यूँ ही छोड़कर चला आया। सोचा मजा आ जायगा जब रेशमा खोलकर पढ़ेगी। वह पत्र तो देगी ही फिर दुलरिया सब स्पष्ट कर देगी। पर वहाँ तो तूने तूफान ही खड़ा कर दिया।'

मैं मुस्करा गया। बोला, 'कभी-कभी ऐसे मजाक मँहगे पड़ जाते हैं दुलरिया। दो जिन्दगियाँ बरबाद हो गईं।'

'सो तो ठीक है पर यह कहना मुश्किल है कि इसमें कहाँ तक मजाक का हाथ है और कहाँ तक........।'

'मेरी बेवकूफी का? यही ना?' मैंने जोड़ा।

वह हँसकर बोली, 'हाँ।'

इस प्रकार कभी पार्क में, कभी गंगातीर, कभी बगिया में हमारी मजलिस बैठ जाती। मैं रम्मी व कभी बेला या दुलरिया होती। कभी-कभी हम दो ही होते। धीरे-धीरे करके उसने अपनी दो साल की तड़पन, व्यथा व दर्द की कहानी कहा। कहते-सुनते हमारी आँखें गीली हो जातीं। हम अकेले होते तो एक-दूसरे के आँसू पोंछते या गीले होंठ व नयन चूम लेते। औरों के साथ होने पर बात और होती। प्यार भरी निगाह से एक दूसरे को देखकर रह जाते।

मैंने भी इन दो सालों में भुगती हुई सारी यन्त्रणाओं की कहानी धीरे-धीरे सुनाया। जेल में दी गई यातनाओं की बात सुनकर रम्मी सिसक-सिसक कर फूट-फूट कर रोने लगी। बार-बार कहती,

'हाय रज्जू, मैंने तुझे मार डाला, मैं मर क्यों नहीं गई।'

उसे चुप कराने में मैं भी रो पड़ता। हम एक दूसरे के आँसू पोंछते-पोंछते बार-बार प्रतिज्ञा करते अब कभी, कभी एक दूसरे से अलग न होंगे। कभी, कभी भी सन्देह न करेंगे।'

वे सोने के दिन और चाँदी की रातें।

क्या फिर कभी आयेंगी ?

× × ×

हमारा सहजपन लौट रहा था। खिंचाव-तनाव मिटते जा रहे थे। हमारे आपसी सम्बन्ध भी सहज एवं सरल होते जा रहे थे।

एक दिन जब हम दुलरिया की बगिया में बैठकर आमने-सामने दो बेंचों पर बातें कर रहे थे तो गनेश आया। मैं एक बेंच पर दुलरिया के साथ बैठा था। दूसरे पर रम्मी और बेला थीं। उसने आते ही कहा,

क्यों दुलरिया, आज के प्रोग्राम क्या हैं ?'

'कैसा प्रोग्राम ?' दुलरिया बोली।

'शाम का।'

वह बेला व रम्मी के पीछे बेंच की दूसरी ओर खड़ा था।

'कोई विशेष प्रोग्राम नहीं, तेरे मन में क्या है ? बोल ना।'

'हम सब लोग 'बगदाद का डाकू' देखने क्यों न चलें ?'

रम्मी बोली, 'बगदाद का डाकू ?'

बेला बोली, 'वह तो सामने बैठा है।' मेरी ओर संकेत कर हँस पड़ी। हम सभी हँस पड़े। अब गनेश ने कहा, 'और हमारी खूबसूरत सालियों को भी ले चल।' कहते-कहते उसने दोनों के कन्धों पर दो हाथ रख दिया। बेला जरा सा कुनमुनाई, पर दोनों हँसती रहीं।

दुलरिया बोली, वह बगदाद का डाकू कैसा है रे ?'

'हुश्न का डाकू है, इसका।' कहकर उसने दोनों के कपोलों पर हाथ फेर दिया। दुलरिया मुस्करा पड़ी। वे दोनों भीतर से कुनमुनाती रहीं व बाहर से हँसतीं। मैं जो चौंक पड़ा तो गनेश बोला,

'यार रज्जू, तू इतना चौंकता क्यों है ? ऐसी खूबसूरत सालियाँ पाकर जरा दरस-परस से भी गया ?' और उसने उनके कपोलों पर जरा कस के हाथ फेर दिया। मैं जल गया। वह बोला,

'देख रज्जू, तू इतना जलेगा तो मैं और छेड़ूँगा।' और दोनों के सिर के बीच अपना सिर डाल दिया। आगे जाने क्या करता। दुलरिया बोली,

'अच्छा बेला को छोड़ दे गनेश, और जा फिल्म देखने चलना होगा तो तुझे बता देंगे।

'रम्मी को तो न छोड़ूँ ना ?'

कहकर हँसता हुआ वह रम्मी के गाल मसक कर चला गया। रम्मी हँसती रही। वह चला गया तो मेरी ओर देखकर बोली,

'क्यों जल गया न ? यही तो तेरा संकट है। जरा सा किसी का मजाक बर्दाश्त कहीं कर सकता।'

'और अपने कितना रसीला मजाक करता है।' दुलरिया ने जोड़ा। मैं मात खा गया। बेला चकित रह गई।

उस शाम को हम पिक्चर तो नहीं गये पर जब बेला मेरे साथ लौट रही थी शाम को तांगे, में तो बोली,

'मुझे जीजाजी की आदतें अच्छी नहीं लगतीं।'

'क्यों ?' मैंने पूछा।

'घूर-घूर के ताकते हैं।'

'क्या ?'

'सब कुछ।' कहकर वह मुस्कराई। आगे बढ़ी,

'अगर कभी आँचल भूल से खिसक जाय तो उनकी नजर सीने पर घूरती मिलेगी।'

'तो इतने से क्या बिगड़ जाता है तेरा ?' मैंने चुटकी ली।

'बिगड़ तो नहीं जाता। पर बिगड़ने का रास्ता साफ हो जाता है।' बेला ने बात तो समझदारी की की। वह कहती गई,

'आज कितनी बेतकल्लुफी से उन्होंने मेरा व दीदी का कपोल मसल दिया। मुझे बहुत बुरा लगा।'

'तो तूने मना भी तो नहीं किया ?'

'क्या करती ? संकोच मुँह बन्द कर देता है। फिर रोकने के लिए तीन-तीन तो थे ही। किसी से कुछ भी न बन पड़ा।'

'मैंने समझा तुझे अच्छा लगता है तो मैं क्यों रोकूँ ?' मैंने छोड़ा।

'धत्, जब आप चौंक पड़े तो लगा वे झुककर हमारे कपोल चूम लेंगे।'
रुककर बोली,

'और तुर्रा यह है कि दुलारी जीजी हँसती रहती हैं, मना भी नहीं करतीं।'

मैं चुप रहा। वही कुछ देर मौन के बाद बोली,

'मुझे पता चला है कि आप व दीदी के बीच मनमुटाव की जड़ में यही महाशय हैं।'

मैं दंग रह गया। यह बेला क्या बोलती है? उसे इतनी सारी बातें कैसे मालूम हुईं? मैंने चट से पूछ ही तो दिया,

'तुझे यह सब कैसे मालूम?'

'रम्मी दीदी बता रही थीं।'

फिर, 'उनको भी यह बहुत छेड़ते हैं, दीदी का वहाँ रहना ठीक नहीं। आप उनको मेरे घर क्यों नहीं लाते?'

'वह किसी की सुनती हैं? मैं कहके क्या करूँगा?'

'वाह, आपकी एक बात पर तो वे जान तक दे सकती हैं।'

मैं मुस्कराया, 'हाँ रे जान दे सकती है, पर छोटी-छोटी बातें इन्कार कर जाती है। उस रात का याद नहीं, वह जान-बूझकर रह गई वहाँ।'

'सो तो ठीक है, पर आप एक बार कह कर देखिए ना?'

'तू ही क्यों नहीं कहती?'

'अच्छा! मैं पूछ देखूँगी।'

## ३४

आधी रात बीत चुकी थी। फागुन-चैत की मस्त वासन्ती बयार का झोंका रह-रहकर आता था। मैं रायजी के छत पर बिस्तर डाल पड़ा-पड़ा टालस्टाय की 'स्मृतियाँ' पढ़ रहा था, विशेषकर वह भाग 'हम क्या करें ?'

आधी रात के बाद ठण्डक बढ़ जाया करती थी। हवा में सिहरन पैदा हो जाती थी इसलिए परिवार का और कोई व्यक्ति अभी छत पर नहीं सोता था।

रात चाँदनी थी। आकाश से अमृत की वर्षा होती थी। धरती दूध में नहाई पड़ी थी। रह-रह कर पास के नीम की डालियाँ व पत्तियाँ हवा के झोंकों से लहरा उठतीं। अभी-अभी नई-नई तो पत्तियाँ थीं, पुरानी गिर चुकी थीं। रात साँय-साँय बोलती थीं।

तभी मुझे लगा कोई सीढ़ियों पर चढ़ रहा है। यह सीढ़ी बिल्कुल घर के बाहर गली से छत पर आती थी। घर के भीतर से कोई सीढ़ी ऊपर आने की न थी। एक बार मैंने ध्यान से देखा कुछ भी नहीं दिखाई दिया। फिर पढ़ने में तल्लीन हो गया।

फिर लगा जैसे कोई सीढ़ियों से उतर रहा है। मैं ताककर चुप लगा गया। जरा देर रुककर मुझे फिर लगा जैसे किसी के कदम सीढ़ियों पर चढ़ते-ठमकते और फिर चढ़ते हों।

मैं उठकर चुपचाप सीढ़ी के द्वार पर गया तो देखकर दंग रह गया। एक जवान लड़की वहाँ खड़ी थी।

मैंने चकित भाव से पूछा, 'तू कौन ?'

'रेशमा।'

'इतनी रात गये ?'

'हाँ ।'

'क्या बात है ?'

'फिर बताऊँगी, ऊपर कोई है ?'

'नहीं ।'

'फिर ऊपर चल ।'

हम दोनों ऊपर आये । उस चाँदनी के प्रकाश में उसके बिखरे केश, अस्त-व्यस्त कपड़े, खून के दाग देखकर मैं हैरान रह गया । उसने अपना अटैची केश रखा व बोली,

'तू अभी मुझे लखनऊ पहुँचा दे ।'

'बात क्या है रम्मी ?'

जरा कड़ाई से बोली, 'बात फिर पूछना, जो कहती हूँ चुपचाप कर ।'

उसकी बात में कुछ ऐसा जोर था कि और बातें करने का साहस मुझमें न रहा । मैंने पाकेट टटोला तो पाँच सौ रुपये निकले । मैं पिस्तौल व ये रुपये बराबर साथ रखता था । मेरी जिन्दगी का क्या ठिकाना । कब कैसी घड़ी आ जाय ।

उसने कहा, 'तू मुँह फेर ले मैं साड़ी बदल लूँ ।'

मैंने वैसा ही किया, उसने साड़ी व ब्लाउज बदल दिया । फिर पूछी, 'इनको क्या करूँ ?'

'मेरे हवाले कर दे ।'

मैंने उसे झोले में डाल लिया । एक बार सोचा कि नीचे जाकर अपना सूटकेश लाऊँ पर सबके जाग पड़ने के भय से ऐसा न कर सका ।

हम दोनों वहाँ से पैदल चलकर रेलवे स्टेशन आये । पता चला दो बजे रात वाली गाड़ी छूट चुकी है और दूसरी ट्रेन दिन के आठ बजे है । इन्तजार करना खतरे से खाली न था इसलिए हमने टैक्सी स्टैण्ड से टैक्सी ली व चल पड़े अगले स्टेशन, छूटी हुई ट्रेन पकड़ने ।

रास्ते में हमनें कोई बात न की । तीन स्टेशन पार करने पर ट्रेन से पहले हम चौथे स्टेशन पर पहुँचे । और यात्रियों की निगाह बचाने के लिए मैंने फर्स्ट क्लास का टिकट लिया । टिकट बाबू घूरकर ताका । अन्धेरे में गार्ड

को बुलाकर फर्स्ट क्लास का डब्बा खुलवाया व हम दोनों दाखिल हुए। कोई कुछ बोला नहीं।

उस दूध-सी चाँदनी में ट्रेन छक-छक कर चलती रही। हमारी छातियाँ भी धुक-धुक कर रही थीं। मैं जानता था 'शाक' कम होने पर रम्मी खुद ही सब कुछ बतायगी इसलिए मैंने कुछ भी न पूछा।

थोड़ी देर में ही वह इतनी थकी-सी लगी कि मालूम हुआ धम से गिर जायगी, यदि सहारा न दिया गया।

हम दोनों एक कुपे में थे। उसकी यह हालत देखकर मैंने कुपे को एकदम अन्दर से बन्द कर दिया, खिड़कियाँ भी चढ़ा दीं व उसे अपनी गोद में लिटा लिया।

गोद में सिर रखते ही रम्मी फूट-फूटकर रोने लगी। मैंने बहुत ढाँढ़स बँधाने की चेष्टा की पर वह और भी सिसकने लगी। मैं उसके केश सहलाता रहा, उसकी पीठ थपथपाता रहा और वह सिसक-सिसक कर रोती रही। रह-रह कर केवल इतना ही कहती,

'सब कुछ लुट गया रज्जू, सब कुछ लुट गया।'

कभी कहती, 'हाय मैं लुट गई, अब कौन सा मुँह दिखाऊँगी।'

मैं समझता था कोई भयानक घटना हुई है, पर क्या? भांप नहीं पाता था। चोरी? डाका? बदमाशी? क्या हुई?

रम्मी अकेले क्यों आई?

वे खून के दाग कैसे थे?

इस पहेली के बूझने में मैं ऊब-चूब होता रहा। गोते खाता रहा। पर रम्मी को कुछ भी कहने के लिए मजबूर नहीं किया। जोर नहीं डाला।

आठ बजे गाड़ी बनारस पहुँची। हम वेटिंग रूम में जाकर नहा-धो कपड़े बदल ताजे हो गये। ब्रेकफास्ट लिए फिर दस बजे अमृतसर मेल में बैठ लखनऊ के लिए रवाना हो गये। सौभाग्य से इस ट्रेन में भी हमको 'कुपे' मिल गया।

अब दिन की जो ताजी हवा लगी तो रात का गीलापन घटा। रम्मी थोड़ा-बहुत अपने ऊपर काबू पा रही थी।

क्षितिज पर आँखें गड़ाकर बोली,

'तेरा प्यार लुट गया रज्जू ।'

'मेरा प्यार ?' चकित हो मैंने पूछा ।

'किसकी मजाल पड़ी रे ?' पिस्तौल पर मेरा हाथ अनायास चला गया।

'गनेश !'

मैं तड़पा। बोला, 'तो यूँ भाग आने की क्या जल्दी थी रे ? काम पूरा करता आता न ? तूने वहीं क्यों नहीं बताया ?' मैंने दाँत पीसा ।

वह फफककर रो पड़ी । बोली,

'तेरे काम पूरे करने से मेरा जो बिगड़ चुका था लौट आता ।'

मुझे रम्मी पर गुस्सा आने लगा। मैंने तेज होकर कहा, 'ज्ञान न बघार रम्मी । तेरा न लौटता तो उसको अपने किए का मजा जो मिल जाता ।'

'सो मैं पूरा कर आई हूँ तू चिन्ता न कर ।'

'हे भगवान, तो यह रम्मी गनेश का खून कर आई है ? उसी के दाग थे इसकी साड़ी पर ?'

मैं दंग रह गया। रम्मी के लिए यह असम्भव न था। उसने शादी में ही गनेश को छक्का मारा था मुट्ठी खोलने में ।

पर गनेश रम्मी का शील-हरण कैसे कर सका ?

रम्मी कोई आसान नहीं ?

पर क्या पता ? लड़की ही तो ठहरी ।

ट्रेन चलती रही और रो-रोकर सिसक-सिसक कर वह अपनी दास्तान सुनाती ? ा टूटे-फूटे बोल में, संकेत में । मैं चुपचाप सुनता रहा व उसे दुलार से ढांढ़स "धाता र ।

रम्मी ने जो कुछ कहा, कुछ इस प्रकार था—

कल रात को गनेश 'बगदाद का डाकू' देखने अकेले गया 'सेकेण्ड शो' में । रात को लगभग बारह बजे लौटा । तब तक खा-पीकर सब सो चुके थे । तू तो जानता है मैं ऊपर 'गेस्टरूम' में अकेले सोया करती थी । वह दुलरिया के कमरे में सोता था जो नीचे है ।

ऊपर केवल दो ही तो कमरे हैं, एक बैठका व दूसरा गेस्टरूम । दोनों के बीच एक दरवाजा है जो बराबर बन्द रहता है । लगता है उसकी सिटकनी

किसी ने शाम से ही उतार रखी थी जो मुझे मालूम न थी। मैं मुख्य दरवाजा भीतर से बन्द कर सोई थी।

आधी रात को एकाएक मुझे मालूम हुआ कि कोई मुझे चुम्बनों से ढेर कर रहा है। मैं उकताकर ऊब्र-चूब में जो आँख खोली तो जो कुछ देखा सन्न रह गई।

मुझे आँख खोलते देख वह हँसा। मैंने उठने की कोशिश की तो उसने धर-दबोचा व दबाए रखा।

जब हाथ से उसे ढकेलने की कोशिश की तब मालूम हुआ कि हमारे हाथ व दोनों पाँव चारपाई से बँधे हैं। अब तो मैं एकदम से बेबस हो गई, लाचार।

चिल्लाने की चेष्टा की तो उसने झट से मुँह पर हाथ रख बन्द कर दिया मुँह और पास ही तिपाई पर रखा छुरा हाथ में ले मेरी छाती पर तान दिया। जब मुँह भी बँध गया तो चीखने-चिल्लाने की भी गुंजाइश न रह गई। मैंने गनेश से बहुत आरज़ू-मिन्नत की कि वह छोड़ दे। पर वह कब माननेवाला था। बोला,

'तू तीन साल से मुझे तरसा रही है। मेरे प्रेम का ढिंढोरा भी तुमने व रज्जू ने पीट दिया और मुझे माल हाथ भी न लगा। यह कैसे होगा? मैं व्यापारी हूँ कीमत देंगे तो माल लेंगे।'

अब तो मैं हर कोने से मजबूर हो गई। छटपटाने के सिवा मेरे पास कोई चारा न रह गया। मैं छटपटाती रही, वह मेरा तन रौंदता रहा। जब सब कुछ लुट गया तो मेरे नयन ढरने लगे। ढरते रहे ढरते रहे। आँसू बहते रहे।

काम हो जाने पर निरापद समझ उसने मेरे हाथ-पांव खोल दिए व मुंह भी। और लगा प्यार से समझाने,

'देख रेशमा, इसमें क्या घटता बढ़ता है? रज्जू इतने मजे मारता है तो कुछ भी नहीं जरा सा मैंने भी गंगा में एक डुबकी मार ली तो क्या बिगड़ गया।'

मैंने सिसकते हुए कहा,'मेरा तो सब कुछ तूने लूट लिया गनेश। अब बचा क्या?'

वह समझाते हुए बोला, 'नहीं रानी, ऐसी बात नहीं। दुलरिया की भाभी को लो। रमनथवा ने थोड़ा रस मार लिया उनका क्या बिगड़ गया। भाभी भइया के पास मजे में हैं। दुलरिया को ही लो। मुझे लगता है रमनथवा ने जरूर डुबकी मारी है, पर मेरा इससे क्या घट गया है ? अरे यह तो दुनियां ही रस लेने, रस देने की है। इतना नहीं रोते रानी। धीरज तो धरो। भगवान ने धरती पर इन्सान को इतने मजे दिए और वह अभागा बांध बना-बना कर, घेर-घेर कर सब किरकिरा कर देता है। अरे जिसका जहां मन रमे, मजे करने की छूट हो।'

मैं उसकी ज्ञान-गाथा सुनती रही व आंसू ढारती रही। एकाएक मेरे मन में एक भयानक निश्चय जाग पड़ा व सिर उठाने लगा। बदला ! इन्तकाम की भावना जाग पड़ी। और मैं अपने निश्चय के अनुसार आगे बढ़ी।

मैंने आंचल से आंसू पोंछ दिए व क्षीण मुस्कराकर बोली,

'तुम्हारी बात में तथ्य तो बहुत कुछ लगता है गनेश, मैंने कभी इस दृष्टि से देखा नहीं था। बस रज्जू से चिपकी रही।'

'मैं झूठ कोई थोड़े कहता हूं' - बीयर ढालते हुए बोला, 'इस रज्जू को ही लो, उसके लिए एक तुम्हीं थोड़े ही हो। अरी तुम तो लखनऊ चली गई तो वह जाने कहां से बेला को पकड़ लाया। उसे तो कच्चा माल चाहिए। दरस-परस पुन्नी व दुलरिया को भी किया है। वह तेरे लिए कोई बैठा थोड़े रहता है।'

मैं भीतर ही भीतर जल गई पर बाहर से मुस्कराकर बोली, 'इसी जलन के मारे तो मैं वहां ठहरी नहीं। उन दोनों की रास-लीला में कौन खलल डाले।'

'तुमने बहुत अच्छा किया, मगर मुझे इतने दिन से क्यों तरसाती रही ? कजरी-तीज के मेले से भाग आई।'

'क्या करती। तुमने राह चलते छेड़ा-छाड़ा तो मेरा मन होश खोने लगा। सोची थी रात को तुम्हारे व दुलरिया के साथ कैम्प में रहेंगे तो मजा आ जायगा पर यह रज्जू एकदम से गले पड़ गया। लाचार घर जाना पड़ा।'

'हाय हाय मेरी रानी। तड़प के रह गई मधु के छींटे के लिए।' कहते-कहते उसने मेरी ठोढ़ी ऊपर की व बोला, 'आज मेरी रानी की मुरादें बर आईं, इसी बात पर एक गिलास और भर दे जालिम।'

'मैंने उसका गिलास बीयर से फिर भरा। वह रसभरी बातें बकता रहा, पीता रहा, जलता रहा। मैं मुस्कराती रही, जलती रही व ठीक मौके को ताकती रही।

'पीते-पीते जब वह निढाल हो गया तो मैंने वह किया जिसे मैं सोच रखी थी।

'क्या किया रम्मी?' मैं आहिस्ते से बोला।

रम्मी की आंखों से चिनगारियां उड़ने लगीं व ट्रेन के बाहर भागते वृक्षों पर दृष्टि गड़ाकर बोली जैसे किसी ने जादू से उसकी दृष्टि अदृष्ट पर बांध रखी हो।

'मैंने गनेश के हाथ-पांव रस्सी से चारपाई में बांधा। उसी का छूरा हाथ में लिया व साहस करके उसका पुरुष-चिन्ह....।'

कहते-कहते वह निढाल होकर मेरी गोद में लुढ़क गई। आवाज गले में अटक गई। मैं घबराकर उसकी पीठ सहलाता रहा। उसे धीरज देने की चेष्टा करता रहा।

अब एक नये सिरे से उसके आंसू बह निकले। बह निकले यूं जैसे गंगा की धार फूट पड़ी हो। मेरी जांघ भींग चली। मैंने उसे उठाने की कोशिश की, समेटने की चेष्टा की। पर वह तो मेरी गोद में और भी गड़ गई। सिसकियों के बीच बोलती रही,

'सब कुछ लुट गया रज्जू, सब कुछ लुट गया।'

'नहीं रम्मी, नहीं। यह तेरी अग्नि परीक्षा थी। तू उसमें पवित्र निकली।'

'रज्जू!' पुकारकर वह नये सिरे से मेरे कंधे पर सिर रखकर रो पड़ी। खूब रोई। फूट-फूट कर रोई। मेरे गाल भी आंसुओं से तर होते रहें। हमारी गंगा-जमना बहती रहीं। सरस्वती भीतर तरसती रही। और ट्रेन थी जो भागती रही, भागती रही।

मैंने सोचा गंगा की इस बाढ़ को भला कौन रोके। खुद ही थमेगा। मैंने मौन रहना ही ठीक समझा।

हमारे आंसू नयनों से ढुलकते रहे। फिर धीरे-धीरे जाने कब रुके। आंसू थमे खेतों से ठंडी हवा का झोंका आया। वे सूख चले। हमारे गालों पर एक लीक बच गई। फिर भी हम मौन रहे।

फिर मैं बोला नहीं, छेड़ा नहीं, कौन जाने कहीं बांध टूट जाय व सब कुछ बाढ़ में नये सिरे से बह जाय।

अयोध्या स्टेशन आया। बेयरे ने आकर सलाम दिया। रम्मी संभल कर मेरे कंधे से सिर हटा सीधे बैठी। मैंने कॉफी लाने का आर्डर दिया।

रम्मी बहुत ही धीरे से बोली,

'बेचारी सीता को सारी जिन्दगी जंगल में काटनी पड़ी, रावण के कारण।'

'और बेचारे राम का सूना हृदय रेगिस्तान की तरह तपता रहा, अशान्त रहा। 'सीते सीते' पुकारता रहा।'

जाने उसके मन में क्या-क्या चलता रहा। मैं भांप न सका। मेरे मन में केवल एक ही बात थी 'रम्मी की रक्षा होनी चाहिए'। सीता वनवास हो सकती है पर रम्मी वनवास नहीं। कभी नहीं।

बेयरा कॉफी दे गया। मैंने कॉफी बनाई। उसे एक कप देकर स्वयं भी लिया। होठों से लगाते हुए बोली,

'काश, तुम अपने हाथों इसी प्याले में जहर दे देते रज्जू। मेरे भाग्य खुल जाते। मैं सदा-सदा के लिए सुख की नींद सो जाती।'

मैं तड़प उठा। चौंक सा गया। हाथ की कॉफी हाथ ही में रह गई। कितने भयानक थे वे विचार। फिर भी बोला नहीं। छेड़ा नही।

वही बोलती गई,

'हां रज्जू, वनवास मुझे पहाड़ जैसा लगता है। मैं उसपर चढ़ न सकूंगी। कम से कम अकेले नहीं।'

'पर कौन तुम्हें वनवास दे रहा है रम्मी।' 'मैंने स्वयं अपने को वनवास दे दिया है। वह इतनी शान्ति व दृढ़ता के साथ बोल गई जैसे यह कोई बड़ी बात ही न हो।

'वनवास ? कैसा वनवास ?' मैंने पूछा।

वह कुछ न बोली, चुपचाप कॉफी पीती रही। मैं मारे घबराहट के दो-तीन कप कॉफी पी गया।

बेयरा पाट लेने आया तो मैंने और कॉफी का आर्डर दिया। रम्मी ने शान्त व दृढ़ आवाज में मना कर दिया। बेयरा अवाक् हो हमारा मुंह ताकने लगा, फिर चला गया।

हम दोनों बर्थ के दो सिरों पर बैठे-बैठे खिड़की के बाहर झांकते रहे। क्षितिज पर दृष्टि गड़ाए रहे। मन में समुद्र की अपार लहरें टूटती रहीं।

बड़े मन्थन के बाद मैंने कहा,

'रम्मी।'

'ऊं।'

'रम्मी ?'

'हूं।'

'जरा मेरी ओर देख तो।'

वह मेरी ओर मुड़ी। मैंने कहा,

'मैं तुझसे शादी करूँगा।'

'शादी।'

उसकी आंखें झर पड़ीं। वह व्यग्र सी हो उठी व घबराहट में बोली,

'तुझे यह कहने का साहस कैसे हुआ रे ?'

'क्यों ?'

'क्यों ? लाज नहीं आती ऐसी बात मुंह से निकालते हुए ? ···· फिर जो बोला तो मैं तेरी जुबान खींच लूंगी····हां····रावण।'

वह क्रोध से कांपने लगी। मैंने हताश हो सिर झुका लिया। जब शान्त हुई तो मेरा उतरा मुंह देखकर मेरे पास आई व मेरे गले में पुराने दिनों की तरह बांहें डालकर बोली,

'नहीं मेरे भाई, तू उदास न हो। ये बासी फूल अब किसी पर न चढ़ेंगे। तू मेरी बात समझता क्यों नहीं रज्जू। तू पुरुष है ना ? सदा व्यवहार की बात सोचता है।'

इतने पर भी जब मैंने सिर नहीं उठाया तो वह बड़े दुलार से बोलती गई,

'देख रज्जू, तू मुझसे छोटा है, तुझे मैंने सदा छोटे भाई की तरह माना है ना ? हम दुनिया वालों की तरह आशिक माशूक कब रहे ? ···· माना कभी-कभी हम दोनों ने भाई-बहन की सीमाओं को पार किया है, पर क्या हम इतने से ही शादी कर लें ? छिः छिः।'

अंत में मैं उकताकर बोला,

'देख रम्मी, मेरी समझ में कुछ भी नहीं आता, हम दोनों क्या हैं, हमारा

सम्बन्ध क्या है। हम भाई-बहिन हैं भी व नहीं भी हैं। हम प्रेमी-प्रेमिका नहीं हैं पर हैं भी। फिर हम क्या हैं, हमारा परिचय क्या है ?'

'यही तो समझ में नहीं आता रे।' वह खोई सी बोली।

'तेरे पास होने से ही मेरे तन-मन में जो यह मिठास घुल जाती है वह क्या है, तेरे पास होने से ये तपते प्राण जो बर्फ की ठंडक महसूस करते हैं वह क्या है ? तू ही बता ना।'

'मैं क्या जानूं ?'

'हम मुसलमान होते तो हमारी शादी बिल्कुल ठीक समझी जाती। बुआ की लड़की से शादी ठीक और बड़ी उम्र की लड़की भी ठीक .....।'

'और चार शादियां भी ठीक।' वह बोल गई।

हम मुस्करा पड़े, युगों बाद।

'और लखनऊ में बसने वाले तो आधे मुसलमान यूं ही होते हैं।'

हम खुलकर मुस्कराए।

सरसों के पीले फूलों ने खेतों को वासंती चोला पहना रखा था। उस पीली साड़ी की लम्बाई का कोई अन्त न था। जहां तक ट्रेन जाती दोनों ओर पीली चुनरी लहराती नजर आती। हम दोनों चुपचाप कुछ देर भागते खेतों की लहराती पीली चुनरी देखते रहे। फिर मैंने छेड़ा,

'यह देखती है पीली चुनरी, रम्मी।'

इस बार वह बिगड़ी नहीं। मेरे जान में जान आई। वह मुस्कराई, धीमे से बोली,

'देखती हूं।'

'क्या कहती है ?'

'कि यू ही दूर-दूर लहराती रहूंगी। कभी तेरे पर न चढ़ूंगी, पर बराबर ललचाती रहूंगी।'

'छिः।'

वह मुस्कराई। मैं भी मुस्कराया।

बाराबंकी स्टेशन आ गया था। थोड़ी दूर में लखनऊ आना था।

अब ?

अब क्या होगा ?

क्या !

दोनों के मन में एक ही बात गूंज रही थी पर कोई कुछ बोला नहीं। यूं मौन साधे, इधर-उधर ताकने लगे जैसे हम दोनों के बीच हमारे प्यार की लाश पड़ी हो। कौन बोले? क्या कहे? कैसे कहे?

छन भर को ऐसा लगा जैसे हमारा यही आखिरी मिलन हो।

और कौन जाने, हो भी।

एक लम्बे मौन को उर्सा ने तोड़ा। बोली,

'देख रज्जू, तू मुझे लखनऊ स्टेशन पर उतार कर तांगे में चढ़ा देना। .... .... और बस।'

झर-झर आंसू नये सिरे से उसके कपोलों पर बह चले। आंखें लाल हो आईं। एक अजीब तनाव चेहरे में भरकर हाथ उठा तर्जनी मेरी ओर करके बोली,

'खबरदार•जो मेरे साथ आया.... खबरदार जो मेरा पीछा किया.... हां।'

'भला ऐसा कैसे हो सकता है रम्मी? मैं तुझे अकेले छोड़ दूं?'

'हां हां, तू अकेले छोड़ दे। मेरा कौन है रे? इस दुनियाँ में कौन किसका है?....सभी अकेले आए हैं, अकेले चलेंगे....समझा....अकेले....समझा....?.... बोल ना, समझा कि नहीं समझा?....।'

रम्मी लगभग हिस्टिरिक फिप्स में आकर चिल्ला पड़ी व मेरी गोद में ढेर हो गई। मेरी आँखों से भी आंसू झरने लगे। मैं उसकी पीठ सहलाता रहा। सान्त्वना देता रहा। पर वह तो और भी फूट-फूट कर नए सिरे से रो पड़ी।

मैंने सोचा झरने दो गंगा-जमना को। समुद्र में जाकर शान्त हो जायगी।

पर यदि समुद्र ही गंगा-जमना से दूर हो जाय तो? बेचारी गंगा जिंदगी भर दौड़ती, बहती रहेगी। कभी गुस्से में बाढ़ आ जाय भी कभी आंसू झर के शान्त मौन तत्वांगी बन जायगी।

आखिर लखनऊ स्टेशन आया। हम मौन व दृढ़ हो गए। कुली आया। सामान सम्भाला व नीचे उतारा।

कम्पार्टमेण्ट में से उतरने के पहले खड़ी होकर उसने मेरे माथे को चूमा व मुंह फेरकर उतर गई। वह आगे-आगे, मैं पीछे-पीछे स्टेशन से बाहर निकले। तांगे वालों के शोर ने हमें सामने की समस्या पर सोचने में मजबूर किया। एक भलेमानस बूढ़े मियां के तांगे पर मैंने रम्मी को बिठा दिया।

जाते-जाते बोली,

'देख रज्जू तू शादी कर लेना।'

'शादी ? किसके साथ ?'

'बेला के साथ।'

'बेला ?'

इतने में तांगेवाले ने पूछा,

'कहाँ चलें बीबीजी ?'

प्रश्न रम्मी की आँखों में चमका, मेरी आंखों में चमका।

'कहाँ चलना होगा बीबीजी ?' बूढ़े ने दुहराया।

जिन्दगी के मोड़ पर बूढ़ी नियति ने सवाल दुहराया 'कहाँ ?'

'कहाँ ? कहाँ रम्मी जायगी ? क्या पता।

वही बोली, 'अभी बताऊंगी बावा।'

इस मिठास में बड़े मियां की उतावली समाप्त हो गई। बोले,

'अच्छा बिटिया रानी !।

'रम्मी कहाँ जायगी अकेले ?'

यही प्रश्न बार-बार मेरे भीतर गूंज रहा था। इतने पर रम्मी ने तांगे पर बैठे-बैठे ही लपककर मेरे दोनों हाथ अपने हाथ में लिया। मैं पास चला गया। मेरी हथेलियाँ मींचती-दबाती हुई बोली,

'भूल-चूक माफ करना रज्जू ....और जिन्दगी से गुस्सा न करना ........।'

'अल्विदा ! अल्विदा !'

'अल्विदा रम्मी ....खुदा हाफिज !'

उसने मेरे हाथ छोड़ दिए। मैं लम्बे डग भरता बिना पीछे ताके स्टेशन की भारी बिल्डिग की ओर चल पड़ा। सीढ़ियों पर चढ़ के जो मुड़ा तो रम्मी का तांगा गोल चक्कर पार कर हैवेट रोड पर बढ़ता जा रहा था।

वह मेरी ओर ताक रही थी। मुझे भी ताकता देख हाथ हिलाई। मैंने भी हाथ हिलाया।

हाथ हिलाया व हिला कर
अपने प्यार से विदा लिया !
अपनी जिन्दगी से विदा लिया !!
अपने से ही विदा ले लिया !!!

# उपसंहार

बारह बरस। पूरे बारह।

आज बारह बरस हो गये रम्मी से विदा लिए लखनऊ स्टेशन पर। तब से एक बगुले की तरह डोलता फिरता हूँ, एक बवण्डर की तरह चक्कर काटता हूं। मैं एक पतंग हो गया हूं जिसकी डोर कट गयी है।

भीतर की लगी आग से जलता हूं, बराबर जलता रहता हूं। दिल की लपटें आँखों से झांका करती हैं।

यह मेरे प्यार की एक चिता है जो एक बार जली सो जलती, धधकती ही चली जाती है। बुझने का नाम नही लेती। महासमर आया, देश पर बम्ब गिरे, जापानी आए, बंगाल में महाकाल पड़ा, गांधीजी ने 'भारत छोड़ो' का नारा अंग्रेजों के लिए लगाया। धरती के गोले में ही आग लग गई। धांय-धाँय सात बरस तक जलता रहा, जलता रहा मेरे दिल की तरह, मेरे प्यार की चिता की तरह।

हिरोशिमा पर अणु बम फटा। हिरोशिमा मटियामेट हो गया। उजड़ गया हमारे दिल की दुनिया की तरह। जर्मनी, जापान दोनों जेर हुए। धरती पर शान्ति छायी। दुनियाँ में लगी आग बुझी, पर मेरे प्यार की चिता? न बुझी! न बुझी!

आजादी आई। शंख बजे, घन्टे घड़ियाल बजे। लाखों घर उजड़े। देश दो भागों में बट गया। भारत में नये सिरे से नये किस्म की आग लगी। हिन्दू मुसलमान एक दूसरे की जान व माल के दुश्मन हो गए, खून के प्यासे हो गए। लाखों घर लुटे, फुके, इस्मतें लुटीं। फटी-फटी आंखें लिए लाखों 'रम्मी' कलकत्ते व दिल्ली में जमा होने लगीं।

उनकी रक्षा के लिए महात्मा गाँधी कूद पड़े व जलकर स्वाहा हो गए।

मैंने अपनी 'रम्मी' की फटी आँखें जब सहस्रों नयनों में जलते-भुनते देखा तो आंख मूंद कर कूद पड़ा। कूद पड़ा, शरणार्थियों के पुनर्निवास कार्य में।

मैंने एक नये सिरे से अपने को झोंक दिया इस काम में। नई ताकत जागी, नया जोश आया जैसे हनुमान को आया था समुद्र पार करने के लिए, जैसे राम को आया था सीता की रक्षा के लिए राक्षस रावण के हाथ से।

मैं लगभग बीस घण्टे रोज खटता। पुनर्निवास में हजारों काम थे। सभी टेढ़े थे। ये सर्वहारा लोग दिमाग से कुछ भ्रमित थे। उन्हें समझाना बड़ा मुश्किल काम था। बहुधा फटी-फटी आँखों से ताका करते। बहुत सहानुभूति प्रकट करने पर फूट-फूट कर रो पड़ते और बस।

प्रधानमन्त्री ने कितनी ही बार हठ किया मैं 'पुनर्निवास विभाग' का मन्त्री बन जाऊँ। पर फूल-माला, नृत्य, जलसे-जुलूस में भला इन लुटे हुए लोगों को बसाने का काम कहाँ तक हो सकेगा? इसीलिए मैंने बराबर इन्कार कर दिया। और 'चीफ एक्जेक्यूटिव अफसर' होना ही पसन्द किया।

पुन्नी की शादी कलकत्ते के एक बड़े सेठ से हो गई है। उसने मेरे काम में रुपयों-पैसों से बड़ी मदद की। कभी-कभी कलकत्ते में उससे मुलाकात हो जाती है। सेठ मजाक किये बिना नहीं रहता।

इधर गाँव से खबरें आईं गंगा ने राक्षस का रूप ले लिया है, सुरसा जैसा उसका मुँह फैलने लगा है। ढाही पड़ी है।

पिताजी तो रहे नहीं। माँ के खत आते रहते हैं। उनकी बहू उतारने की लालसा तड़पती ही रह गई।

गाँव गंगा में घिर गया। गाँव के सारे खेत गंगा में गये। महुए का बाग, अमरूद का बाग, सभी गये। हमारा मकान भी गया। लीची के पेड़ गये, दुलरिया का घर गया, वह नीम का पेड़ गया जहाँ झूला डालकर बड़ी पेंगें मारते थे। वह वृन्दावन गया जहाँ हम रास रचाते थे। सोनिया का अंवा गया, गाँव के बाहरवाला शिवजी का मन्दिर गया, पोखरा गया जहाँ कंगन उतारे जाते थे।

चला गया, सब कुछ गया, सब कुछ गया।

गाँव का बच्चा-बच्चा भिखारी हो गया। पार गाँववाले बसने न दिए। मैंने डिप्टी कमिश्नर को एक पत्र दिया तो बड़ी मुश्किल से एक ऊसर जमीन दस एकड़ मिल गई सारे गांव के बसने के लिए।

गाँव ढहा, इज्जत लुटी, हवेली में रहनेवाली बहुएँ तम्बू-कनाट व टिन की ओट में रहने लगीं। दूसरे गाँववालों ने चलना-फिरना, निकलना तक दूभर कर दिया। कैसा साग खोंटना? कैसी लकड़ी चुनना? कदम-कदम पर रोक, कदम-कदम पर गालियों की बौछार।

हमारे गाँव के लोग अपने ही देश में पराये हो गये। शरणार्थी हो गये। उससे भी बदतर हो गये क्योंकि उन्हें कोई शरणार्थी मानता नहीं। वे किसी विकास योजना में आते नहीं। फल?

देश आगे बढ़ेगा वे तिल-तिल कर नष्ट होंगे। क्या खायेंगे? क्या पियेंगे? क्या जोतेंगे-बोयेंगे? बालू फाँकना व गंगा-जल पीकर लोक-परलोक बनाना, यही शेष रह गया है।

लड़के-लड़कियों की शादी ढाही के गाँव में होगी नहीं, व्यभिचार फैलेगा। यूँ ही तिल-तिल कर गाँव नष्ट हो जायगा। डूब जायगा गंगा में।

श्रीकृष्ण की द्वारका समुद्र में डूब गई थी, मेरा गोकुल-वृन्दावन गंगा में समा गया। मेरे व रम्मी के प्यार की दुनिया डूब गई।

मैं छाती पर पत्थर रखकर सब कुछ देखा सुना किया। अब भला गाँव क्या जाता।

विभाग के काम से पिछली बार दिल्ली गया था तो कनाट प्लेस में बेला मिल गई। रायजी तो चल बसे थे, जानकर दुःख हुआ। बेला यू० पी० में उप-मन्त्रिणी हो गई है।

बहुत दिनों बाद मुलाकात हुई इसलिए हम 'वोग' में जाकर कॉफी पिये व ढेर-सी बातें करते रहे :

बातों के सिलसिले में बोली,

'कभी रम्मी जीजी से मुलाकात हुई?'

लगा जैसे उसने सूखते घाव की ऊपरी पपड़ी को ठेस मार दिया। मैं जरा रुककर, संभलकर बोला,

'नहीं।'

'मुझसे साल भर पहले यहीं मुलाकात हुई थी।'

मैंने उसकी ओर ताका। दिल में हजारों लहरें उठकर किनारे से सिर टकराकर चूर-चूर होने लगी। मन में सोचा,

हे भगवान, अभी जिन्दा है। पर जिन्दा तो होगी ही। उसने क्या कहा था, 'देख रज्जू, मैं चाहे जहाँ भी रहूँ, मरूँगी तो तुझे खबर जरूर करवा दूँगी। मेरी चिता में तू ही आग लगाना अपने हाथ से। और किसी को यह तन मैं छूने नहीं दूँगी।

मेरे मौन तथा चेहरे के बदलते भावों को देखकर वह जरा स्तम्भित हो गई, मौन साध गई। जब मैं संभलकर मुस्कराया तो बोली,

'जीजी विनोबाजी के साथ पदयात्रा करती व भूदान में सहायता करती हैं।'

और जाने कितनी बातें कर गई रम्मी के बारे में। केवल वे बातें उसने न कही जिनको जानने के लिए दिल शोर-गुल मचाए हुए था।

अन्त में पूछ ही तो लिया मैंने,

'देखने में कैसी लगती थी?'

'जीजी? बहुत अच्छी। अब थोड़ी दुबली हो गई हैं, पर उनका सोने का रंग ज्यों का त्यों बना है। आँखें और बड़ी-बड़ी हो गई हैं। चेहरे में तेज व पाँव में फुर्ती है। खादी उसके तन पर खूब शोभती है।

मन ने कहा, 'शैलजा। बारह बरस बाद कैसी हो गई होगी शैलजा?'

वह बोलती गई, 'जीजी कहती थीं....।'

'कुछ मेरे बारे में भी कहती थी?' मैंने टोक ही तो दिया बीच में।

'हां, हां! कहती थीं रज्जू मिले तो कहना शादी कर लेगा, रम्मी ने कहा है।'

'शादी कर लेगा! किससे?'

'मुझसे।'

कहते-कहते वह शरमा गई, नई दुलहिन सी और कॉफी के प्याले में ताकने लगी।

'हूं।....और वो किससे करेगी?'

बेला कुछ भी न बोली। कॉफी के प्याले से चुपचाप खेलती रही। तब मैंने पूछा,

'और तेरा दिल क्या कहता है ?'

'मेरा ? .... बस यूं ही .... मैं तो अब बूढ़ी हो गई। ... थोड़े दिन और हैं जिन्दगी के, सो ज्यों-त्यों करके कट ही जायेंगे। कौन इस झमेले में फंसे ?'

इतना कहते-कहते उसके गाल पर पसीने की बूंदें चमक उठीं। उसकी आवाज जैसे उसी के भीतर डूब गई। मैं एकटक उसके चेहरे को ताकता रहा।

अंत में बात का रुख बदलने के लिए मैंने पूछा,

'अब कभी 'आंसू' के गीत न सुनाओगी ?'

'तुम मिलते कहां हो ? और अब वो आवाज कहां रही ?'

'आवाज न सही, तुम तो वही हो।'

'फिर सुननेवाला शायद वो न रहा।'

हम क्षीण मुस्कराए। वह रुककर बोली,

'सच रज्जू भइया, कभी-कभी बड़ा एकाकीपन महसूस होता है। तुम यदाकदा मिलते रहोगे तो शायद जिन्दगी यूं भार न बनी रहेगी।'

मैंने उठते हुए उसकी पीठ पर हाथ का हल्का थप्पा देते हुए कहा,

'मिलते क्यों न रहूंगा री ? जरूर मिलूंगा। तू आंसू के गीत तो सुनाने का वादा कर। .... वही 'एक अकेला दीपक मेरा।' ...।'

'किया वादा। सुनाऊंगी।'

कहते-कहते उसने जो मुंह ऊपर उठाया तो बड़ी-बड़ी आंखों में उनसे भी बड़ी-बड़ी बूंदें झलक रही थीं।

'पगली' मैंने कहा।

और उसकी बाँह में बाँह डालकर 'वोग' से बाहर हो गए।

● ●

